हज़रत ख़्वाजा

मोईनुद्दीन चिश्ती

अजमेर के ग़रीब नवाज़

राधास्वामी सत्संग ब्यास

हज़रत ख़्वाजा

मोईनुद्दीन चिश्ती

अजमेर के ग़रीब नवाज़

टी. आर. शंगारी

राधास्वामी सत्संग ब्यास

तेरे इश्क़ ने मेरे दिलो-जाँ को कर डाला मुझसे जुदा,
दिल नहीं पहचानता किसी और को तेरे सिवा। *(86.1)*

ख़्वाहिश है हुस्न तेरा देखे आँख से मोईन,
कब तलक गुफ़्तगू से दिल ख़ुश करे ये बंदा तेरा। *(22.10)*

बोला बेपरदा हूँ मैं, परदा गर है तो तेरा ही,
वजह बना है सब परदों का वुजूद अपना ही तेरा। *(2.6)*

फ़ना हो पहले गर तलब है बक़ा की तुझे,
फ़ना न हो जब तक तू, मिले न राह का पता। *(3.3)*

विषय सूची

प्रकाशक की ओर से	9
लेखक की ओर से	11
सूफ़िज़्म	15
चिश्तिया सिलसिला	24
ख़्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती का जीवन	25
सात ख़त	39
नसीहतों के फूल	50
रूहानी तालीमात	55
कलाम	139
संदर्भ सूची	317
संदर्भ ग्रंथ	321
परमार्थ संबंधी पुस्तकें	325

ॐ अन्नपूर्णा®
Charitable Trust
WZ-5A/1, Ram Nagar,
Choukhandi Chowk,
New Delhi-110018

सूफ़िज़्म

कामिल पीर और सूफ़ी दरवेश ख़ुदा के इश्क़ को उससे विसाल का ज़रिया बताते हैं। दुनिया के अलग-अलग मज़हब शरीअत पर ज़ोर देते हैं लेकिन शरीअत की हद जिस्म तक है, यह कोई मक़ाम नहीं; जबकि सूफ़ी दरवेश ख़ुदा के विसाल को रूह का सफ़र बताते हैं जिसका ज़रिया इश्क़े-हक़ीक़ी है। सूफ़ियों के चिश्ती सिलसिले के हज़रत ख़्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती की शख़्सीयत और तालीम बयान करने से पहले सूफ़िज़्म पर एक नज़र डालते हैं।

सूफ़िज़्म एक सफ़र है, रूह का सफ़र, दिल का सफ़र, इस सफ़र के मुसाफ़िर को सूफ़ी कहा जाता है। दिल के इस सफ़र में सूफ़ी ख़ुदी से ख़ुदा तक का फ़ासला तय करता है। हज़रत जुनैद बग़दादी के अनुसार इलाही जज़्बे के बिना यह सफ़र तय नहीं हो सकता। यह सफ़र वही रूह तय कर सकती है जो ख़ुदा के लिए आहें भरती है।[1] इस सफ़र में आशिक़ और माशूक़ का आपसी रिश्ता ऐसा होता है कि आशिक़ (सूफ़ी) माशूक़ (ख़ुदा) के जलवे में हमेशा मस्त रहता है।

सूफ़ी शब्द अरबी के 'सूफ़' शब्द से बना है, जिसका अर्थ है ऊन। ऐसा माना जाता है कि पीर, पैग़ंबर, दरवेश ऊनी चोग़ा पहना करते थे जो ज़िंदगी में सादगी, दुनिया से बेतअल्लुक़ी और ऐशो-इशरत से दूर रहने की निशानी माना जाता था। सूफ़ियों का यही पहनावा उनकी पहचान बन गया। कुछ का मानना है कि सूफ़ी शब्द 'सफ़ा' से लिया गया है जिसका मतलब है हर बुराई से अपने को दूर रखना। ये नेकी की राह को अव्वल रखते हैं और उनके लिए क़ल्ब यानी हृदय की सफ़ाई सबसे ज़रूरी है, क्योंकि मालिक ज़ाहिर (बाहरी) और बातिन (अंदरूनी) सफ़ाई पसंद करता है। कुछ यह

मानते हैं कि पैग़ंबर साहिब के वक़्त मस्जिदे-नबवी के सामने 'सुफ़्फ़ा' यानी अहल-अल-सुफ़्फ़ा (चबूतरे पर बैठने वाले) से सूफ़ी शब्द बना है।

ज़ुन्नून मिसरी का कहना है, 'सूफ़ी वह है कि जब बोले तो उसकी ज़बान से हक़ निकले और ख़ामोश हो तो उसके जिस्म का एक-एक रोम यह गवाही दे कि उसके अंदर दुनिया का कोई लगाव और लोभ नहीं।'[2] बिशर अल-हाफ़ी के अनुसार सूफ़ी ख़ुदा के सहारे अपने दिल को पाक रखता है।

सूफ़ी दुनियावी इल्म के मुक़ाबले इलाही इल्म को और निजी मरज़ी के मुक़ाबले इलाही रज़ा को अहम मानता है। सूफ़ी ख़ुदा के फ़ैसलों पर राज़ी रहता है, ख़ुदा के किसी फ़ैसले पर उसे कोई शिकायत नहीं होती, किसी चीज़ की तलब उसे तंग नहीं करती और न किसी चीज़ की ज़रूरत और कमी उसे परेशान करती है। ख़ुदा के सिवाय वो किसी और चीज़ की ख़्वाहिश ही नहीं करता।

सूफ़िज़्म को अरबी भाषा में तसव्वुफ़ कहा जाता है। हज़रत मारूफ़ करख़ी से पूछा गया कि तसव्वुफ़ क्या है? आपने फ़रमाया, 'हक़ाइक़ (सत्य) का इख़्तियार करना, हक़ पर गुफ़्तगू करना और लोगों के पास जो कुछ है उससे दूरी हासिल कर लेना यानी रब की मरज़ी पर अपने को चलाना, उसके बनाए उसूलों पर ही बात करना और दुनिया की किसी चीज़ का लालच अपने दिल में पैदा न होने देना ही तसव्वुफ़ है।'[3]

शैख़ अबू सईद ख़राज़ फ़रमाते हैं, 'अपने मालिक से सफ़ा का तअल्लुक़ रखना, उसके अनवार से पुर होना और उसके ज़िक्र से लज़्ज़तयाब होना यानी अपने दिल को हर दुनियावी ख़्वाहिश और दुनियावी रिश्ते से दूर करके सिर्फ़ ख़ुदा की मोहब्बत को अपने दिल में रखना, हर जगह सिर्फ़ उसके जलवे को ही देखना और सिर्फ़ उसी का ही ज़िक्र करना तसव्वुफ़ है।'[4]

सूफ़ी पीर अमीर-अल-मोमिनिन ने तसव्वुफ़ को चार अक्षरों से बना बताया है। हर अक्षर में रूहानी राज़ है, एक पड़ाव है, एक सिफ़त है। तसव्वुफ़ में बारह बुनियादी उसूल हैं, इन पर पूरी तरह खरा उतरने वाले को सूफ़ी कहा गया है।[5]

त—पहले अक्षर में तर्क (त्याग), तौबा (पश्चात्ताप) और तुक़ा (ख़ुदापरस्त) आते हैं।

स—दूसरे अक्षर में सब्र, सदाक़त (सच्चाई) और सफ़ा (निर्मलता) के गुण शामिल हैं।

व—तीसरे अक्षर में वुद (इश्क़), विर्द (ज़िक्र) और वफ़ा (निष्ठा) शामिल हैं।

फ़—चौथे अक्षर में फ़र्द (एकांत), फ़क्र (फ़क़ीरी) और फ़ना (विलीन हो जाना) शामिल हैं।

सूफ़ियों का मानना है कि ख़ुदा का नूर कायनात के ज़र्रे-ज़र्रे में मौजूद है, इसके बावजूद न कोई चीज़ ख़ुदा है और न ही ख़ुदा कोई चीज़ है या किसी चीज़ के जैसा है। वही अव्वल है, वही आख़िर, वही ज़ाहिर (प्रकट), वही बातिन (छुपा हुआ) है। असल में ख़ालिक़ यानी सिरजनहार और मख़लूक़ यानी उसकी बनाई रचना में कोई फ़र्क़ नहीं। हक़ीक़त एक है।

इनसान सृष्टि का सिरताज है, ख़ुदा का अक्स है। उसमें ख़ुदा की सिफ़तें मौजूद हैं जिनसे वह अनजान है। वह ज़िंदगी के असल मक़सद से भी अनजान है। इनसान को ख़ास क़ाबिलियत दी गई है ताकि वह हक़ (सच) की राह का हमसफ़र बन सके, अपने आप को जान सके, ख़ुदा से विसाल हासिल कर सके। इसलिए इस सफ़र में दिल धीरे-धीरे असलियत की तरफ़ बेदार (सचेत) होने लगता है, फ़ानी दुनिया से मुँह मोड़ने लगता है तो ऐसी हालत हो जाती है कि वो सिर्फ़ ख़ुदा, उस हक़ के साथ ज़िंदगी बसर करना चाहता है। मुहम्मद साहिब ने इस हालत को इन लफ़्ज़ों में बयान किया है: 'मेरी आँखें सोती हैं, लेकिन मेरा दिल जागता है।'

लेकिन हक़ की इस राह पर चलने के लिए किसी रहनुमा की ज़रूरत होती है। इसलिए पीर, शैख़ या कामिल मुर्शिद की शरण लेना ज़रूरी है। बिना मुर्शिद की रहमत के ख़ुदा से विसाल मुमकिन नहीं। मुर्शिद दिल की पाकीज़गी रखने में और रूह को एक रूहानी मक़ाम से दूसरे मक़ाम तक पहुँचाने में मुरीद की मदद करता है। ऐसा कहा जाता है कि मुर्शिद की पनाह लिए बिना जो इस रूहानी राह पर चलना चाहता है वह मानो

शैतान को अपना रहबर माने हुए है और उसकी तश्बीह (तुलना) उस पेड़ से की गई है जो बाग़बान के ध्यान न देने की वजह से या तो कोई फल नहीं देता या फिर कड़वा फल देता है।[6]

सूफ़िज़्म में मुरीद बनने का मतलब है: ज़िंदगी की एक नई शुरुआत और रूहानी सफ़र की तलाश। मुर्शिद और मुरीद के रिश्ते की बुनियाद है: इश्क़ और इबादत। यह रिश्ता हमेशा का रिश्ता है, कोई ऐसा इक़रारनामा नहीं जिसे रद्द किया जा सके। इसलिए कहा जाता है कि एक बार का मुरीद, हमेशा का मुरीद। मुर्शिद की हुक्मबरदारी ही मुरीद की ज़िंदगी का मक़सद होती है। मुरीद की ज़िंदगी का राज़ होता है—अपने पीर के लिए गहरी वफ़ादारी और हलीमी। मुर्शिद मुरीद को बैअत करता है यानी रूहानी अभ्यास की तरक़ीब समझाता है। बैअत का मतलब है कि मुर्शिद तालिब को अपना मुरीद बनाने के लिए अपना हाथ उसके हाथ पर रखता है। मुर्शिद मुरीद को अपनी तवज्जोह से रूहानी ताक़त देता है।

हालाँकि अल-हक़ (परम सत्य) के साथ एक हो जाना सूफ़ियों का मक़सद है लेकिन उसे कैसे पाया जाए? यह एक बुनियादी सवाल है। अक़्ल के ज़रिए उसे जाना नहीं जा सकता क्योंकि वह दलील से परे है। किताबों को पढ़ कर उसे पाना चाहें तो यह नामुमकिन है। सूफ़ियों का मानना है कि ख़ुदा को वही जान सकता है जो उससे इश्क़ करता है। इसी लिए ख़्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती ने कहा है:

जमाले-यार नज़र आए न अक़्ल की आँख से,
मोईन मजनूँ की नज़र से देख हुस्न लैला का।(5.7)

सूफ़ी ख़ुदा को माशूक़ और ख़ुद को आशिक़ मानते हैं। सूफ़ियों ने इश्क़ को सबसे ऊँचा दर्जा दिया है। वे कहते हैं इश्क़ इबादत का मोहताज नहीं है बल्कि सच्ची इबादत इश्क़ की मोहताज है। इश्क़ ख़ुद इबादत है। बग़ैर इश्क़ के इबादत वैसी ही है जैसे जिस्म बिना रूह के। आशिक़ का जब तक माशूक़ से विसाल नहीं होता, वह जुदाई की आग में जलता है।

इश्क़े-यार के सहरा में प्यासा हूँ दीदार का,*
प्यास की आतिश ऐसी भड़की, जिस्मो-जाँ रूह सब जल गए।(14.7)

शिबली का कहना है कि इश्क़ क़ल्ब यानी हृदय में आतिश (आग) की तरह है जो ख़ुदा के सिवाय हर ख़्वाहिश को जला कर ख़ाक कर देता है। सूफ़ी यह भी मानते हैं कि जब तक ख़ुदा की रहमत नहीं होती तब तक दिल में इश्क़ नहीं जागता।

बायज़ीद बिस्तामी का कहना है, 'मैं समझता था कि मैं ख़ुदा को याद करता हूँ, कि मैं ख़ुदा को जानता हूँ, कि मैं उससे इश्क़ करता हूँ, कि मैं उसकी जुस्तजू (तलाश) में हूँ लेकिन जब मैं उसके नज़दीक पहुँचा तो पता चला कि मेरे याद करने से पहले वो मुझे याद करता था, मेरे जानने से पहले वो मुझे जानता था, मेरे इश्क़ करने से पहले वो मुझसे इश्क़ करता था, वो मेरी जुस्तजू में था ताकि मैं उसकी तलाश करूँ।'[7]

राहत और रंजो-ग़म से ऊपर उठकर, अपने-पराए का फ़र्क़ मिटाकर, दिल में सिवाय महबूब के किसी दूसरे का ख़्याल न रखते हुए सूफ़ी जब अपनी हस्ती ख़त्म करके महबूब से विसाल हासिल करता है, उसे फ़ना कहते हैं। बहुत-से सूफ़ी फ़ना के बाद की अवस्था बक़ा को सूफ़ी साधना का सबसे ऊँचा मक़सद मानते हैं। फ़ना की आख़िरी अवस्था बक़ा की शुरुआत है जिसमें रूह हमेशा के लिए ख़ुदा के साथ रहती है।

लेकिन नफ़्स (मन) इस सफ़र की सबसे बड़ी रुकावट है। जब तक नफ़्स दुनिया की दिल लुभाने वाली चीज़ों से अलग नहीं होता, अल्लाह की तरफ़ ध्यान नहीं जाता। नफ़्स की दुरुस्ती किए बग़ैर यह सफ़र मुमकिन नहीं है। इसलिए दिल की पाकीज़गी इस रूहानी सफ़र की बुनियाद है। नफ़्स पर क़ाबू पाने के लिए ज़रूरी है: वराअ यानी परहेज़गारी। इसमें सूफ़ी दुनिया की ख़्वाहिशों और मन की काम वासना से दूर रहता है। परहेज़गारी असल में संयम और त्याग के सिवा और कुछ नहीं।

---

* सहरा=रेगिस्तान

कइयों का मानना है कि जब सूफ़ी दरवेशों ने दुनिया का हक़ीर होना यानी इसकी तुच्छता को महसूस किया तो उन्होंने परहेज़गारी को अहम माना। दुनिया इतनी तुच्छ है कि किसी तरह की तवज्जोह की हक़दार नहीं। इसके अलावा कोई इनसान जितना दुनिया में लिप्त होगा उतनी ही उसकी मुश्किलें बढ़ेंगी। इनसान कभी एक चीज़ के लिए तो कभी दूसरी चीज़ को हासिल करने के लिए बेचैन रहता है। ऐसे इनसान के अंदर दो भाव काम करते हैं, पहला जिस चीज़ को पाना चाहता है उससे मोहब्बत हो जाती है और दूसरा बाक़ी चीज़ों से ख़्याल हटने लगता है। दुनिया से विराग और दुनिया के त्याग को 'ज़ुह्द' कहा गया है। ख़ुदा को चाहना, ख़ुदा के सिवाय किसी और चीज़ से ख़ुशी हासिल न करना ही ज़ुह्द है।

सूफ़ी होने की शर्त यह है कि ख़ुदा जिस हालत में उसे रखे उसी में अपने आप को ख़ुश समझे। इसे फ़क्र कहा जाता है। न अपनी ग़रीबी को ज़ाहिर करे और न दूसरों की कंजूसी की शिकायत करे।

> *सूफ़ी कम खाता है, कम बोलता है, कम सोता है। उसकी इबादत तसव्वुर-ए-महबूब (दोस्त का ख़्याल) और उसका ज़िक्र होता है। शुरू में यह ज़िक्र ज़ुबानी होता है, धीरे-धीरे यह क़ल्बी ज़िक्र बन जाता है यानी वह कहीं भी कोई भी काम कर रहा हो पर दिल उसके ज़िक्र में लीन रहता है और फिर यह ज़िक्रे-रूही में बदल जाता है।*[8]

इस प्रकार हर तरह से सब्र रखता हुआ, ख़ुदा की रज़ा में राज़ी रहता हुआ, उसका ज़िक्र करता हुआ, उसके ख़्याल में लीन सूफ़ी मक़ामे-हक़ की तरफ़ बढ़ता है।

सूफ़ी सिलसिले

सूफ़ी परंपरा के मुताबिक़ पैग़ंबर मुहम्मद साहिब ने अपने कुछ नज़दीकी साथियों, पैरोकारों को तरीक़त की राह से वाक़िफ़ करवाया। उन्हें ख़ुदा की

बख़्शिश—अल बरक़ा अल मोहम्मदिया—से निवाज़ा। आपने उन्हें बैअत करने का भी फ़रमान किया ताकि आने वाले वक़्त में भी रूहानी राह के सालिकों को ख़ुदा की बख़्शिश पहुँच सके।[9] इस तरह पैग़ंबर मुहम्मद साहिब ने अपने पैरोकारों को आने वाली पीढ़ियों को तालीम पहुँचाने की ज़िम्मेदारी सौंपी। पीढ़ी-दर-पीढ़ी यह काम चलता रहा और धीरे-धीरे ये लोग मुर्शिद, शैख़ या दरवेश कहलाने लगे। इस तरह हर सूफ़ी दरवेश का कोई मुर्शिद होता था और हर दरवेश अपना आगे एक या एक से ज़्यादा ख़लीफ़ा नियुक्त करता था। इस तरह यह कड़ी 'सिलसिला' कहलाने लगी। अकसर कोई मुर्शिद या दरवेश इस सिलसिले में इतना मशहूर हो जाता कि आने वाले दरवेश अपने को उसके नाम से जोड़ लेते। मिसाल के तौर पर अब्दुल क़ादिर जीलानी के नाम पर इस सिलसिले के दरवेशों को क़ादिरिया सिलसिले का नाम दिया गया। इसी तरह चिश्ती सिलसिले को इसके आठवें दरवेश के नाम से चिश्तिया सिलसिला कहा जाने लगा।

हिंदुस्तान में सूफ़ी सिलसिलों की शुरुआत की कोई तारीख़ बताना मुश्किल है। लेकिन ऐसा माना जाता है कि यहाँ इन सूफ़ी सिलसिलों की शुरुआत 11वीं सदी के क़रीब हुई। पहले-पहल इन सूफ़ी दरवेशों के बारे में जानकारी सिंध, पंजाब और उत्तरी-पश्चिमी प्रदेशों से मिलती है। हिंदुस्तान में सूफ़ियों के कुछ सिलसिले इस तरह हैं: सुहरवर्दी, नक़्शबंदी, क़ादिरी, फ़िरदौसी और चिश्ती।

सुहरवर्दी सिलसिला[10] अब्दुल क़ाहिर अबू नाज़िब सुहरवर्दी द्वारा शुरू हुआ जो अहमद ग़ज़ाली के मुरीद थे। जुनैद बग़दादी और अल-ग़ज़ाली के ज़रिए यह सिलसिला मुहम्मद साहिब के दामाद और ख़लीफ़ा हज़रत अली से अपनी शुरुआत मानते हैं। इस सिलसिले की तालीम को फैलाने का भारी काम शैख़ शिहाबुद्दीन अबू हफ़्स अल सुहरवर्दी ने किया। मंगोलों के हमलों के दौरान यह सिलसिला ईरान से हिंदुस्तान में फैल गया। यहाँ शैख़ शिहाबुद्दीन के मुरीद शैख़ बहाउद्दीन ज़करिया ने मुलतान में इसकी शुरुआत की और सैयद जलालुद्दीन सुर्ख़पोश बुख़ारी ने उच (उत्तर पूर्व मुलतान) को सुहरवर्दी तालीम का केंद्र बनाया। आपके बाद शैख़ रुकनुद्दीन ने इसे दिल्ली

के इलाक़े में आगे बढ़ाया। दिल्ली सल्तनत के सुल्तान अलाउद्दीन ख़िलजी से लेकर मोहम्मद बिन तुग़लक ने इसे बहुत मान-इज़्ज़त बख़्शी।

हिंदुस्तान में फ़िरदौसी सिलसिले[11] की शुरुआत ख़्वाजा बदरुद्दीन समरकंदी से मानी जाती है। असल में फ़िरदौसी सिलसिला सुहरवर्दी सिलसिले की ही एक शाखा है। 14वीं शताब्दी में यह सिलसिला बिहार में फैला। शैख़ शराफ़ुद्दीन अहमद बिन यय्या मुनेरी फ़िरदौसी सिलसिले के महान सूफ़ी दरवेश हुए हैं जिन्होंने फ़िरदौसी सिलसिले के इतिहास में एक नया मोड़ दिया। आपने अपने मल्फ़ूज़ात में रूहानियत के गहरे राज़ बहुत ख़ूबसूरती से ज़ाहिर किए। बिहार के मशहूर सूफ़ियों में मख़दूम इसरैल मनेरी, मख़दूम इस्माइल मनेरी और हज़रत मख़दूम यय्या मनेरी के नाम गिने जाते हैं।

नक़्शबंदी सिलसिले[12] को ख़्वाजा याक़ूब यूसुफ़ अल-हमदानी से जोड़ा जाता है। बाद में ख़्वाजा बहाउद्दीन नक़्शबंद ने इसे संगठित किया जिनके नाम से ही इस सिलसिले को नक़्शबंदी कहा जाने लगा। ख़्वाजा हमदानी के एक मशहूर ख़लीफ़ा अब्दुल ख़ालिक़ गिजदुवानी ने 'आठ मूल सिद्धांतों' के बारे में लिखा जिसको नक़्शबंदी सिलसिला आज भी मानता है। मध्य एशिया में मंगोल, तिमूर, उज़्बेग साम्राज्य भी इस सिलसिले से प्रभावित हुए। हिंदुस्तान में ख़्वाजा बक़ी बिल्लाह (मृ.1785) ने इस सिलसिले की शुरुआत की। ख़्वाजा मीर दर्द, शाह वलीउल्लाह, शैख़ अहमद फ़ारूक़ी सरहिन्दी ने इस सिलसिले का प्रचार किया।

क़ादिरी सिलसिला[13] बग़दाद के महान सूफ़ी दरवेश हज़रत शैख़ अब्दुल क़ादिर जीलानी के साथ शुरू हुआ। उन्हें 'पीर दस्तगीर', 'पीरान-ए-पीर', 'ग़ौसुल आज़म' जैसे ख़िताबों से निवाज़ा गया। ऐसा माना जाता है कि अब्दुल क़ादिर जीलानी के वंशज मोहम्मद ग़ौस से हिंदुस्तान में इस सिलसिले की शुरुआत हुई। हिंदुस्तान के मशहूर क़ादिरी दरवेशों में हज़रत इनायत शाह, बुल्लेशाह, सुलतान बाहू, हज़रत शाहुल हमीद क़ादिर, मियाँ मीर का नाम आता है। सिंध के कामिल दरवेश शाह लतीफ़ का तअल्लुक़ भी क़ादिरी सिलसिले के साथ था। अब्दुल हक़ देहलवी दिल्ली के मशहूर क़ादिरी दरवेश हुए हैं।

चिश्ती सिलसिला[14] ख़ुरासान (ईरान) के एक मशहूर शहर चिश्त के नाम से शुरू हुआ। इस शहर में कुछ दरवेशों ने चिश्त को रूहानियत की तालीम का केंद्र बनाया, जिसे इतनी शोहरत मिली कि इसके साथ जुड़े दरवेशों को चिश्ती कहा जाने लगा। इतिहासकारों ने इस सिलसिले की शुरुआत हज़रत मुहम्मद साहिब के ख़लीफ़ा हज़रत अली के साथ जोड़ी है। उनके बाद आठवें दरवेश ख़्वाजा अबू इसहाक़ शामी चिश्ती के नाम से इस सिलसिले के दरवेशों को चिश्ती कहा जाने लगा। 950 ई. में इनका इंतक़ाल हो गया। आपके बाद छः और शैख़ हुए और उनके बाद ख़्वाजा मोईनुद्दीन हसन संजरी चिश्ती आए। हिंदुस्तान में इस सिलसिले की शुरुआत ख़्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती ने ही की। उन्होंने राजस्थान के अजमेर शहर को इसका केंद्र बनाया। सारे हिंदुस्तान में इस सिलसिले का प्रचार किया।

ख़्वाजा मोईनुद्दीन साहिब ने दो ख़लीफ़ा नियुक्त किए। पहले ख़लीफ़ा ख़्वाजा क़ुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी ने दिल्ली और आसपास के इलाक़े में चिश्ती सिलसिले का ख़ूब प्रचार किया। दिल्ली का बादशाह सुलतान शम्सुद्दीन अल्तमश आपकी बहुत इज़्ज़त करता था, वह आपका मुरीद भी था। ख़्वाजा बख़्तियार काकी के ख़लीफ़ाओं में ख़्वाजा फ़रीदुद्दीन मस्ऊद को ख़ास दर्जा हासिल है जो बाद में बाबा फ़रीद शकरगंज के नाम से मशहूर हुए। बाबा फ़रीद के पाँच ख़लीफ़ाओं में हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया को बहुत शोहरत हासिल हुई। दूसरे ख़लीफ़ा शैख़ हमीदुद्दीन का ख़्वाजा मोईनुद्दीन के साथ नज़दीकी संबंध रहा। आप अरबी, फ़ारसी के अच्छे जानकार थे। आप इस क़दर दरवेशी के रंग में रँगे थे कि ख़्वाजा ने आपको सुल्तानुल-तारिकीन (दरवेशों के शहंशाह) के ख़िताब से निवाज़ा। हिंदी भाषा में लिखी आपकी नज़्में दिल की गहराइयों से रब्बी इश्क़ का इज़हार करती हैं। आपके बाद ख़्वाजा हुसैन नागौरी और शैख़ कबीर ने इस सिलसिले को जारी रखा।

चिश्तिया सिलसिला*

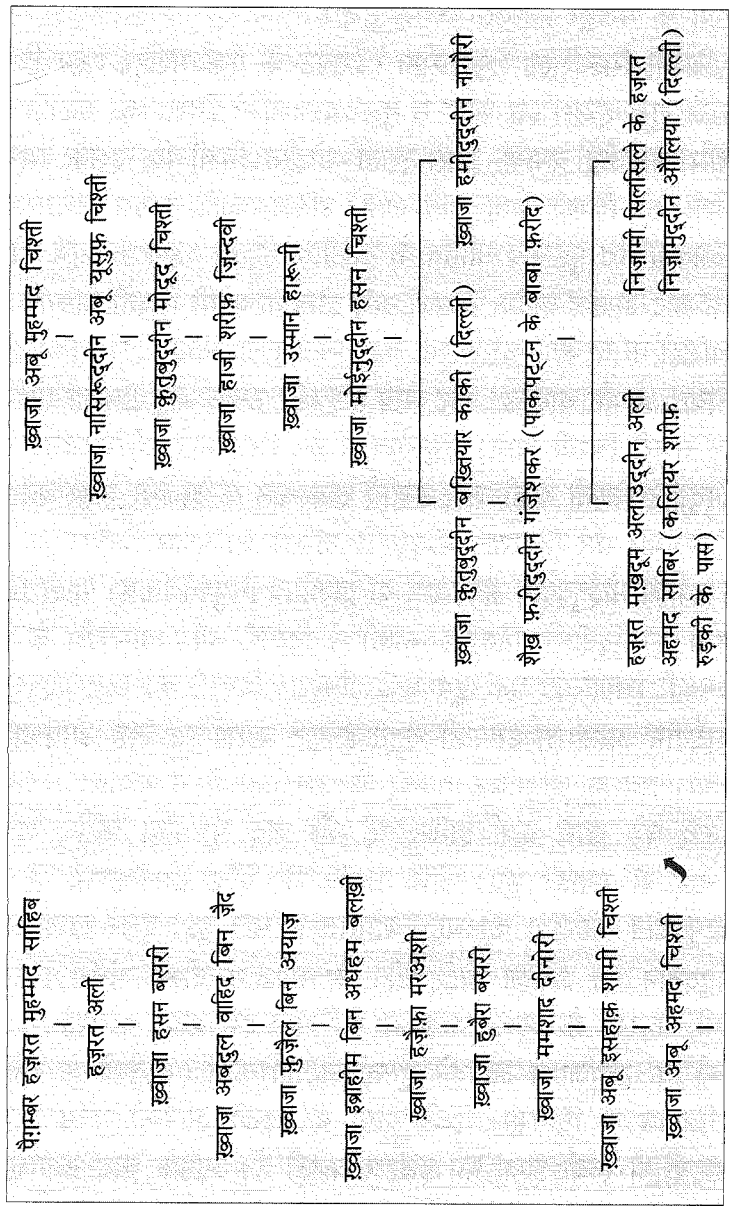

* इस सिलसिले की ज़्यादा जानकारी के लिए देखें: शम्स बरेलवी की लिखी किताब लमआते-ख़्वाजा: दीवाने-ख़्वाजा ग़रीब नवाज़

ख़्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती का जीवन

हज़रत ख़्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती अजमेरी चिश्तिया सिलसिले के महान सूफ़ियों में से हैं। ख़्वाजा साहिब को सैयद मोईन-अल-दीन हसन चिश्ती संजरी अजमेरी के रूप में याद किया जाता है। आपके पिता प्यार से आपको हसन कहते थे, इसलिए आपके नाम के साथ हसन जुड़ गया। आपका संबंध सूफ़ियों के चिश्ती सिलसिले के साथ था, इसलिए आपको चिश्तिया कहा जाने लगा। आपका जन्म सजिस्तान (ईरान) के क़स्बे संजर में हुआ, इसलिए आपको संजरी कह कर पुकारा जाता है। कुछ इतिहासकारों का विचार है कि आपका जन्म इसफ़हान (ईरान) में हुआ पर आपकी परवरिश संजार में हुई, जो संजर नाम से मशहूर है।[1]

आपने ज़िंदगी का ज़्यादातर हिस्सा हिंदुस्तान में राजस्थान के अजमेर शहर में बिताया और इस शहर को भारत में चिश्तिया सिलसिले की तालीम का केंद्र बनाया, इसलिए आपको ख़्वाजा मोईनुद्दीन अजमेरी भी कहा जाता है।

ख़्वाजा साहिब की शुरू की ज़िंदगी के बारे में ज़्यादा जानकारी नहीं मिलती है* फिर भी ज़्यादातर इतिहासकारों का ख़्याल है कि आपका जन्म

* हैरानी की बात है कि विशाल रचना, ख़ैर-उल-मजालिस में आपके बारे में कुछ भी लिखा नहीं मिलता और फ़वाद-उल-फ़वाद में भी आपके बारे में ज़्यादा नहीं लिखा गया। (*Saiyed Athar Abbas Rizvi, A History of Sufism in India*, Vol. I, 1978, p. 116) सीरीयल-औलिया में 'मल्फ़ूज़ात' में आपके जीवन और अजमेर में आपके निवास के बारे में कुछ हालात ही दर्ज हैं। इसी तरह जवाहरे-फ़रीदी में भी आपकी ज़िंदगी के बारे में कुछ घटनाएँ दर्ज हैं। सीयर-उल-आरिफ़ीन के लेखक जमाली ने आपकी ज़िंदगी के बारे में बहुत-सी घटनाएँ इकट्ठी की हैं। (*Saiyed Athar Abbas Rizvi, A History of Sufism in India, Vol. I*, 1978, p. 116) बाद में बहुत-से लेखकों ने इन्हीं के आधार पर आपकी ज़िंदगी के बारे में जानकारी देने की कोशिश की है।

1142ई. में हुआ। आपके पिता का नाम सैयद ग्यासुउद्दीन है, जिनका संबंध कई पीढ़ियों पीछे हज़रत मुहम्मद साहिब के दामाद हज़रत अली के साथ जोड़ा जाता है।[2] आपके पिता संजर के अमीरों में से एक थे। दुनिया की दौलत के साथ-साथ आप रूहानी दौलत से भी मालामाल थे।

ख़्वाजा मोईनुद्दीन की माता बीबी उम्मुलवरा बहुत नेकदिल औरत थी। ख़्वाजा साहिब के माता-पिता का दुनिया के बजाय रूहानियत की तरफ़ ज़्यादा झुकाव था, इसलिए आपको ऐसे नेक ख़्याल विरासत में मिले जिन्होंने आपकी रूहानी ज़िंदगी के लिए एक मज़बूत बुनियाद तैयार कर दी। आपके दो सगे भाई भी थे।

ख़्वाजा मोईनुद्दीन बचपन से ही बहुत संजीदा मिज़ाज के थे। आपमें न तो बच्चों वाली शोख़ी थी, न ही आपको बच्चों के साथ मिल कर मौज-मस्ती करने का शौक़ था। कहा जाता है कि आप अकसर अपनी उम्र के बच्चों को घर बुला लेते और उन्हें खाना खिला कर बहुत ख़ुश होते। कहा जाता है कि एक बार ईद के दिन आप ख़ूबसूरत पोशाक पहन कर नमाज़ पढ़ने के लिए ईदगाह जा रहे थे कि रास्ते में एक अंधा लड़का दिखाई दिया जिसने फटे-पुराने कपड़े पहने हुए थे। आपका दिल पसीज उठा। आपने उसके कपड़े पहन कर, अपने कपड़े उसको पहना दिए और ईदगाह में नमाज़ गुज़ारने के लिए उसको साथ ले गए। ग़रीबों के लिए आपके घर के दरवाज़े हमेशा खुले रहते थे। इस तरह बचपन से ही आप ज़रूरतमंदों की मदद करके बहुत ख़ुश होते थे।

ख़्वाजा साहिब के पिता बहुत बड़े विद्वान थे। इसलिए आपकी शुरू की तालीम पिता की देख-रेख में घर में ही हुई। आपने 9 साल की उम्र में ही क़ुरान शरीफ़ ज़बानी याद कर लिया था। बाद में आपके पिता ने आपको संजर के एक मदरसे में दाख़िल करवा दिया, जहाँ आपको क़ुरान शरीफ़ की तालीम के साथ-साथ हज़रत मुहम्मद साहिब के फ़रमानों पर आधारित 'हदीस' के बारे में पूरी जानकारी हासिल हो गई।

आपकी उम्र सिर्फ़ 15 साल की ही थी जब आपके पिता का इंतक़ाल हो गया। इसके दो महीने बाद आपकी माता का भी इंतक़ाल हो गया।

पिता की जायदाद में से एक बाग़ और एक पनचक्की* आपके हिस्से में आई और आप इनसे होने वाली आमदनी से ही अपना गुज़ारा करते रहे।

ज़िंदगी में इनक़लाब

ख़्वाजा साहिब को शुरू से ही फ़क़ीरों, सूफ़ियों और दरवेशों की संगति का बहुत शौक़ था। जब भी आपको किसी औलिया, संत-महात्मा की संगति का मौक़ा मिलता, आप उनकी बहुत इज़्ज़त करते। आपको प्रभु के प्यारों की संगति से अजीब-सी ख़ुशी मिलती।

एक दिन आप बाग़बानी कर रहे थे कि मशहूर दरवेश हज़रत इब्राहीम कंदूज़ी वहाँ पहुँचे। जैसे ही आपने उस बुज़ुर्ग को देखा, आप बड़े अदब से पेश आए। आपने दौड़ कर उनके हाथ को प्यार से चूम लिया। जिस तरह आप हर मुसाफ़िर की ख़ातिरदारी किया करते थे, उसी तरह आपने अपना काम छोड़ कर उन्हें अंगूरों का एक गुच्छा भेंट किया और ख़ुद उनके चरणों में बैठ गए।

हज़रत ने अंगूरों के कुछ दाने मुँह में डाले और ख़ुश होकर फ़रमाया: बेटा! जिस बाग़ को तुम पानी दे रहे हो उसमें आज बहार है तो कल पतझड़ हो जाएगी। वह मेहरबान अल्लाह तुम्हें ऐसा बाग़ बख़्शेगा, जिसके पेड़ों पर क़यामत की गर्म हवाओं का भी असर नहीं होगा। जो कोई एक बार उन पेड़ों का फल खा लेगा फिर वह दुनिया की बड़ी से बड़ी नेमत की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखेगा।[3]

इसके बाद हज़रत इब्राहीम ने जेब में से रोटी का एक सूखा टुकड़ा निकाल कर मोईनुद्दीन के मुँह में डाल दिया और आप बाग़ में से बाहर निकल गए।

सीयर-उल-आरिफ़ीन के अनुसार उस मस्त फ़क़ीर ने मोईनुद्दीन के दोनों हाथों को चूमा और तिलों के कुछ दाने चबा कर उसके मुँह में डाल दिए, जिससे उसके अंदर रूहानी नूर प्रकट हो गया।[4] हज़रत मोईनुद्दीन

---

* **पनचक्की**=पानी से चलनेवाली अनाज पीसने की चक्की।

के मन में इनक़लाब आ गया। उन्हें ऐसा महसूस होना शुरू हुआ, जैसे कायनात की हर चीज़ फ़ुज़ूल हो।[5] इस घटना ने आपकी आगे की ज़िंदगी का सफ़र आसान कर दिया।

दूसरे दिन आपने अपना बाग़ और चक्की बेची और सारी रक़म ग़रीबों और ज़रूरतमदों में बाँट दी। दुनिया वाले आपके फ़ैसले पर बहुत हैरान थे पर आपके मन के किसी कोने में उजाले की ऐसी किरण फूट पड़ी थी, जिसके सामने हर तरह की बाहर की रौशनी अँधेरा ही थी।

आप ख़ुरासान से निकल कर सबसे पहले समरकंद और फिर बुख़ारा गए जो उस वक़्त इस्लामी तालीम के केंद्र थे।[6] यहाँ आपको किन-किन उस्तादों की संगति नसीब हुई, इसके बारे में पूरी जानकारी नहीं मिलती, पर ऐसा माना जाता है कि आपको मौलाना हुसामुद्दीन बुख़ारी और मौलाना शरफ़ुद्दीन की संगति से ख़ास फ़ायदा हुआ। मौलाना हुसामुद्दीन से आपको जुब्बा (लंबा अंगरखा) और दस्तारे-फ़ज़ीलत* हासिल हुए।[7]

आपके अंदर रूहानियत की बड़ी तलब थी, इसलिए आप रूहानी राह की जानकारी के लिए रहबर की तलाश में निकल पड़े। 1156ई. में आप इराक़ पहुँचे जहाँ आपकी मुलाक़ात हज़रत शैख़ अब्दुल क़ादिर जीलानी से हुई। भेंट के दौरान ग़ौस पाक (हज़रत जीलानी) ने फ़रमाया कि यह नौजवान एक बहुत बड़ी हस्ती के तौर पर जाना जाएगा। लाखों लोगों के प्रेम, इबादत और प्रेरणा का स्रोत बनेगा। लोग इसके ज़रिए मंज़िल-ए-मक़सूद पर पहुँचेंगे।

इराक़ से आप मक्का-मदीना के लिए रवाना हुए। अरब से वापस आते हुए आप शायद 1162ई. में बग़दाद पहुँचे जहाँ ख़्वाजा उस्मान हारूनी तशरीफ़ रखते थे। बग़दाद में ही आप ख़्वाजा उस्मान हारूनी के मुरीद बने।

ख़्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती *अनीसुल अरवाह* में लिखते हैं: इस नाचीज़ अल्लाह के बंदे मोईनुद्दीन हसन संजरी ने बग़दाद में ख़्वाजा जुनैद बग़दादी की मस्जिद में जहाँ कई औलिया और शैख़ मौजूद थे, ख़्वाजा उस्मान हारूनी की क़दमबोसी की।

* सम्मानित करते हुए सिर पर दस्तार बाँधना।

मुर्शिद ने ख़ुश होकर आपको अपने सीने से लगा लिया और रूहानी दौलत से मालामाल कर दिया। मोईनुद्दीन के मन से अज्ञानता के सब परदे दूर हो गए और मन ज्ञान के प्रकाश से भर गया। मुर्शिद ने फ़रमाया कि जो कुछ मेरे पास था, मैंने मोईनुद्दीन के सुपुर्द कर दिया है।[8]

हज़रत ख़्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती के मुरीद ख़्वाजा क़ुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी, जिन्हें बाद में ख़्वाजा साहिब ने अपना ख़लीफ़ा भी बनाया, लिखते हैं: मेरे मुर्शिद ने शुरू के दिनों में इतनी इबादत की और नफ़्स (मन) को क़ाबू में करने के लिए इतनी सिरतोड़ कोशिश की, जिसकी कहीं मिसाल नहीं मिलती। आप बहुत कम खाते और बहुत कम सोते थे। आप सिर्फ़ एक चादर अपने पास रखते थे। जब वह फट जाती तो उसे अपने हाथ से सिल लेते थे।[9] आप अपने नफ़्स पर जीत हासिल कर चुके थे और हलीमी, प्यार और सब्र के पुंज बन चुके थे। *अनीसुल अरवाह* में इस घटना का होना बग़दाद शहर में बताया है।

मुर्शिद की ख़िदमत (सेवा)

हज़रत ख़्वाजा उस्मान हारूनी ने जब मोईनुद्दीन को अपना मुरीद बनाया तो फ़रमाया, 'हसन अब हमारे पास ही रहा करो।' आपने सिर झुका कर कहा, 'जैसा आपका हुक्म।' तब से आप मुर्शिद की ख़िदमत में लग गए। कहा जाता है कि इस दौरान आप लगातार सात-सात दिन रोज़े रखते और आठवें दिन आटे की एक रोटी पानी में भिगो कर खाया करते थे। शरीर पर एक कपड़ा होता था, जिसे फट जाने पर पैबंद लगा कर पहना करते थे।

बीस साल तक आपने मुर्शिद की ख़िदमत की, जगह-जगह उनके साथ सफ़र किया। जहाँ भी मुर्शिद जाते, आप साये की तरह साथ-साथ जाते। इन यात्राओं का मक़सद लोगों को सच की राह पर चलने की तालीम देना और दिल में ख़ुदा के लिए मोहब्बत पैदा करना था। सफ़र के दौरान आप मुर्शिद का सामान अपने सिर पर उठा कर चलते थे। उनकी ख़िदमत से हज़रत ख़्वाजा उस्मान हारूनी इतने ख़ुश हुए कि आपने फ़रमाया, 'मोईनुद्दीन ख़ुदा का महबूब है और मुझे इसकी मुरीदी पर फ़ख़्र है।'

इसके बाद मुर्शिद आपको साथ लेकर हज के लिए रवाना हुए। फिर हज़रत उस्मान हारूनी मोईनुद्दीन को लेकर मदीना पहुँचे। फिर मदीना से होते हुए आप वापस बग़दाद आ गए।

उसके कुछ समय बाद आपका अपने मुर्शिद से रुख़सत होने का वक़्त आ गया। मुर्शिद ने आपको कंबल, ख़िरक़ा (एक लिबास), नालैन (पाँव की खड़ाऊँ) असा (हाथ में पकड़ने की छड़ी) व मुसल्ला (नमाज़ पढ़ने की दरी) दिया और फ़रमाया, 'मोईनुद्दीन हमने तुम्हारे दर्जे को उस बुलंदी तक पहुँचा दिया और अब तुम अपनी ज़िम्मेदारी महसूस करना। जो कुछ मैंने कहा है उस पर अमल करना ताकि मैं क़यामत के वक़्त ख़ुदा के सामने शर्मिंदा न हो सकूँ। सच्चा मुरीद वह है कि जो कुछ अपने पीर से सुने उस पर पाबंद रहे और उसे पूरी तरह याद रखे। हमने अपने पुरखों की तरफ़ से ये यादगार जो तुमको दिए हैं, इनकी हिफ़ाज़त ऐसे ही करना जैसे हमने की है और जिसको तुम इस क़ाबिल समझो कि वह इन तोहफ़ों की हिफ़ाज़त कर सके उसको हमारी यह यादगार देना। दुनिया का लालच न रखना, आबादी से दूर अलग रहना और किसी से कुछ उम्मीद नहीं करना।' यह फ़रमा कर आपने ग़रीब नवाज़* को अपने सीने से लगा लिया और फ़रमाया, 'मैंने तुमको ख़ुदा के सुपुर्द किया।' यह उनकी तरफ़ से एक इजाज़तनामा था। इसके बाद आपको अकेले मदीना और मक्का में हाज़िरी देने का हुक्म दिया।

मक्का और मदीना की यात्रा करके ग़रीब नवाज़ वापस बग़दाद पहुँचे। उस वक़्त आपके पीरो-मुर्शिद ने आपको फ़रमाया, 'मैं इस जगह से कुछ दिन बाहर नहीं आऊँगा मगर तू चाश्त (देर सुबह) के वक़्त आया कर ताकि तुझसे फ़क़ीरी के बारे में बयान करूँ, ताकि मुरीदों और फ़रज़न्दों (रूहानी वंशज) के लिए मेरे बाद यादगार हो।' मोईनुद्दीन रोज़ाना हाज़िर होते और जो कुछ मुर्शिद की ज़ुबाने-मुबारक से सुनते लिख लेते थे। इसलिए आपने मुर्शिद की 28 मजलिसों की तालीम जमा करके

* ग़रीब नवाज़=बेसहारों का सहारा

अनीसुल अरवाह लिखी और इसे मुर्शिद के हुक्म से अपनी रूहानी विरासत में शामिल किया।[10] वह तालीम कुछ इस तरह से है:

1. ईमान नंगा होता है। ईमान का लिबास इबादत व परहेज़गारी (संयम) है। इसलिए जो इनसान यह कहता है कि ईमान कम या ज़्यादा होता है, बिलकुल ग़लत कहता है... ईमान में कोई कमी या ज़्यादती नहीं होती।
2. सदक़ा (दान) देने को बहुत अहमियत दी गई है। हदीस में कहा गया है कि, 'दान देना क़ुरान शरीफ़ पढ़ने से अच्छा है क्योंकि यह दोज़ख़ की आग से बचाता है।'
3. दुनिया की हर ख़्वाहिश से अपने आप को दूर रखना। औलिया अल्लाह व ख़ुदा के दोस्त वही लोग बन पाए जिन्होंने नफ़्स यानी मन को उन ख़्वाहिशों से दूर रखा जिनसे उनके जिस्म को कोई आराम या सुख मिल सके।
4. शराब बिलकुल हराम (नाजायज़) है, चाहे कम पी जाए या ज़्यादा। ख़ुदा की लानत है उस इनसान पर जो शराब पीए या शराब बेचे व शराब की कमाई अपने काम में लाए।
5. दरवेशी यह है कि इनसान अपने नफ़्स (मन) को क़ाबू में करे व ख़ुद को हर तरह के ऐशो-आराम से दूर रखे, लेकिन किसी दूसरे इनसान को ज़रा-सी भी तक़लीफ़ पहुँचाने का ख़्याल भी न आने दे।
6. रात की इबादत मौत के बाद की तमाम मंज़िलों में नूर पैदा कर देती है।

करामातें

अन्य कामिल दरवेशों की तरह हज़रत मोईनुद्दीन चिश्ती के साथ भी कई करामातें जुड़ी हुई हैं। जो दरवेश अल्लाह के साथ विसाल करके अल्लाह का रूप हो जाता है, वह चाहे तो अल्लाह की इजाज़त से कुछ भी कर सकता है, लेकिन वह अल्लाह की रज़ा का रूप हो जाता है

जबकि करामात करना अल्लाह की रज़ा में राज़ी रहने के बजाय अल्लाह का शरीक (साझीदार) बन जाने के बराबर है। क्योंकि ख़्वाहिश कौन पैदा करता है? हमारा मन। इसलिए जब हम अल्लाह या किसी दरवेश से कोई ख़्वाहिश पूरी करवाना चाहते हैं तो उस दरवेश को और अल्लाह को अपने मन की मरज़ी के मुताबिक़ चलाने की कोशिश कर रहे होते हैं। हम अपने मन को उनकी रज़ा से ऊँचा समझते हैं।

मौलाना अलहाज़ वाहिद बख़्श सियाल चिश्ती के अनुसार ऊँचे दरजे के दरवेशों ने करामातें नहीं दिखाईं क्योंकि करामातें निचले दरजे की चीज़ें हैं। करामातें दिखाने से रूहानियत में कमी आती है। ज्यों-ज्यों साधक ज़ाते-हक़ (प्रभु) की तरफ़ तरक़्क़ी करता है, वह ख़ुद-बख़ुद करामात से ऊपर उठता जाता है। ज़ाते-अल्लाह में अभेद हो चुका दरवेश, राज़ी-ब-रज़ा रहना पसंद करता है, करामातें दिखाना नहीं।[11]

ख़्वाजा मोईनुद्दीन के मुरीद और ख़लीफ़ा हज़रत बख़्तियार काकी ने फ़रमाया है कि मर्दे-कामिल वह है जो आख़िरी मक़ाम पर पहुँच कर भी करामात में न पड़े।[12]

इसमें कोई शक नहीं कि कामिल दरवेश अपने मुरीदों को सच्चाई और अल्लाह से इश्क़ के रास्ते पर क़ायम रखने के लिए उनकी कई तरह से मदद करते हैं और उनकी सबसे बड़ी करामात होती है दिल में अल्लाह की मोहब्बत के बीज बोना और फिर इसे पानी दे-देकर पेड़ का रूप बनाने में मदद करना। अल्लाह की रज़ा में राज़ी रहना सिखाना ही सच्चे दरवेशों की सच्ची करामात है। इसी लिए कहावत है कि पीर नहीं उड़ते, मुरीद उन्हें उड़ाते हैं यानी गुरु तो करामातें नहीं करते, लेकिन उनके चेले उनके साथ कई तरह की करामातें जोड़ देते हैं।

ख़्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती की सबसे बड़ी करामात ख़ुद अल्लाह के साथ विसाल करके दूसरों को विसाल करने में मदद करना था। आपकी सबसे बड़ी करामात कामिल दरवेश ख़्वाजा बख़्तियार काकी थे, जिन्होंने आगे बाबा फ़रीद को अल्लाह के साथ विसाल करने और बाबा फ़रीद ने हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया के विसाल की करामात की।

शादी और संतान

इतिहासकारों के अनुसार आपने लंबी उम्र में बीबी उम्मत उल्लाह के साथ पहली शादी के कुछ साल बाद बीबी इस्मत के साथ दूसरी शादी की। इन शादियों से आपके तीन बेटे हुए: ख़्वाजा फ़ख़रूद्दीन अबुल ख़ैर, ख़्वाजा ज़िआउद्दीन अबू सैयद और ख़्वाजा हिसामुद्दीन अबू सालेह। आपके घर एक बेटी ने भी जन्म लिया, जिसका नाम बीबी हफ़ीज़ जमाल था। आपके तीनों बेटे दरवेशी के रंग में रँगे हुए थे और आपकी बेटी हमेशा ख़ुदा की इबादत में लगी रहती थी।[13]

विसाल की रात

इतिहासकारों के अनुसार ख़्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती ने 16 मार्च 1238ई. को अजमेर में इस फ़ानी देह को छोड़ दिया। उस समय आपकी उम्र 96 साल थी।* कहा जाता है कि शाम की नमाज़ के बाद आपने रात को अपने हुजरे (कमरा) का दरवाज़ा बंद कर दिया और हुजरे (कमरे) के बाहर बैठे मुरीदों को रात भर ग़ैबी आवाज़ सुनाई देती रही। ऐसा मालूम होता था मानो आप वज्द (आनंदमग्न) की हालत में हों। सुबह हज़रत ख़्वाजा फ़ख़रूद्दीन गुरदेज़ी के दरवाज़ा खोलने पर मालूम हुआ कि आप इस फ़ानी दुनिया को छोड़ चुके थे। नमाज़-ए-जनाज़ा के बाद उन्हें उसी जगह दफ़न किया गया जहाँ वह इबादत किया करते थे। आज आपकी मज़ार उसी जगह पर है। ख़्वाजा हुसैन नागौरी ने उस जगह पर मक़बरा बनवाया और बाद में महमूद ख़िलजी ने 1455ई. के क़रीब उस जगह आलीशान मक़बरा बनवा दिया। मक़बरे में दाख़िल होने के लिए एक ऊँचा दरवाज़ा बनाया गया, जिसे बुलंद दरवाज़ा कहते हैं।[14] शहंशाह अकबर मक़बरे की ज़ियारत के लिए आया तो उसने बहुत बड़ी देग ख़्वाजा की दरगाह को भेंट की, बाद में अकबर का बेटा जहाँगीर कुछ दिनों के लिए अजमेर में रहा और उसने अकबर से कुछ छोटी देग

* अलग-अलग इतिहासकारों ने आपके इंतक़ाल की अलग-अलग तारीख़ दी है।

दरगाह को भेंट की। बादशाह अल्तमश भी हज़रत मोईनुद्दीन चिश्ती की दिल से क़द्र करता था।

ख़्वाजा साहिब के सफ़र

ख़्वाजा साहिब के मुताबिक़ सफ़र चार तरह के हो सकते हैं।

पहला, किसी मक़सद को पूरा करने के नज़रिए से किए जाने वाला सफ़र; दूसरा, दिली-तस्कीन (अंदरूनी तसल्ली) के लिए किए जाने वाला सफ़र ताकि ख़ुदा को ख़ुश किया जाए; तीसरा, तरीक़त का सफ़र यानी हज के लिए किया जाने वाला सफ़र; और चौथा, हक़ीक़त की राह का सफ़र जो बिना किसी मुर्शिद के मुकम्मल नहीं हो सकता, जिसमें मुरीद हुक्म में रहते हुए ख़ुदा को अपने क़रीब मानते हुए सफ़र करता है।[15] ख़्वाजा साहिब ने अपनी ज़िंदगी में हर तरह का सफ़र किया। रूहानियत की तालीम के लिए रहबर की खोज में सफ़र किया ताकि दिली-तस्कीन मिल सके। अपने मुर्शिद के साथ 20 साल का लंबा सफ़र किया ताकि हक़ीक़त की राह पर चल सकें। इस दौरान आप मुर्शिद के साथ हज के लिए मक्का-मदीना भी गए। फिर इसके बाद ख़ुदा की तालीम लोगों तक पहुँचाने के मक़सद से आपने हिंदुस्तान का सफ़र किया।

(1) मुर्शिद के साथ 20 साल का लंबा सफ़र

मक्का-मदीना, औश और बुख़ारा (1166 से 1176 ई.)

अपने पीरो-मुर्शिद के साथ ग़रीब नवाज़ फ़ालूज़ा (इराक़) होते हुए मक्का पहुँचे। काबा की ज़ियारत (यात्रा) के बाद मदीना गए। वहाँ से औश (रूस) आकर शैख़ बहाउद्दीन औशी से मुलाक़ात की। शैख़ औशी ने तालीम दी कि जो कुछ तुमको मिले ख़ुदा की राह में देना। धन-दौलत जमा मत करना, बल्कि ख़ुदा के बंदों को खाना खिलाना ताकि ख़ुदा के दोस्त बन जाओ।[16] फिर बदख़शाँ (अफ़गानिस्तान) होते हुए बुख़ारा पहुँचे। इस सफ़र के दौरान मोईनुद्दीन चिश्ती साहिब को 10 साल तक अपने मुर्शिद के साथ रहने का मौक़ा मिला।

औश, सियोस्तान दमिश्क़ का सफ़र (1176 से 1186 ई.)

ग़रीब नवाज़ एक बार फिर अपने मुर्शिद के साथ दस साल के लंबे सफ़र के लिए निकले। इस दौरान आप सियोस्तान (रूस), दमिश्क़ (सीरिया), संजर (ईरान) होते हुए वापस आ गए। रास्ते में हज़रत ख़्वाजा ग़रीब नवाज़ क़स्बा कोहजूदी पहाड़ के नीचे तशरीफ़ लाए जहाँ उनकी मुलाक़ात क़ादिरी सिलसिले के संस्थापक हज़रत शैख़ अब्दुल क़ादिर जीलानी से हुई। वह क़रीब 8 हफ़्ते उनके पास ठहरे। उस समय मोईनुद्दीन चिश्ती की उम्र क़रीबन 50 साल थी और हज़रत जीलानी 90 साल के थे। जब भी आंतरिक रूहानी राज़ों के वाक़िफ़ दरवेश आपस में मिलते हैं तो उन्हें एक दूसरे की सोहबत से जो सुरूर मिलता है, उसका लफ़्ज़ों में बयान करना मुश्किल है।

इसके बाद आप अपने पीरो-मुर्शिद के साथ वापस बग़दाद आ गए। मुर्शिद के साथ सफ़र में 20 साल तक उनकी ख़िदमत करने के बाद 52 साल की उम्र में आपके मुर्शिद हज़रत ख़्वाजा उस्मान हारूनी ने आपको अपना जानशीन और ख़लीफ़ा मुक़र्रर फ़रमाया।

मिरातुल असरार में लिखा है कि शैख़ अहदुद्दीन किरमानी और शैख़ शिहाबुद्दीन उमर सुहरवर्दी ने ग़रीब नवाज़ को ख़िरक़ा (चोग़ा) पेश किया।

(2) मुर्शिद से विदा होकर औश (रूस), इसफ़हान (ईरान) और मक्का-मदीना का सफ़र (1186-1191 ई.)

हज़रत उस्मान हारूनी से ख़िलाफ़त व जानशीनी हासिल करने के बाद जब हज़रत ख़्वाजा ग़रीब नवाज़ ने सफ़र किया तो उस समय हज़रत हारूनी की उम्र 72 साल की थी। उस ज़माने में ग़रीब नवाज़ सफ़र के दौरान अकसर क़ब्रिस्तान में निवास करते थे। जिस जगह पर आपकी शोहरत (प्रसिद्धि) हो जाती थी, वहाँ से आप चुपचाप रवाना हो जाते थे कि किसी को ख़बर भी नहीं होती थी।[17]

क़ुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी का मुरीद बनना

बग़दाद से रवाना होकर आप औश (रूस) पहुँचे और वहाँ से इसफ़हान (ईरान) तशरीफ़ ले गए। वहाँ आपकी मुलाक़ात हज़रत शैख़ महमूद इसफ़हानी के साथ हुई। यहाँ एक अनोखी घटना घटी। आपको देखते ही एक नौजवान का आपकी तरफ़ झुकाव हो गया। जब आप इसफ़हान से चलने लगे तो वह नौजवान आपके साथ चल पड़ा। जब वह सफ़र में आपके साथ-साथ चलता गया तो आपने उससे पूछा: 'बेटा! आख़िर तुम्हें किस चीज़ की तलाश है?'

उसने जवाब दिया, 'मुझे सिर्फ़ आपकी नज़दीकी चाहिए।' आपने कहा, 'मैं तो ख़ुद दरवेशों का ख़िदमतगार हूँ, मैं तुम्हें क्या दे सकता हूँ?' नौजवान ने जवाब दिया, 'आप क्या हो, यह तो अल्लाह ही जाने, पर आप मेरे मालिक हो और मैं आपका ग़ुलाम हूँ।' इस बात का हज़रत के दिल पर बहुत असर हुआ और उन्होंने उसे अपने प्रेम की चादर में छुपा लिया। बाद में यही नौजवान हिंदुस्तान पहुँच कर आपका ख़लीफ़ा बना और हज़रत क़ुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी के नाम से मशहूर हुआ।[18] शैख़ फ़रीद जो बाद में बाबा फ़रीद के नाम से मशहूर हुए, हज़रत काकी के ही मुरीद थे।

(3) मदीना से बग़दाद होते हुए हिंद का सफ़र और पहली बार अजमेर में दाख़िल होना (1191-1192 ई.)

अपना सफ़र जारी रखते हुए आप इराक़ के शहर इस्तराबाद चले गए। वहाँ आपको कामिल दरवेश शैख़ नासिरूद्दीन की सोहबत हासिल हुई। शैख़ साहिब का ताल्लुक़ हज़रत बायज़ीद बिस्तामी के साथ था। आप दो-ढ़ाई महीने हज़रत नासिरूद्दीन की संगति में रहे और बाद में अफ़गानिस्तान के शहर हिरात तशरीफ़ ले गए। आप सारा दिन घूमते-फिरते रहते पर रात का वक़्त हज़रत ख़्वाजा अब्दुल्ला अंसारी के मज़ार पर गुज़ारते और सारी रात अल्लाह की इबादत में लगे रहते। यहाँ आपकी शोहरत चारों तरफ़ फैल गई और लोग भारी तादाद (संख्या) में अजीबो-ग़रीब फ़रियादें लेकर आपके पास आना शुरू हो गए। आपको यह बात पसंद न आई और आप चुपचाप वहाँ से सब्ज़वार तशरीफ़ ले गए।

कहा जाता है कि सब्ज़वार (अफ़गानिस्तान) का गवर्नर बहुत ज़ालिम था और प्रजा उसकी बदमिज़ाजी से बहुत तंग थी। हज़रत ख़्वाजा मोईनुद्दीन बेझिझक उसके बाग़ में चले गए। वहाँ आप नमाज़ में बैठ गए। इतने में अचानक गवर्नर आ गया और अपने मुलाज़िमों को कहने लगा कि इस फ़क़ीर को यहाँ क्यों रहने दिया। बाग़ से बाहर क्यों नहीं निकाला। ख़्वाजा ग़रीबनवाज़ ने जब हाकिम की ओर नज़र उठाकर देखा तो आपका जमाल और जलाल देखकर वह ज़मीन पर गिर पड़ा। होश आने पर निहायत ही शर्मिंदा हुआ और माफ़ी माँगने लगा। ख़्वाजा साहिब ने चंद कलमे नसीहत के फ़रमाए।

इन कलामों का ऐसा गहरा असर हुआ कि उसका कायाकल्प हो गया। वह आपका मुरीद बन गया। उसने बहुत बड़ी रक़म और बहुत सारा साज़ो-सामान मुर्शिद को भेंट किया। देखते ही देखते आपने वह सब कुछ ज़रूरतमंदों में बाँट दिया।*

हिंदुस्तान पहुँचना

बल्ख़ के बाद हज़रत मोईनुद्दीन ग़ज़नी पहुँच गए। आप कुछ दिन यहाँ ठहरे। आपको हिंदुस्तान जाकर सूफ़ी मत का प्रचार करने की दिव्य प्रेरणा अंदर से मिली। आप 1191-92 ई. में पंजाब में लाहौर तशरीफ़ ले आए। यहाँ आप एक मशहूर सूफ़ी दरवेश सैयद अली हिजवीरी के मज़ार पर गए जो दाता गंज बख़्श के नाम से मशहूर थे। इसके बाद आप मुलतान चले गए जो इल्म और रूहानियत का बहुत बड़ा केंद्र था। यहाँ आपने आम बोलचाल वाली हिंदुस्तानी भाषा सीखी ताकि हिंदुस्तान के लोगों की बात समझ सकें और उन्हें अपनी बात समझा सकें।

मुलतान के बाद कुछ वक़्त के लिए आप दिल्ली गए और वहाँ से राजस्थान के ऐतिहासिक शहर अजमेर तशरीफ़ ले गए। उन दिनों यहाँ पृथ्वीराज चौहान की हुकूमत थी। हज़रत मोईनुद्दीन ने अजमेर के पास एक ग़ैर आबाद जगह पर अपनी झोंपड़ी बना ली। शुरू में राजपूतों

---

* *अल्लह के वली*, पृ. 163

ने आपका विरोध किया पर धीरे-धीरे आपकी रूहानी शख़्सियत और अल्लाह के प्रेम के उपदेश का लोगों पर असर होना शुरू हो गया।

ख़्वाजा साहिब के ख़िताब

ख़्वाजा साहिब को औलियाओं का सरताज कहा जाता है। आपको लोग ग़रीब नवाज़, बेसहारों का सहारा अल्लाह का प्यारा मानते हैं। आपको मुईअन-अल-हिंद कहा जाता है क्योंकि हिंदुस्तान के बेशुमार लोगों ने आपकी इलाही तालीम से फ़ायदा उठाया।

कुछ और ख़िताब जो उन्हें दिए गए हैं:

अताए रसूल (पैग़ंबर का उपहार)
ख़्वाजा-ए-अजमेर (अजमेर वाले ख़्वाजा)
हिंद-उल-वली (हिंदुस्तान के संत)
सुल्तानुल हिंद (भारत के आध्यात्मिक शासक)
आफ़ताब-ए-जहान (संसार के सूरज)
पनाह-ए-बेकसाँ (दुखियों के मददगार)
ताज-उल-आशिक़ीन (प्रेमियों के ताज)

ख़्वाजा साहिब की तालीमी-विरासत

ख़्वाजा साहिब रूहानियत से सराबोर थे। आपकी तालीम, नीचे लिखी किताबों में दर्ज है[19]:

गंजे-असरार
अनीसुल-अरवाह
कश्फ़ुल असरार
रिसाला तसव्वुफ़ मनज़ूम
रिसाला आफ़ाक़-ओ-अनफुस
दीवान-ए-मुईन
इसरारे-हक़ीक़ी
हदीस-उल-माअरिफ़

सात ख़त

ख़्वाजा साहिब ने कुछ ख़त अपने ख़लीफ़ा हज़रत ख़्वाजा क़ुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी को लिखे हैं। इन ख़तों के ज़रिए आपने उन्हें वक़्त-बवक़्त तालीम दी। साथ ही इन ख़तों की यह ख़ासियत है कि आज भी जो इन्हें पढ़ता है उसे सच के मार्ग पर चलने में मदद मिलती है। यहाँ सात ख़तों[1] के कुछ अंश दिए गए हैं।

पहला ख़त

बंदा-ए-मिस्कीन, मोईनुद्दीन की तरफ़ से सलाम के बाद मालूम हो कि मैं जो रब्बी राज़ों के चंद नुक्ते तुमको लिख रहा हूँ, वो अपने सच्चे मुरीदों और ख़ुदा के चाहने वालों को सिखा देना, जिससे कि वे गुमराह होने से बच सकें।

मेरे दोस्त, जिसने ख़ुदा को पहचान लिया है, वह कभी सवाल या ख़्वाहिश या आरज़ू नहीं करता। जिसने ख़ुदा को नहीं पहचाना, वह दीन की बात को नहीं समझ सकता। दूसरी बात यह कि लालच और हवस को छोड़ दो। जिसने लालच और हवस को छोड़ दिया उसने अपने मक़सद को पा लिया। ऐसे आदमी के बारे में ख़ुदा ख़ुद फ़रमाता है कि जिस आदमी ने अपने नफ़्स (मन) को ख़्वाहिशों से रोक रखा है, उसका घर जन्नत में है और जिस दिल को ख़ुदा ने अपनी तरफ़ से फेर दिया है, उसे दुनिया के लालच व हवस ने लपेट कर शर्मिंदगी की ज़मीन में दफ़न कर दिया है।

एक दिन आरिफ़ों (ज्ञानी लोगों) के सुल्तान ख़्वाजा बायज़ीद बिस्तामी ने फ़रमाया, 'मैंने ख़ुदा की तरफ़ से एक आवाज़ सुनी जिसने मुझसे पूछा कि बायज़ीद तुम क्या चाहते हो' मैंने कहा, 'जो तू चाहता है।' जवाब आया, 'अच्छा, तू जिस तरह मेरा है, उसी तरह मैं तेरा हूँ।'

इसलिए समझ लो अगर तसव्वुफ़ (रूहानियत) की हक़ीक़त जानना चाहते हो तो अपने तमाम ऐशो-आराम के दरवाज़े बंद कर लो, फिर अपने दिल में मोहब्बते-हक़ को रौशन करके बैठ जाओ, अगर तुमने यह काम कर लिया तो समझ लो कि सूफ़ियों के सूफ़ी हो गए। ख़ुदा के चाहने वाले को यह बात अपने दिलो-जान से पूरी करनी चाहिए। ऐसा करने से वह शैतान के बहकावे से बचेगा और दोनों जहान की नेमतें हासिल करेगा।

एक दिन मेरे शैख़ हज़रत ख़्वाजा उस्मान हारूनी (मोईनुद्दीन के मुर्शिद) ने फ़रमाया, 'मोईनुद्दीन, क्या तुझे मालूम है कि साहिबे-हुज़ूर किसे कहते हैं? देखो, साहिबे-हुज़ूर वह है जो हर वक़्त इबादत में लीन हो और उसके साथ जो भी हो, उसे ख़ुदा की तरफ़ से आया समझे और उसमें राज़ी रहे। बल्कि उसे उसकी रहमत ही समझे और तमाम इबादतों का मक़सद यही है कि ज़िंदगी में हर वक़्त ख़ुदा की दया-मेहर नज़र आए। जिसे यह हासिल है, वह जहान का बादशाह है, बल्कि जहान का बादशाह उसकी दया-मेहर का मोहताज है।'

फिर हज़रत ख़्वाजा उस्मान हारूनी ने मुझसे कहा कि कुछ दरवेशों का कहना है कि जब मुरीद कमाल हासिल कर लेता है तो उसे घबराहट नहीं रहती है, यह ग़लत है। दूसरे दरवेश यह कहते हैं कि मंज़िल पर पहुँच कर इबादत करना ज़रूरी नहीं होता, यह भी ग़लत है। क्योंकि हज़रत मुहम्मद साहिब इबादत और बंदगी में हमेशा ख़ुदा के सामने सज्दे में रहे, इसके बावजूद उन्होंने जो मक़ाम ख़ुदा की दोस्ती का हासिल किया, किसी दूसरे ने वह मक़ाम न पाया। इसके बावजूद उनमें इतनी हलीमी थी कि आप फ़रमाते थे: हमने तेरी ऐसी इबादत नहीं की जैसा कि हक़ था। इसलिए यक़ीन जानो कि जब आरिफ़ अपनी मंज़िल तक पहुँच जाता है तब उस वक़्त उसकी इबादत और रियाज़त (मेहनत) और ज़्यादा बढ़ जाती है। इसी से वह साहिबे-हुज़ूर बनता है और ख़ुदा की दोस्ती को पहचानता है।

जब कोई आदमी सच्चे दिल से इबादत करता है और ख़ुदा की तलब (इच्छा) अपने दिल में पैदा करता है तो उसे ऐसी प्यास लगती है, जैसे उसने आग के कई प्याले पी रखे हों। वह जैसे-जैसे ऐसे प्याले पीएगा, उसकी प्यास और बढ़ती ही जाएगी, इसलिए कि ख़ुदा के जमाल (हुस्न) की कोई इंतिहा नहीं। उस वक़्त उसका सुकून बेसुकूनी में बदल जाता है और आराम बेचैनी में, जब तक कि वह ख़ुदा के पास न पहुँच जाए।

दूसरा ख़त

मेरे लिखने का मक़सद यह है कि एक दिन मेरे शैख़ हज़रत ख़्वाजा उस्मान हारूनी की ख़िदमत में ख़्वाजा नजमुद्दीन सुग़रा, ख़्वाजा मुहम्मद तारिक़ और मैं मौजूद थे कि उसी वक़्त एक आदमी हज़रत ख़्वाजा उस्मान हारूनी के पास आया और आपसे पूछा कि यह कैसे मालूम हो कि किसको ख़ुदा की दोस्ती हासिल है? हज़रत ख़्वाजा उस्मान हारूनी ने फ़रमाया कि जो नेक काम करता है, यही उसकी दोस्ती की पहचान है। यक़ीन जानो कि जिस आदमी को ख़ुदा ने नेक काम करने की तौफ़ीक़ (ताक़त) दी है, उसके लिए उसने अपनी दोस्ती का दरवाज़ा खोल दिया है।

फिर आपकी आँखों में आँसू आ गए और आपने फ़रमाया, 'एक आदमी के यहाँ एक कनीज़ (दासी) थी, जो आधी रात के वक़्त उठ कर वुज़ू करके नमाज़ पढ़ती, ख़ुदा का शुक्र अदा करती और यह दुआ करती कि ख़ुदा, मैं तेरे क़रीब पहुँच चुकी हूँ, मुझे अपने से दूर न करना।' एक दिन उस कनीज़ के मालिक ने यह सुन कर उससे पूछा, 'तुझे यह कैसे मालूम हुआ कि तुझे ख़ुदा की दोस्ती हासिल है।' दासी ने जवाब दिया, 'ऐ मेरे मालिक, मुझे मालूम है कि ख़ुदा ने मुझे यह ताक़त दी है तभी मैं आधी रात को उठ कर उसका ज़िक्र करती हूँ। मुझे ग़फ़लत से उसने दूर रखा है। इस वास्ते मैं जानती हूँ कि जब उसने मुझे अपना दोस्त बनाया तो यह हिम्मत भी दी कि जब सारी दुनिया उसको भूल चुकी होती है, (यानी सोई होती है) तो मैं उसे याद करती हूँ।

इससे बढ़ कर दोस्ती की निशानी और क्या होगी।' यह सुन कर उसका मालिक रोने लगा और दासी से कहा, 'जाओ, मैंने तुम्हें आज़ाद किया।'

इसलिए इनसान को चाहिए कि दिन-रात ख़ुदा की इबादत में लगा रहे ताकि उसका नाम नेक लोगों के साथ लिखा जाए और वह अपने नफ़्स व शैतान की क़ैद से बचा रहे।

तीसरा ख़त

मेरे दोस्त, मेरे मुर्शिद ने फ़रमाया है कि हमें ख़ुदा की राह पर चलने वालों के सिवा किसी और को इश्क़ के राज़ नहीं बताने चाहिएँ। जब ख़्वाजा शैख़ सादी ने पूछा कि ख़ुदा के रास्ते पर चलने वालों को कैसे पहचान सकते हैं तो मेरे मुर्शिद (उस्मान हारूनी) ने जवाब दिया कि ख़ुदा के रास्ते पर चलने वालों की पहचान यह है कि वे सब कुछ छोड़ देते हैं और ख़ुदा की पहचान कर लेते हैं। जिसने दुनिया को नहीं छोड़ा,* उसमें दरवेशी की बू भी नहीं। यह अच्छी तरह समझ लो कि कलमा-ए-शहादत में किसी और माबूद (जिसकी इबादत की जाए) का इनकार व सिर्फ़ अल्लाह का इक़रार ख़ुदा तक पहुँचने के रास्ते हैं। दौलत और इज़्ज़त बड़े भारी बुत हैं, इन्होंने बहुत-से लोगों को सीधी राह से गुमराह किया है और कर रहे हैं, लोगों के लिए ये ख़ुदा बन गए हैं। जिसने दौलत और इज़्ज़त की मोहब्बत को दिल से निकाल दिया, उसने एक तरह से पूरा इनकार किया और जिसने इसका इनकार किया उसने ख़ुदा के रास्ते पर चलना शुरू कर दिया और इस तरह उसने इक़रार किया और यह बात ला इलाह इल्ला अल्लाह के कहने और उस पर अमल करने से हासिल होती है।

* तर्के-दुनिया यानी दुनिया को छोड़ने से सूफ़ियों का मतलब है कि वह दुनिया में रहता हुआ खाता-पीता है, खिलाता-पिलाता है, पहनता-पहनाता है और अपनी ज़रूरतों पर पैसा ख़र्च करता है लेकिन जमा नहीं करता। माले दुनिया (दुनिया की धन-दौलत) से मोहब्बत नहीं करता, न ही कमाने में इतना अंधा हो जाता है कि हक़ की कमाई और हराम की कमाई में पता ही न चले। (*चिश्ती तालीमात और अस्रे-हाज़िर में उनकी मानवीयत*, पृ. 29)

चौथा ख़त

हक़ीक़त को जानने वाले, ख़ुदा के आशिक़, मेरे भाई ख़्वाजा क़ुतुबुद्दीन अच्छी तरह समझ लो कि लोगों में अक़्लमंद और ख़ुदा का दोस्त वह है, जिसने अपनी हर मुराद (ख़्वाहिश) को ख़त्म करके दरवेशी अपना ली हो, क्योंकि हर मुराद में नामुरादी (बिना किसी ख़्वाहिश) है और नामुरादी में मुराद है। जो लोग ग़फ़लत में खोए हुए हैं, उन्होंने रहमत को मुसीबत और मुसीबत को रहमत समझ रखा है। इसलिए अक़्लमंद वह इनसान है जिसे दुनिया की किसी मुराद का ख़्याल आए, तो उसे छोड़ कर नामुरादी व फ़क्र (फ़क़ीरी) का रास्ता अपना ले, क्योंकि यह दुनिया मिटने वाली है और उसकी हर मुराद भी मिटने वाली है। जब इसको छोड़ कर मालिक से दिल लगाएगा तो अपने असली मक़सद को पा सकेगा। इस तरह दुनिया की मुरादों का ख़्याल छोड़ कर ख़ुदा की राह में जब नामुरादी के रास्ते पर चलेगा तो अपनी असली मुराद यानी ख़ुदा की दोस्ती को हासिल कर लेगा। इस तरह नामुरादी के रास्ते पर चलते हुए अपनी मुराद पाएगा।

इसलिए ख़ुदा के दोस्तों को चाहिए कि वे ख़ुदा से कभी ग़ाफ़िल (बेख़बर) न हों, क्योंकि वह हमेशा था, हमेशा है और हमेशा रहेगा। जब ख़ुदा आँख दे तो हर रास्ते में उसके जलवे के सिवा हम और कुछ न देखें, क्योंकि अगर ग़ौर से देखो तो तुम इस दुनिया के एक ज़र्रे (कण) में ही ख़ुदा की क़ुदरत से पूरी दुनिया देख सकते हो।

पाँचवाँ ख़त

एक रोज़ मैं हज़रत ख़्वाजा उस्मान हारूनी की ख़िदमत में हाज़िर था कि एक आदमी ने आकर अर्ज़ किया, 'शैख़ साहिब, मैंने बहुत-से ज्ञान हासिल किए और बड़ी परहेज़गारी की लेकिन अपना मक़सद नहीं पाया।' हज़रत हारूनी ने फ़रमाया, 'तुम सिर्फ़ एक काम करो—ज्ञानी भी हो जाओगे और परहेज़गार भी। वह यह कि हज़रत मुहम्मद साहिब ने फ़रमाया है कि दुनिया को छोड़ना सभी इबादतों का सरताज है और दुनिया की मोहब्बत

तमाम पापों की जड़।' अगर तुम इस हदीस* पर चलने लगो तो तुम्हें किसी और ज्ञान की ज़रूरत न रहे, लेकिन ऐसा कहना आसान है मगर इस पर चलना बड़ा मुश्किल। यक़ीन जानो दुनिया से मुँह फेर लेना बड़ा मुश्किल काम है। यह उस वक़्त तक नहीं हो सकता जब तक कि तुम ख़ुदा की मोहब्बत में मुकम्मल (पूर्ण) न हो जाओ और यह मोहब्बत तभी पैदा होती है जब ख़ुदा तुम्हें हिदायत देता है। ख़ुदा की हिदायत के बिना कोई अपना मक़सद हासिल नहीं कर सकता।

इसलिए इनसान के लिए ज़रूरी है कि ख़ुदा को हमेशा अपने क़रीब समझे, अपना वक़्त दुनिया की ख़्वाहिशों को पूरा करने में बरबाद न करे बल्कि वक़्त को मौक़ा समझ कर उसकी याद में उम्र गुज़ार दे। हमेशा नरमी से पेश आए और अपने गुनाहों की शर्मिंदगी की वजह से कभी सिर न उठाए। हर हालत में प्यार और हलीमी से पेश आए, क्योंकि मोहब्बत, बंदगी और इबादत में हलीमी सबसे बढ़ कर है।

इसके बाद आपने एक वाक़िआ फ़रमाया कि हातिम बिन उसम, ख़्वाजा हारूनी के शागिर्द व मुरीद थे। एक दिन हज़रत ने पूछा, 'कितने वक़्त से तुम मेरी मोहब्बत और ख़िदमत में रहे और मेरी बातें सुनते हुए कितना वक़्त बिताया?' हातिम ने जवाब दिया, 'तीस साल से आपकी ख़िदमत में हूँ।' ख़्वाजा उस्मान ने फिर पूछा, 'इस ज़माने में तुमने क्या हासिल किया और क्या फ़ायदा उठाया?' आपने जवाब दिया, 'आठ फ़ायदे हासिल किए और इससे ज़्यादा की मुझे ज़रूरत भी नहीं।' ख़्वाजा हारूनी ने फ़रमाया, 'हातिम, मैंने सारी उम्र तेरे काम में ख़त्म कर दी। मैं भी नहीं चाहता तू इससे ज़्यादा हासिल करे।' हातिम ने अर्ज़ किया, 'मेरे लिए इतना ज्ञान काफ़ी है, क्योंकि दोनों जहानों की अच्छाई इन आठ फ़ायदों में आ जाती है।' फ़रमाया, 'अच्छा, उन्हें बयान करो।'

* पैग़ंबर हज़रत मुहम्मद साहिब के जीवन की घटनाओं और कथाओं पर आधारित संग्रह को हदीस कहते हैं।

पहला फ़ायदा: पहला यह है कि जब मैंने लोगों को देखा तो मालूम हुआ कि हर इनसान ने किसी-न-किसी को अपना महबूब बना रखा है और वह महबूब व माशूक़ इस तरह हैं कि कुछ का साथ मौत की तकलीफ़ों तक है, तो कुछ का मौत तक और कुछ क़ब्र के दरवाज़े तक पीछा करते हैं। इसके बाद कोई भी साथ नहीं जाता। ऐसे लोग कोई भी नहीं जो इनसान के साथ क़ब्र में जाकर उसका ग़म बाँटें और क़ब्र के अँधेरे को रौशन करके क़यामत तक की मंज़िलें पूरी कराएँ। मैंने समझ लिया कि इन ख़ूबियों से भरा महबूब सिर्फ़ इनसान के नेक अमल हैं। इसलिए मैंने उन्हें (नेक अमलों को) अपना महबूब बना लिया और उनको मैंने चाहना शुरू किया ताकि क़ब्र में भी वे मेरे ग़म बाँट सकें और मेरे लिए चिराग़ का काम करें और मुझे छोड़ कर न जाएँ। ख़्वाजा उस्मान ने फ़रमाया, हातिम तुमने बहुत अच्छा समझा।

दूसरा फ़ायदा: यह कि जब मैंने लोगों को ग़ौर से देखा तो मालूम हुआ कि सबके सब लालच व हवस के चाहने वाले बने हुए हैं और अपने जिस्मानी आराम के लिए लालच व हवस के कहने पर चलते हैं। फिर मैंने इस आयत पर ग़ौर किया,... 'जिसने ख़ुदा से डर कर अपने नफ़्स (मन) की ख़्वाहिशों को रोका, उसका ठिकाना जन्नत है।' इसलिए मैंने यह जान लिया कि ख़ुदा की मोहब्बत और दोस्ती अपने नफ़्स की दुश्मनी से हासिल होती है। इसलिए मैंने अपने नफ़्स की ख़िलाफ़त करना शुरू कर दिया और अपनी रियाज़त (रूहानी अभ्यास) की सख़्तियों से उसे छुपा लिया और उसकी कोई भी आरज़ू पूरी नहीं की। मुझे सिर्फ़ ख़ुदा का हुक्म मानने में ही आराम मिलता है। ख़्वाजा उस्मान ने फ़रमाया, 'ख़ुदा तुझे इसमें बरकत दे। तूने ख़ूब समझा और ख़ूब इस पर अमल किया।'

तीसरा फ़ायदा: यह कि जब लोगों के हालात को ग़ौर से देखा तो मैंने यह समझ लिया कि हर आदमी दुनिया को हासिल करने की कोशिश

करता है। रंज व मुसीबत बर्दाश्त करता है तब कहीं दुनिया वालों से कुछ हासिल करता है और फिर इस पर बड़ा ख़ुश होता है कि जैसे उसने ज़िंदगी का मक़सद पा लिया हो। इसके बाद मैंने जब इस आयत पर ग़ौर किया,... 'जो कुछ तुम्हारे पास है, वह ख़त्म (फ़ना) हो जाने वाला है और जो कुछ ख़ुदा के पास है, वह बाक़ी रहने वाला है।'

इसलिए जो कुछ मैंने अपने पास जमा करके रखा था वह सब ख़ुदा के रास्ते में ख़र्च कर दिया और ख़ुद को ख़ुदा के हवाले कर दिया, ताकि मेरी दौलत ख़ुदा के यहाँ बाक़ी रहे और रोज़-ए-हश्र (क़यामत के दिन) में मेरे लिए बख़्शिश का सामान बने। हज़रत ख़्वाजा उस्मान ने जवाब दिया, 'ख़ुदा तुझे बरकत दे, तूने यह बहुत अच्छा किया।'

चौथा फ़ायदा: यह कि जब मैंने लोगों को ग़ौर से देखा तो मालूम हुआ कि कुछ लोग अपने क़बीले व क़ौम की ताक़त पर नाज़ करते हैं। कुछ ने अपनी दौलत और औलाद को ही अपनी इज़्ज़त समझ रखा है और उस पर ग़ुरूर करते हैं। इसके बाद मैंने इस आयत पर ग़ौर किया,... 'तुममें से ख़ुदा के क़रीब सबसे बढ़ कर इज़्ज़त वाला वही समझा जाएगा, जो सबसे संयमी व इबादत करने वाला होगा।' तो मालूम हुआ कि बस यही सच है और जो लोगों का ख़्याल है, वह बिलकुल ग़लत है, इसलिए मैंने परहेज़गारी व इबादत इख़्तियार की ताकि मैं ख़ुदा के सामने उसका दोस्त बन कर जाऊँ। ख़्वाजा उस्मान ने फ़रमाया, 'तूने सच को ख़ूब समझा और अपने लिए ठीक रास्ता चुना।'

पाँचवाँ फ़ायदा: यह कि जब मैंने लोगों के हालात को देखा तो मालूम हुआ कि वे एक दूसरे से जलन होने की वजह से बुराई करते हैं और दौलत, इज़्ज़त और ज्ञान को लेकर हसद (ईर्ष्या) भी करते हैं। फिर मैंने इस आयत-ए-करीमा पर ग़ौर किया,... 'हमने उनमें दुनियावी ज़िंदगी के लिए रोज़ी वग़ैरह तक़सीम की।' इसलिए मैंने

समझ लिया कि पैदा होने से पहले ही ख़ुदा ने हर एक के हिस्से में एक चीज़ दे रखी है और किसी का उस पर क़ाबू नहीं यानी जिसको मिला है, वह ख़ुदा की तरफ़ से मिला है और इसको कोई कम या ज़्यादा नहीं कर सकता, तो फिर ईर्ष्या से कोई फ़ायदा नहीं। इसलिए मैंने ईर्ष्या छोड़ दी और हर एक से दोस्ती कर ली। ख़्वाजा शफ़ीक़ ने फ़रमाया, 'यह भी तूने ख़ूब किया।'

छठा फ़ायदा: यह कि जब दुनिया को ग़ौर से देखा तो मालूम हुआ कि कुछ लोग आपस में दुश्मनी रखते हैं और किसी ख़ास काम के लिए एक दूसरे से लागबाज़ी करते हैं और दुनिया की मोहब्बत में शैतान की पैरवी करने से भी बाज़ नहीं आते। फिर मैंने इस आयत पर ग़ौर किया,... 'शैतान तुम्हारा दुश्मन है।' तो मुझे मालूम हो गया कि शैतान ही हमारा असली दुश्मन है और दुनिया की मोहब्बत में उसकी पैरवी नहीं करनी चाहिए। इसलिए मैंने यह समझ लिया कि अब सिर्फ़ ख़ुदा का हुक्म मानना चाहिए। यही सही है और इसी से हम अपने दुश्मन से बच सकते हैं। ख़्वाजा उस्मान ने फ़रमाया, 'तूने सच्चा रास्ता पकड़ लिया।'

सातवाँ फ़ायदा: यह कि जब मैंने लोगों को ग़ौर से देखा तो मालूम हुआ कि हर आदमी अपनी रोज़ी और रोज़गार के लिए जी-तोड़ कोशिश करता है और इसी वजह से वह हराम व हलाल के फ़र्क़ को भूल जाता है और अपने आप को ज़लील करता है। फिर मैंने इस आयत पर ग़ौर किया,... यानी 'पूरी ज़मीन पर कोई ऐसा हैवान नहीं, जिसका रिज़्क़ (रोज़ी-रोटी) ख़ुदा के ज़िम्मे न हो।' इसलिए मैंने जान लिया कि मैं भी एक जानदार (हैवान) हूँ, तब से ख़ुदा की ख़िदमत में लग गया और मुझे यक़ीन हो गया कि मेरी रोज़ी वह ज़रूर मुझ तक पहुँचाएगा, चूँकि उसने इस बात का वादा किया है। ख़्वाजा उस्मान ने फ़रमाया, 'तुमने ख़ूब समझा।'

आठवाँ फ़ायदा: यह कि जब मैंने ख़ल्क़े-ख़ुदा (ख़ुदा की कायनात) को ग़ौर से देखा तो मालूम हुआ कि हर आदमी को किसी न किसी चीज़ पर भरोसा है, कुछ को सोने चाँदी पर, कुछ को ज़मीन-जायदाद पर और कुछ को दोस्तों व रिश्तेदारों पर। फिर मैंने इस आयत पर ग़ौर किया,... 'जो आदमी ख़ुदा पर भरोसा करता है तो अल्लाह उसके लिए काफ़ी होता है।' इसलिए मैंने जान लिया कि ख़ुदा पर भरोसा करने में ही असली फ़ायदा है और यही मेरे लिए काफ़ी है। वह मेरा बड़ा अच्छा पालनहार है। ख़्वाजा उस्मान ने फ़रमाया, 'हातिम, ख़ुदा तुम्हें इन बातों की ताक़त दे। मैंने तौरेत, ज़बूर, इंजील और क़ुरान-ए-करीम को अच्छी तरह पढ़ा है और इन चारों आसमानी किताबों* में से यही आठ बातें हासिल हुईं। जो इन पर अमल करता है, वह इन चारों किताबों पर अमल करता है।' इसके बाद हज़रत ख़्वाजा उस्मान हारूनी ने फ़रमाया कि 'इस बातचीत से यह मालूम हो गया कि इनसान को ज़्यादा इल्म की नहीं, अमल की ज़रूरत है।'

छठा ख़त

एक दिन मेरे शैख़ (हज़रत हारूनी) ने नफ़ी व इस्बात (इनकार व इक़रार) के कलमे के बारे में क्या ही अच्छा फ़रमाया कि नफ़ी (इनकार) है अपने आप को न देखना और इस्बात (इक़रार) ख़ुदा को देखना है। ख़ुद को देखने वाला कभी भी ख़ुदा को देखने वाला नहीं हो सकता। इस दुनिया में हमें चंद रोज़ रहना है, फिर यहाँ से चले जाना है। इसलिए हमारा होना न होने के बराबर है। सिर्फ़ ख़ुदा की ही ज़ात क़ायम रहती है। अगर हम इस बात को समझ लें तो अपना मक़सद पा लेते हैं।

इस बात को अच्छी तरह समझ लो कि नमाज़, रोज़ा वग़ैरह की सूरत भी है और हक़ीक़त भी। इस हक़ीक़त को छोड़ कर सिर्फ़ ज़ाहिरी सूरत

* तौरेत और ज़बूर यहूदियों का, इंजील ईसाइयों का और क़ुरान मुसलमानों का धार्मिक ग्रंथ है।

पर भरोसा कर लेना फ़ुज़ूल है और वह आदमी बड़ा नादान है जो इसकी हक़ीक़त तक नहीं पहुँचा।... फिर फ़रमाया, ख़ुदा हमेशा था, हमेशा है और हमेशा रहेगा। रूहानी राह पर चलने वाला राही शुरू में अंधा होता है। ख़ुदा की तरफ़ से जब उसे रौशनी मिलती है, तब फिर उससे देखता है और अमल करता है और इसकी हद यह है कि अपने आप को भूल जाता है और जब ऐसी हालत हो जाती है तो वह ख़ुदा के क़रीब पहुँच जाता है और हमेशा के लिए ज़िंदा हो जाता है।

सातवाँ ख़त

रूहानी इल्म का यह राज़ अपने मुरीदों को ज़रूर बता देना कि फ़क़ीर और मुर्शिदे-कामिल का क्या मतलब है और उसको पहचानने की क्या निशानियाँ हैं। रूहानियत की राह पर चलने वाले पीरों ने फ़रमाया है—फ़क़ीर उसे कहते हैं, जो तमाम ज़रूरतों से ऊपर उठ गया हो और उसे अब किसी चीज़ की ज़रूरत न हो सिवाय ख़ुदा के, सारी दुनिया ख़ुदा का आईना है। बुज़ुर्गों ने इसे इस तरह फ़रमाया है कि कामिल फ़क़ीर वह है जिसके दिल में सिवाय ख़ुदा के और कुछ न हो और उसका मक़सद व चाह सिवाय ख़ुदा के कुछ न रहे यानी वह हर रिश्ते से आज़ाद होकर और हर तकलीफ़ से दूर होकर ख़ुदा की याद में ऐसा हो जाए कि न उसे किसी तकलीफ़ का एहसास हो न ख़ुशी का, बस जमाल-ए-ख़ुदा के दीदार में वह हर चीज़ से बेगाना हो जाए।

इसलिए वह ख़ुदा को ही चाहता है, वही उसकी मंज़िल होता है। इस मंज़िल को पाने के लिए दिल में तड़प और दर्द ज़रूरी है चाहे वह दर्द हक़ीक़ी (ख़ुदा के लिए) हो या मजाज़ी (दुनियावी)। यहाँ मजाज़ी का मतलब है कि वह शरीअत को पूरा करे यानी उसके दिल में हर वक़्त दर्द-ए-ख़ुदा व दर्द-ए-रसूल जागता रहे तभी वह अपनी मंज़िल को पा सकेगा और वही सच्चा फ़क़ीर कहलाएगा।

नसीहतों के फूल

ख़्वाजा साहिब के मुरीद और ख़लीफ़ा हज़रत ख़्वाजा क़ुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी ने आपकी तालीम को इकट्ठा किया और उसे एक किताब का रूप दिया जिसका नाम है *दलील-उल-आरिफ़ीन*। संत-महात्मा, सूफ़ी दरवेश कई बार नसीहत देते वक़्त सख़्त लफ़्ज़ों का इस्तेमाल करते हैं ताकि उनकी कही बात का लोगों पर असर हो। आपकी दी गई कुछ नसीहतें नीचे बयान की गई हैं:

1. जिस शख़्स में ये तीन ख़ूबियाँ मौजूद हों, उसे ख़ुदा का दोस्त समझना चाहिए–
   - दरिया की तरह सख़ावत यानी देने में दरिया-दिली
   - सूरज की-सी शफ़क़त (दया) यानी सूरज की रौशनी की तरह सब पर बराबरी की नज़र
   - ज़मीन जैसी मेहमाँनवाज़ी यानी अपने प्यार के आग़ोश में सबको जगह
2. फ़क़ीरी का हक़ उस शख़्स को है जो आख़िरत के लिए सब कुछ जमा कर ले और दुनिया के लिए कुछ बाक़ी न रखे।
3. ख़ामोशी और इबादत में रमे रहना आरिफ़ (ज्ञानी) लोगों की पहचान है।
4. आशिक़ का दिल मोहब्बत की आग से जला हुआ होता है। जो भी ख़्वाहिश उसके अंदर आती है, यह आग उसे भी जला कर राख कर देती है।

5. आरिफ़ (ज्ञानी) वह है जो मौत को दोस्त समझे, ऐशो-इशरत को दुश्मन और ज़िक्रे-इलाही को अज़ीज़ रखे।
6. अल-हम्द-शरीफ़ (ख़ुदा की तारीफ़, सदा उसका ज़िक्र) हर सालिक (अभ्यासी) के लिए बेहतरीन अमल है।
7. बड़ी मोहब्बत के साथ पीर (मुर्शिद) का दीदार करना और ख़िदमत (सेवा) करना इबादत है। पीर की तालीम बड़े ग़ौर से सुनो और वह जो बताए, उस पर अमल करो।
8. तरीक़त की राह पर चलने वाले के लिए ज़रूरी है कि पहले इस दुनिया को तलाक़ दे, फिर इस दुनिया में मौजूद चीज़ों की ख़्वाहिश को और फिर अपने नफ़्स को तलाक़ दे। तब अहले सुलूक सूफ़ियों के रास्ते पर क़दम रखे। जिसने यह नहीं किया और दुनिया की नुमाइश में फँसा रहा, समझ लो... वह झूठा है।
9. अगर कोई यह दावा करे कि मुझे ख़ुदा की दोस्ती हासिल है और वह इस दुनिया को भी छोड़ने को तैयार नहीं, समझ लो कि वह झूठा है।
10. आरिफ़ (ज्ञानी) का तवक्कुल (भरोसा) सिवाय ख़ुदा के किसी और पर नहीं होता। वह न अपनी राहत (आराम) की दास्तान किसी को सुनाता है, न रंज की शिकायत किसी से करता है। आरिफ़ इन तीनों चीज़ों पर भरोसा नहीं करता—पहला इल्म (ज्ञान), दूसरा अमल (इबादत), तीसरा ख़ल्क़ (लोग) यानी अपने इल्म पर फ़ख़्र न करे, न अपनी इबादत को बहुत समझे और न लोगों की मोहब्बत से उसके दिल में ग़ुरूर हो बल्कि वह अपनी हर चीज़ का मालिक ख़ुदा को समझे।
11. जिसने भी कुछ पाया है, ख़िदमत से पाया है। मुरीद (शिष्य) को चाहिए कि मुर्शिद (गुरु) का हुक्म मानने में कोई हीलो-हुज्जत (किंतु-परंतु) न करे क्योंकि पीर (गुरु) जो भी हुक्म देता है, उसमें मुरीद की भलाई छुपी होती है।

12. शरीअत* पर क़ायम रहने के बाद अगला पड़ाव तरीक़त† है। उसके बाद मारफ़त‡ की पहचान होती है। इससे ऊपर हक़ीक़त§ है। हक़ीक़त में पहुँच चुके साधक की हर मुराद पूरी हो जाती है।
13. मारफ़त चुप्पी को जन्म देती है। जो अंदरूनी रूहानी राज़ जान लेता है, उसके होंठ सिल जाते हैं।
14. आरिफ़ का अल्लाह पर इतना पक्का भरोसा होता है कि वह सदा सब्र-शुक्र की हालत में रहता है।
15. मोहब्बत वाले दिल की यह पहचान है कि हर वक़्त फ़र्मांबरदार (आज्ञाकारी) बना रहे और ख़ुदा का ख़ौफ़ दिल में रखे कि उसका बरताव कहीं ख़ुदा की रहमत से उसे महरूम न कर दे।
16. तमाम मोहब्बतों से बढ़ कर अल्लाह की मोहब्बत ख़ास है।
17. आरिफ़ (ज्ञानी) उसे कहते हैं जिस पर रोज़ाना सुबह व शाम अल्लाह-तआला के नूर की बारिश होती है। वह ख़ुदा की मोहब्बत में ऐसे मस्त रहता है कि हर वक़्त, सोते-जागते ज़िक्रे-ख़ुदा से कभी भी दूर नहीं होता।
18. अल्लाह ने जो फ़र्ज़ हम पर क़ायम किए हैं, अगर हम उनमें काहिली (सुस्ती) बरतते हैं तो हमारी मोहब्बत का दावा झूठा है।
19. इश्क़-ए-सादिक़ (सच्चा प्रेम) तो वह है कि इनसान पर दोस्त की तरफ़ से भले ही मुसीबतों के पहाड़ टूट पड़ें, मगर वह अपनी ज़बान से आह भी न करे और इन तमाम मुसीबतों को ख़ुशी से बर्दाश्त करे।
20. ऐ लोगो, मौत के आने से पहले अपनी आख़िरत के सफ़र के लिए तैयारी कर लो और मौत के लिए हमेशा तैयार रहो, क्योंकि मोहब्बत करने वाला तो अपने महबूब से मिलने के लिए बेचैन रहता है।

---

* **शरीअत**=मज़हब के क़ायदे-क़ानून का पालन करना।

† **तरीक़त**=नेक अमल अपनाना और उसके ज़रिए दिल की पाकीज़गी हासिल करते हुए रूहानी राह पर चलना।

‡ **मारफ़त**=अंतर में अपने आप की पहचान करना।

§ **हक़ीक़त**=ख़ुदा से विसाल हासिल करना।

21. अल्लाह जिसे अपने इश्क़ की सौग़ात बख़्शता है, उसके अंदर फ़क़ीरी और मस्ती पैदा कर देता है ताकि वह दुनिया का दिलदार न बन जाए।
22. ख़ुदा को वही पहचान सकता है जो ग़फ़लत से दूर रहे और ख़ुद को कुछ न समझे।
23. जो जिस चीज़ के लायक़ होगा, ख़ुदा बग़ैर माँगे उसको देता है, क्योंकि जब इश्क़-ए-सादिक़ हो तो फिर किसी चीज़ को पाने की आरज़ू नहीं रहती। रूहानियत की मंज़िल की यह सबसे बड़ी परख है कि अपनी आरज़ुओं को ख़ुदा की मर्ज़ी का पाबंद कर लो।
24. जो लोग अपनी मर्ज़ी ख़ुदा के सुपुर्द कर चुके हैं, उन्हें जन्नत और उसकी चीज़ों की कोई ज़रूरत नहीं। उनकी हक़ीक़ी (सच्ची) ज़रूरत व आरज़ू तो सिर्फ़ यही है कि ख़ुदा उनसे ख़ुश हो। वे लोग ही आरिफ़ कहलाते हैं।
25. नेक लोगों की सोहबत नेक काम से अच्छी है और बुरों की सोहबत बुरे काम से बुरी है। अल-सोहबत-तास्सुर यानी सोहबत का असर होता है, इसलिए जो जिस सोहबत को इख़्तियार करेगा वह वैसा ही फल पाएगा।
26. गुनाह करने से इतना नुक़सान नहीं होता है जितना अपने किसी भाई को ज़लील (बेइज़्ज़त) करने से होता है।
27. तमाम इबादतों से ज़्यादा मक़बूल (मंज़ूर) इबादत यह है कि बेकसों (दुःखी, लाचार) और मज़लूमों (जिन पर ज़ुल्म हुआ हो) की मदद करना।
28. भूखों को खाना खिलाना, प्यासों को पानी पिलाना, ग़रीब की ख़्वाहिश पूरी करना, दुखियों की मदद करना, दरवेशी इसी का नाम है, जो आए उसे महरूम (ख़ाली) न जाना पड़े।
29. जो औलाद माँ-बाप की क़दमबोसी (सेवा) करते हैं उनके गुनाह माफ़ कर दिए जाते हैं। हज़रत बायज़ीद बिस्तामी फ़रमाते हैं कि उन्होंने जो कुल मरतबे पाए, अपने माँ-बाप की ख़िदमत करने से पाए। ख़ुदा का हुक्म है कि माँ-बाप की ऐसी ख़िदमत करो, जैसा उनका हक़ है।

30. जो इनसान किसी भूखे को खाना खिलाता है, ख़ुदा क़यामत के दिन उसके और दोज़ख़ (नरक) के बीच सात परदे तान देता है यानी जो ख़ुदा के रास्ते में नेकी करते हैं उसका बेहतरीन नतीजा ख़ुदा ही देता है।
31. हर काम नेक नीयत और विश्वास से करना चाहिए।
32. तौबा की तीन क़िस्में हैं—पहली शर्मिंदगी, दूसरी गुनाहों से बचना, तीसरी ख़ुद को ज़ुल्म से रोकना और दुश्मनी से दूर रहना।
33. वहदत की हालत में आशिक़, माशूक़ और इश्क़ एक हो जाते हैं।
34. दोस्ती उसी का नाम है कि उसका ज़िक्र दिल से करें क्योंकि दिल याद के लिए बनाया गया है।
35. जब तक मुर्शिद से तालीम नहीं मिलती तब तक मंज़िल पर नहीं पहुँच सकते।

रूहानी तालीमात

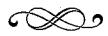

वहदत

हज़रत मोईनुद्दीन चिश्ती अपने कलाम में लिखते हैं:

न कह कि कसरते-दुनिया में वहदत ही नहीं,
गर चश्मे-दिल से देखे तो हर जगह दिखता है वही। (16.8)

गर वहमो-गुमाँ है मैं और तू का तुझे,
निकल इस ख़ामख़याली से, मैं और तू सब है वही। (16.9)

कहाँ है फ़र्क़ साक़ी की शराब और जाम में,
मोईन लब न हिला, रूहे-अंजुमन है वही। (16.11)

यह ग़ज़ल वहदत की एक ख़ूबसूरत मिसाल है। इस कायनात में जो कुछ है, उस एक ख़ुदा से है; जो कुछ है, उसमें ख़ुदा का नूर समाया हुआ है। इनसान के अंदर भी वही है, उसी का नूर ज़र्रे-ज़र्रे में समाया हुआ है। मैं-तू, अपना-पराया सिर्फ़ वहम है। हर एक शै उसी से ज़ाहिर हुई, उसी का हिस्सा है। इसीलिए आप कहते हैं कि शराब भी वही है, जाम भी वही है, साक़ी भी वही है, इस महफ़िल की रूह भी वही है।

किताब *कश्फ़ुल असरार* में ख़्वाजा साहिब कायनात की रचना का राज़ बताते हुए कहते हैं कि ख़ुदा ने जब अपने आप को ज़ाहिर करना चाहा तो हर चीज़, जिसका कोई वुजूद नहीं था उसे वुजूद में लाया गया। उसने आग, हवा, पानी और ज़मीं को बनाया। फिर इनसे नबातात (जड़ी-बूटियाँ, पेड़-पौधे), हैवानात (पशु आदि), इनसान बनाए। पूरी तरह

से पाक इनसान नूरे-मुहम्मदी कहलाया। इस तरह सारी कायनात रब के नूर से ज़ाहिर हुई।[1] सूफ़ी फ़क़ीर इसे वहदत उल-वुजूद भी कहते हैं यानी सारी कायनात में वही समाया है:

नूर तेरा कुल कायनात में ज़ाहिर हुआ,
नूर से तेरे ज़मीं-आसमाँ पैदा हुआ। (22.1)

तू ख़ुद ही है मरकज़ सारे वुजूद का,
क़ायम है जहाँ तेरे ही नूरो-मेहर से। (23.2)

हर जिस्मो-जाँ में अव्वल भी तू आख़िर भी तू,
ज़ाहिर भी बातिन* भी, है सारे जहाँ में तू ही तू। (23.3)

इनसान की हस्ती का आधार भी अल्लाह, और सारी कायनात को बनाने वाला भी अल्लाह है। वही सभी का आदि है, वही अंत है। जब कायनात नहीं बनी थी तब भी अल्लाह मौजूद था, कायनात ख़त्म होने के बाद भी अल्लाह ही क़ायम रहेगा। हक़ीक़त एक है। ख़ालिक़ (ख़ुदा) और ख़ल्क़ (कायनात) में कोई फ़र्क़ नहीं है। उसकी सजाई हुई कायनात में बेशक कसरत यानी द्वैत दिखाई देती है लेकिन यह नज़र का धोखा है।

ख़्वाजा साहिब कहते हैं:

> यह ख़्याल करना कि मैं हूँ, मेरी हस्ती है और अल्लाह तआला की भी हस्ती है, गुमराही है। दो वुजूद नहीं बल्कि सिर्फ़ एक है और वो हक़ तआला का है। जब तक तू अपने आप को देखता रहेगा, ख़ुदा को न देखेगा; जब ख़ुद को दरमियान में नहीं देखेगा तब ख़ुदा को देखेगा। दो नहीं हैं चाहे सबको हक़ कहो या रूह।[2]

* बातिन=छुपा हुआ

आप अपने कलाम में नज़र के इस धोखे को लेकर सवाल उठाते हैं:

या अल्लाह दिल के आईने में झलकता है नूर जिसका वो कौन है,
हुस्न ज़ाहिर है तो फिर परदे के अंदर कौन है। (17.1)

ख़ाली जब उससे नहीं इक ज़र्रा भी कायनात का,
फिर दो आलम में सिवाय उसके जलवानुमा कौन है। (17.2)

एक है आफ़ताब, मगर मुख़्तलिफ़* ज़र्रों में है,
हर एक सूरत में रौशन नूर है जिसका, वो आख़िर कौन है। (17.3)

इन शेअरों में सवाल उठाया गया है और साथ ही जवाब भी दिया है कि कुल कायनात में वही जुदा-जुदा सूरत और लिबास में ज़ाहिर है। आप मिसाल देते हैं कि जैसे सूरज एक है लेकिन उसकी रौशनी हर जगह दिखाई देती है उसी तरह उस एक ख़ुदा का नूर ज़र्रे-ज़र्रे में समाया हुआ है।

अपनी 116 वीं ग़ज़ल में भी आप यही ख़्याल पुख़्ता करवाते हैं:

ज़ाहिर में जो है बातिन वो कौन है,
जो न आए समझ और अक़्ल में, आख़िर वो कौन है। (116.1)

ख़ल्क़ में सिफ़त हर चीज़ की ज़ाहिर हुई,
सिफ़त की हद से है जो बाहर, वो कौन है। (116.2)

न ख़बर रखे बदन, न जाँ को कोई असर हो,
फिर भी रूह की तरह है जो ज़ाहिर और निहाँ†, वो कौन है। (116.4)

जब रगे-जाँ में रवाँ है शहदो-शीर‡ की तरह तू,
मेरी शीरीं जाँ में है जो हमराहे-जाँ, वो कौन है। (116.5)

* मुख़्तलिफ़=अलग-अलग रूप में † निहाँ=छुपा हुआ
‡ शहदो-शीर=दूध और शहद की तरह

हिज्र के ग़म में आशिक़ों का दर्दमंद भी तू है,
फिर वस्ल में पाए आराम जिससे आशिक़ वो कौन है। (116.8)

वही सिफ़त बनकर ज़ाहिर होता है, वही सिफ़त की हद से परे है। वो अक़्ल और समझ की पकड़ से परे है। न जिस्म को उसकी समझ है, न रूह को। दोनों के वुजूद का आधार वह एक है। जिस्म के रोम-रोम में भी उसका नूर समाया हुआ है और रूह की जान भी वही है। कायनात के ज़र्रे-ज़र्रे में मौजूद होने के बावजूद भी वह उससे परे है। वही आशिक़ों को जुदाई की आग में तड़पाता है, वही विसाल का सुरूर भी देता है।

इसी लिए आप होशियार करते हैं कि इस कायनात में हर तरह का 'मैं-तू' भ्रम है, क्योंकि हर सूरत के पीछे असल में उस एक का नूर समाया है:

दरम्याँ लाओगे कब तक मैं और तू को ऐ मोईन,
जब मैं और तू है वही फिर दूसरा अब कौन है। (17.7)

अपने आप को वहदत का पुजारी बताते हुए आप लिखते हैं:

देखा है मैंने बुत में भी बुतगर के हुस्न को,
वहदत असल है यही, इसी को पूजता हूँ मैं। (62.6)

ऐ साक़ीए-वहदत मुझे यह जामे-मय कैसा दिया,
कि हर घड़ी दिल से मेरे आती है हू हू की सदा। (120.1)

ख़्वाजा साहिब कहते हैं कि मैं दुनिया की शक्लों से इसलिए प्यार करता हूँ क्योंकि उनमें मुझे ख़ुदा नज़र आता है। मैं कसरत (द्वैत) की नहीं, बल्कि वहदत की पूजा करता हूँ। जब से मैंने तुझसे इश्क़ किया है, हर चीज़ में तू ही तू नज़र आता है। जब से तूने मुझे वहदत की शराब पिलाई है मुझे दिल में हू की हूक़ सुनाई देती है।

क़ुरान शरीफ़ में भी अल्लाह को रब्बुल आलमीन कहा गया है, वह रब जो सारी कायनात का परवरदिगार है। नेक-बद सभी में वही मौजूद है। चाहे कोई ख़ुदा में यक़ीन करता है या नहीं, सभी उसी से जुड़े हैं। इनसान को आईना बना कर ख़ुदा उसमें अपना जलवा देख रहा है। सारी कायनात में उथल-पुथल करने वाला भी वही है:

नेक और बद से भरी है दुनिया सब इसी के जलवे हैं,
मोमिन और काफ़िर जुड़े हैं सभी नूरो-नार से।* (107.10)

ख़ुद को देखने के लिए उसने इनसाँ को आईना बनाया,
फिर ख़ुद ही करे उथल-पुथल, हैराँ हूँ उसके काज से। (107.11)

आप मंसूर का हवाला देते हुए कहते हैं:

वो न थी मंसूर की आवाज़ तख़्ताए-दार† पर,
ख़ाक के उस जिस्म में अल्लाह की आवाज़ देख। (74.8)

जब अनलहक़ था ज़ुबाँ पर, होश में था मंसूर कब,
सूली पर उसके अंदर सिवाय अल्लाह के कोई ग़ैर न था। (107.8)

मंसूर के अंदर बैठ कर अनलहक़ का नारा लगाने वाला भी ख़ुदा था और सूली पर चढ़ाने वाला और चढ़ने वाला भी वही था।

आख़िर आप कहते हैं कि सिवा अल्लाह के दोनों जहान में और कोई नहीं। वही था, है और होगा, उसका नूर कायनात के हर ज़र्रे में है। उसकी वहदत का राज़ हमारी अक़्ल, दलील और सोच से परे है:

ज़ाहिर हुआ तेरी ही हस्ती से हर वुजूद,
जो था, जो है, जो होगा, छुपा और ज़ाहिर जहाँ में। (23.9)

---

* **नूरो-नार**=जन्नत का नूर और दोज़ख़ की आग † **तख़्ताए-दार**=सूली के तख़्ते पर

सिवा अल्लाह के, दर नहीं कोई दरमियाने-दो जहाँ,
हैं सौ दलीलें पर कोई इस राज़ से वाक़िफ़ कहाँ। (118.1)

यही वजह है कि वहदत की कैफ़ियत को लफ़्ज़ों में बयान करना मुश्किल है। ख़्वाजा साहिब फ़रमाते हैं कि वहदत की हालत में पहुँचकर इनसान हर तमन्ना, हर शौक़, हर दायरे से ऊपर उठ जाता है, हर हादसा बेमायने हो जाता है:

रुख़े-मंसूर का हुआ कुछ इस तरह से दीदार,
हर तफ़्सील* और नुत्क़ो-बयाँ† से गुज़र गया। (75.6)

ये अजब है कि ख़ुद ही नुक़्ता हूँ ख़ुद ही दायरा,
मगर ज़माने की गर्दिश के दायरे से गुज़र गया। (75.8)

पहुँच कर बारगाहे-क़ुद्स‡ में जो है मेरी मंज़िले-मक़सूद,
मैं दोनों जहाँ के हादसों से गुज़र गया। (75.9)

देखा मोईन ने आज खुली आँखों से तेरा हुस्न,
कि जन्नत औ बहिश्त के वादों से भी गुज़र गया। (75.10)

अपनी मंज़िले-मक़सूद पर पहुँच कर रूह ख़ुदा से विसाल हासिल कर लेती है, अपना पराया सब ख़त्म हो जाता है।

अँगूठी के ऊपर जड़ा था मोती चमकता हुआ,
होकर जुदा वो अँगूठी से हुआ अपने असल में निहाँ। (93.3)

ख़ुदा की ज़ात में गुम होकर न गुनाह बाक़ी रहे, न बंदगी,
कैफ़ियत हुई ऐसी कि मैं उसमें और वो मुझमें समा गया। (120.8)

---

* **तफ़्सील**=हर तरह की व्याख्या, विवरण

† **नुत्क़ो-बयाँ**=बोलने और बात करने की ताक़त ‡ **बारगाहे-क़ुद्स**=शाही महल

रूह और रब

शहंशाह के हाथों से उड़ा है तू ऐ बाज़,
सिवाय शाही महल के, तू किसी ओर उड़ान न भरना। (3.4)

ख़्वाजा साहिब रूह को उसकी असलियत बताते हुए आगाह करते हैं कि तू शहंशाह रब के हाथों से उड़ कर आया बाज़ है और तेरा मक़सद इस दुनिया से निकल कर उस शाही महल, अपने मंज़िले-मक़सूद की ओर उड़ान भरना है।

क़ुरान शरीफ़ के हवाले से ख़्वाजा साहिब ने रूह और रब के रिश्ते के गहरे राज़ को अपने कलाम में बयान किया है:

नूर अल्लाह का हुआ है ज़ाहिर तेरे लिए,
अलस्तु बिरब्बिकुम का जब तूने इक़रार किया। (8.3)

क़ुरान शरीफ़ की आयत है: 'अलस्तु बिरब्बिकुम' यानी रब ने रूहों से पूछा: क्या मैं तुम्हारा रब नहीं हूँ? उन्होंने जवाब दिया: 'क़ालु बला शहिदना' यानी बेशक तू हमारा रब है। इस दिन को 'रोज़े-मीसाक़' यानी इक़रार का दिन कहा जाता है। इस तरह रब और रूह का रिश्ता रोज़े-अज़ल यानी कायनात के शुरू से क़ायम हो गया और हर रूह रब में वापस जाकर मिलने की हक़दार बन गई।

तू बंदा मेरा, मैं रब्ब तेरा, है यही काफ़ी क़यामत में,
कि ख़त्म हो जाता है वहाँ माँ बाप का रिश्ता। (8.4)

इसी लिए इनसान के जामे को अशरफ़ुल-मख़्लूक़ात कहा जाता है यानी वो जामा जो कायनात का सबसे अव्वल जामा है, जिससे ख़ुदा ने एक ख़ास रिश्ता जोड़ा हुआ है; ऐसा रिश्ता जो दुनिया के कच्चे रिश्तों से कहीं ऊपर है, जो क़यामत में भी क़ायम रहेगा।

क़ज़ा के दर्ज़ी ने चाहा कि सिले ख़ास लिबास,
ज़ाहिर इस लिबास में तेरे-मेरे रिश्ते की डोर है। (11.5)

ख़्वाजा साहिब वहदत का एक और ख़ूबसूरत राज़ बताते हुए कहते हैं:

आदम का, न आलम का था नामोनिशाँ,
वहदत के ख़ेमे में ख़ुदा का हमनशीं तू ही तो था। (117.9)

जब कायनात और आदम का सृजन नहीं हुआ था तब भी रूह रब के साथ थी। इसलिए जब रब ने आदम को बना कर उसमें अपनी रूह फूँकी और उसे अपने से मिलने का हक़ भी दे दिया, तब उस समय फ़रिश्तों को भी आदम को सज्दा करने का हुक्म दिया:

ख़ास अपनी रूह से इनसान में चमका है वो,
वरना कब करते फ़रिश्ते सज्दा आदम को वहाँ। (108.9)

सज्दा आदम को हरगिज़ न करते फ़रिश्ते अर्श पर,
देखते वो गर न जिस्म में ज़ाहिर नूरे-ख़ुदा। (117.10)

इसलिए आपने रूह को कभी शहंशाह के महलों का बाज़ तो कभी वस्ल के बाग़ की बुलबुल कहा है:

आशियाना शहबाज़ का था कभी बुलंदियों पर,
ख़ाके-जिस्म की वजह से दलदल में फँसा हूँ मैं। (62.3)

बुलबुले-इश्क़ तो है सारे आलम से आज़ाद,
परिंदा हुशियार है वो, उलझा जो दिल के जाल में है। (13.10)

ख़्वाजा साहिब मानते हैं कि रब की जुदाई में रूह इस दुनिया में तड़प रही है, इस जिस्म की क़ैद में फँसी हुई है और आज़ाद होकर वापस शाही महल की ओर उड़ान भरना चाहती है।

जब से बाग़े-वस्ल से आई है क़ैदे-जुदाई में,
रोती है वो अपने वतन की याद में सुबहो-मसा*। (99.8)

ऐ बुलबुल! महफ़िले-दुनिया में कब तक रोती रहेगी,
तोड़ कर हक़ की मदद से, हो इस पिंजरे से जुदा। (99.9)

जुदाई में तड़प रही रूह की हौसला-अफ़जाई करते हुए आप कहते हैं कि तू दुनिया की महफ़िल में कब तक परेशान रहेगी! ख़ुदा की रहमत के सहारे शरीर का पिंजरा तोड़ कर अपने असल की ओर उड़ान भर।

आपने इस जिस्म को रूह और रब की जुदाई की वजह और साथ ही इस ख़ाकी वुजूद को रब के विसाल का ज़रिया भी माना है। इस बारे में आप हज़रत यूसुफ़ की मिसाल देते हैं:

चाक दामन से यूसुफ़ की जुदाई का पाया दुख याक़ूब ने,
अख़ीर में पैग़ाम वस्ल का उसके पैरहन से ही
याक़ूब को मिला। (99.10)

हज़रत यूसुफ़ के भाई उसे कुएँ में फेंक कर उसके कपड़ों को ख़ून से सान कर पिता याक़ूब के पास ले गए और बोले कि यूसुफ़ को भेड़िया खा गया है। इस तरह यूसुफ़ का लिबास पिता के लिए जुदाई के दर्द की वजह बन गया। कई सालों बाद जब हज़रत यूसुफ़ मिस्र के बादशाह बने तो आपके भाई मिस्र में अनाज ख़रीदने गए। यूसुफ़ ने उन्हें पहचान लिया। आपने अपना एक लिबास पिता के पास भेजा। यह लिबास ही पिता के लिए ख़ुशख़बरी का सबब बन गया।

इस तरह यह शरीर ही रूह को ख़ुदा से जुदा करता है:

बाज़ मेरी रूह का फँसा है आबो-गिल† के जाल में,
गर बुलाए ख़ुद इसे आज़ाद हो जाए तन मेरा। (50.7)

---

* सुबहो-मसा=सुबह और शाम

† आबो-गिल=मिट्टी-पानी भाव नश्वर शरीर

लेकिन यह फ़ानी शरीर ही उससे विसाल का ज़रिया भी है:

यह न देख कि तू ख़ाकी है और ख़ाक है अँधेरा,
देख तो, तू ही है आईनाए-जमाल ख़ुदा का। (3.8)

आप आदम को इस कायनात में लाने के पीछे ख़ुदा का मक़सद बताते हैं:

यह पूँजी ज़िंदगानी की बड़ी ही बेशक़ीमती है,
रहा ग़ाफ़िल जो भी इससे, ज़िंदगी बरबाद करता है। (56.7)

आलमे-पाक से यह दिल ज़मीं पर आया है,
जाएगा फिर वहीं पर, उलझा अभी जाल में है। (13.6)

यह इनसानी जामा बड़ा बेशक़ीमती है, जो इस जामे में ख़ुदा के विसाल के मक़सद को नहीं समझता वो अपनी ज़िंदगी बरबाद कर देता है। यह रूह मक़ामे-हक़ से यहाँ आई है और इस दुनिया की लज़्ज़तों के जाल में फँस गई है, पर इसका मक़सद वापस अपनी मंज़िल पर पहुँचना है।

रूह, रब और इनसानी जामे का रिश्ता और मक़सद बताते हुए आपने एक मजलिस में फ़रमाया:

आदम इबादत करे यानी मेरी याद दिल में बनाए रखे। यह जान ले कि मैं हमेशा इस इनसानी जिस्म में मौजूद हूँ। वह मुझे दिल से मोहब्बत करे। मैंने इसी मक़सद से उसे बनाया ताकि मुझे पहचान सके, मेरी सिफ़त करे और मुझसे मुहब्बत करे।[3]

आप बंदे की तरफ़ से दुआ करते हैं कि ख़ुदा रहमत करके कसरत से निकाल कर वहदत में ले आए तो इनसान की हालत में इंकलाब आ जाए:

मेरा फ़ानी लिबास गर जुदा करे तू तो क्या हो,
करे जो अपने राज़ ज़ाहिर मुझ पर तो क्या हो। (25.1)

आप इश्क़ के ज़रिए मौला के नूर को देखने की ताकीद करते हैं, क्योंकि इनसानी जिस्म की असलियत रूह है और रूह की असलियत रब है और रब का वुजूद इश्क़ है:

इश्क़ ही मज़हब है मेरा, न माने तो देख तू,
कि किस क़दर मेरे ऐतबार का इक़रार चमके है। (42.5)

इश्क़

यह हक़ीक़त है कि इश्क़े-इलाही इनसान की ज़रूरत है और इस इश्क़ का दस्तूर भी निराला है। सूफ़ी दरवेशों का मानना है कि इश्क़ ख़ुदा की बख़्शिश है, बंदा सोचता है कि वह ख़ुदा से इश्क़ करता है लेकिन बंदे से पहले ख़ुदा उससे इश्क़ करता है; बल्कि इश्क़ की शुरुआत ही ख़ुदा से होती है:

होकर मतवाला मोईन आया है बज़्मे-अज़ल से,
कि हक़ ने शराबे-इश्क़ का था जाम पिलाया। (112.9)

कि ख़ुदा ने कायनात के शुरू में इश्क़ का जो एक जाम पिलाया था, मैं आज भी उसी के नशे में मस्त हूँ।

इलाही इश्क़ दुनियावी इश्क़ से बिलकुल अलग है। रब के आशिक़ ख़ुद नहीं उससे प्यार करते बल्कि रब उनके अंदर इश्क़ पैदा करता है। ख़ुदा की रहमत के बिना यह इश्क़ हो नहीं सकता। यह उसी तरह है जैसे सूई को अपनी तरफ़ खींचने का काम चुंबक करता है, सूई में ताक़त नहीं है कि चुंबक के पास पहुँच जाए। ख़्वाजा साहिब फ़रमाते हैं:

'मैं उससे मोहब्बत करता हूँ,
वो मुझसे मोहब्बत करता है' इसका शोर क्यूँ?
गर उसकी तरफ़ से मोहब्बत की इब्तदा ही नहीं है। (56.8)

इश्क़ की तहरीर हर इक जिस्म पर है खिंची,
जो अदम से इस फ़ानी जहाँ में आए है। (41.10)

वो इश्क़ ही नहीं जिसकी शुरुआत ख़ुदा से न हो। दुनिया की हर रूह अदम* से अपने लिए इश्क़ का शाही परवाना लिखवा कर इस कायनात में आती है। ख़ुदा की भेजी हर रूह अपने साथ इश्क़ लेकर आती है। कोई भी रूह इश्क़ के दायरे से बाहर नहीं।

इश्क़ का यह सिलसिला कब, कहाँ और कैसे शुरू होता है, कुछ पता नहीं:

जुनून है यह कैसा जो सर चढ़ कर बोलता है,
न जाने सिलसिला इसका शुरू कहाँ से होता है। (28.1)

इलाही इश्क़ की कशिश इतनी ज़ोरदार होती है कि आशिक़ पर एक जुनून छा जाता है। ख़्वाजा साहिब फ़रमाते हैं कि मेरा दिल तिनके की तरह नहीं है, यह बड़ा शक्तिशाली है; ख़ुदा के इश्क़ की कशिश ही इस पर्वत को हिला सकती है:

कशिश ऐसी है तेरी कि कोहे-दिल भी हिल जाए,
वरना यह दिल कोई तिनका नहीं जो हवा से हिलता है। (28.3)

रब रूह को इस कायनात में भेज ज़रूर देता है पर रूह पर हमेशा अपनी नज़र रखता है। रूह अगर कभी ख़ुदा से दूर हो भी जाए, उसे भूल भी जाए पर रब उसे कभी नहीं भूलता, उसकी रहमत से रूह फिर इश्क़ के दायरे में आ जाती है:

नाज़ से है वो अलग फिर भी ये दिल कहता है,
देखता है मुझे छुपी नज़रों से वो यार अभी। (49.5)

---

* अदम=परलोक

आप समझा रहे हैं कि ख़ुदा का इश्क़ दब सकता है पर कभी नाश नहीं होता, क्योंकि रब की हमेशा यही कोशिश होती है कि वो रूह को इस दुनिया से अलग करके अपने इश्क़ में समेट ले:

आशिक़ों को मय पिला कर खींचता हूँ अपनी ओर,
वो नहीं आते तो मैं परेशाँ होकर ख़ुद जाता हूँ। (73.8)

इसी लिए ख़्वाजा साहिब ने अपनी मजलिसों में इश्क़ के बारे में फ़रमाया है:

इश्क़ कोई सोच कर किया गया जज़्बा नहीं है। यह ख़ुद-बख़ुद हो जाता है और फिर अपने आप ख़ास अंदाज़ में ज़ाहिर होता है। इश्क़ में कोई हिसाब-किताब नहीं होता। यह कहीं बाहर से लादा नहीं जाता। इश्क़ की पैदाइश अंदरूनी है। यह कुछ ख़ास लोगों पर ही ज़ाहिर होता है। इश्क़ कोई सौदा नहीं। यह ज़मानो-मकाँ (समय और स्थान) की हद से परे है।[4]

इसलिए जब कोई इश्क़ करने वाला यह दावा करे कि जिससे वह इश्क़ करता है, उस पर उसका हक़ है तो वह अपनी जगह से गिर जाता है... सच्चा आशिक़ कभी दावा नहीं पेश करता, क्योंकि जो सच्चे इश्क़ में गिरफ़्तार है उसकी क्या मजाल कि वह दावाए-मोहब्बत पेश करे। जो इस बात पर क़ायम रहा, वही कामयाब हो गया समझो। सच्ची मोहब्बत करने वाले वे लोग होते हैं जिनका दिल ख़ुदा के ज़िक्र के सिवाय और कुछ नहीं सुनता।[5]

इश्क़ सच्चा मज़हब है

रब का इश्क़ ही सच्चा मज़हब है:

इश्क़ ही मज़हब है मेरा, न माने तो देख तू,
कि किस क़दर मेरे ऐतबार का इक़रार चमके है। (42.5)

इश्क़ रूह की बुनियाद है क्योंकि रूह ने कायनात की रचना वाले दिन रब से इक़रार किया था कि मैं तेरे सिवा किसी और से प्यार नहीं करूँगी। रूह के अंदर उस इक़रार का नूर चमक रहा है।

हज़रत शम्स तब्रेज़ कहते हैं:

कुफ़्रो इस्लाम कनूं आमदा ओ इश्क़ अज़ तुस्त,
काफ़िरे रा किह् कुशद इश्क़ ज़ि कफ़्फ़ार मगीर।[6]

कुफ़्र और इस्लाम, या फिर दूसरे धर्म तो बाद में आए हैं पर ख़ुदा का इश्क़ अज़ल* से भी पहले का है। अगर किसी काफ़िर का दिल इश्क़ से घायल हो जाए तो उसे काफ़िर न कहो।

यह समझना कि किसी ख़ास मज़हब के लोग ही रब के इश्क़ के हक़दार हैं, बिलकुल बेसमझी है। इलाही इश्क़ बाहरी भेष या पहनावे से ऊपर है। न कोई हिंदू जनेऊ डाल कर सच्चा हिंदू बन सकता है, न कोई सूफ़ी ख़िरक़ा पहन कर सच्चा सूफ़ी बन जाता है:

फ़र्क़ न करती है असल मक़सद से ये रस्म,
चाहे कोई काबा से, चाहे मंदिर से आए है। (41.13)

बड़े-बड़े परहेज़गार इस वहम का शिकार हो जाते हैं कि जन्नत और बहिश्त के सुखों से बढ़कर कोई सुख नहीं। वे इस बात से वाक़िफ़ नहीं हैं कि इश्क़ से बढ़कर कुछ नहीं:

बादाए-जन्नत के नशे में ही मर गया ज़ाहिद,
गुमाँ उसको था कि उसके सिवा और कोई शराब नहीं। (10.6)

जब तक दिल में ख़ुदा का नूर नहीं चमकता, हर तरह की शरीअत या कर्मकांड बेमायने हैं। दुनिया के हर इनसान में इश्क़ मौजूद है:

इबादतगाहों में तू करता है मेरी तलाश,
इन परदों से निकल, आ सरे-बाज़ार हूँ मैं। (61.5)

* अज़ल=अनादि काल से

इसलिए ख़्वाजा साहिब फ़रमाते हैं:

जला दे इश्क़ की आग में सूफ़ी रेशमी ख़िरक़ा,
कि इसके हर इक तार में सैकड़ों ज़ुन्नार चमके हैं।* (42.8)

जिस इनसान के अंदर इश्क़ ज़ाहिर हो जाता है फिर चाहे वो हिंदू हो या मुसलमान, इस दिल के सफ़र का राही बन जाता है। सच्चा ईमान, सच्चा मज़हब रब का आशिक़ होने में है। यही वजह है कि सच्चे आशिक़ को कभी कोई नुकसान नहीं पहुँचा सकता।

गर दस्ते-मौत टुकड़े-टुकड़े कर दे इस वुजूदे-महल के,
असल बुनियादे-मोहब्बत को ख़लल पहुँचे कहाँ। (58.5)

महबूब की मोहब्बत का सुरूर

इलाही इश्क़ में अपनी हस्ती को नीस्तोनाबूद करना पड़ता है। आप अपने कलाम में फ़रमाते हैं: *हस्ती और नीस्ती वो अपनी ख़ुद खो बैठा।*

आशिक़ी के सुरूर की मिसाल देते हुए आपने अपनी मजलिसों में फ़रमाया है:

'एक बार सफ़र करते हुए किसी जंगल से गुज़र रहे थे कि आपने वहाँ एक दरवेश की लाश पड़ी देखी जो हँस रही थी।' आपने पूछा, 'तुम्हारी तो मौत हो चुकी है अब क्यों हँस रही हो?' उसने जवाब दिया, 'ख़ुदा की मोहब्बत में ऐसा ही होता है, दुनिया के ख़्याल तो सब मिट चुके हैं मगर अपने दोस्त को अब भी देख रही हूँ। हमारा अपने आप पर कोई इख़्तियार नहीं, बस उसके जलवों में गुम हैं।'[7]

* ज़ुन्नार=जनेऊ

ख़्वाजा साहिब ने हज़रत बायज़ीद का हवाला देते हुए फ़रमाया है:

> जब उन्होंने ख़ुदा से अर्ज़ की 'ऐ ख़ुदा, बायज़ीद को दिल-ए-सादिक़ (सच्चा दिल) दे दे। सुबह के वक़्त आवाज़ आई, 'ए बायज़ीद, मेरे अलावा दूसरी चीज़ भी माँगता है। जब तू मुझे माँगता है तो तूझे दिल-ए-सादिक़ से क्या काम।' इसके बाद ख़्वाजा साहिब ने फ़रमाया कि इश्क़े-हक़ीक़ी का मज़ा वही जान सकता है जो इस रास्ते पर चले।[8]

हज़रत राबिया बसरी का हवाला देते हुए आपने फ़रमाया:

> उनका कहना था कि अगर दुनिया मुझे आग के भड़कते शोलों में भी झोंक दे और मैं सिर से पैर तक आग के शोलों में जल जाऊँ, इसके बावजूद अगर मेरे दिल में सब्र का ख़्याल भी आए तो ये दावाए-मोहब्बत झूठा है। क्योंकि अगर तेरी मोहब्बत में खोई हूँ तो आग का एहसास भी न होना चाहिए।[9]

आप बड़े ख़ूबसूरत ढंग से अपने कलाम में फ़रमाते हैं कि बेशक मैंने इश्क़ के गहरे राज़ों के बारे में कई इशारे किए हैं लेकिन यह राज़ बयान से बाहर हैं:

> दावा न कर ऐ मोईन कि दीवान ये अनमोल है,
> अभी तो मारफ़त का मैंने एक पन्ना भी नहीं पढ़ा। (120.9)

> गर कोशिश से हज़ार ख़त भी मोईन लिखे,
> इक लफ़्ज़ राज़े-इश्क़ का मुश्किल से बयाँ करे। (39.7)

ऐ मोईन! भूल कर भी यह दावा न कर कि तेरा कलाम बड़ा ऊँचा है। अभी रब और उसके इश्क़ का पहला पन्ना भी नहीं खुला। अगर कोई

इश्क़ की लाख किताबें भी पढ़ ले, इश्क़ का एक लफ़्ज़ भी बयान नहीं कर सकता।

इश्क़ अक़्ल का मज़मून नहीं

ख़्वाजा साहिब अपने कलाम में बार-बार यह ख़्याल पुख़्ता करवाते हैं कि इश्क़े-इलाही अक़्ल का मज़मून नहीं है जिसे बुद्धि-चतुराई से समझा जा सके। इश्क़ का मक़ाम इल्म और अक़्ल दोनों से ऊँचा है:

> कहाँ खुलता है राज़े-इश्क़ होशियारों पर,
> इस छुपे राज़ की मस्ती से हर दिले-ख़ुमार चमके है। (42.11)

> मोईन को इश्क़ ने अक़्लो-होश से है दूर किया,
> तमाम वक़्त ज़ाया किया बेहासिल को हासिल करने में देख। (54.7)

जब इश्क़ की राह मिली तो अक़्ल, चतुराई सब पीछे छूट गए। तब मालूम हुआ कि अपनी अक़्ल इस्तेमाल करते हुए ख़ुदा को पाने के जो तरीक़े अपनाए थे, वे समय बरबाद करने के बराबर थे क्योंकि अक़्ल से हासिल किया गया इल्म इश्क़ के रास्ते में रुकावट ही पैदा करता है। किसी को चाहे कितना भी ज्ञान हो, दिल में जब तक इश्क़ नहीं, जुदाई का दर्द नहीं, ख़ुदा हासिल नहीं होता:

> भरे हैं मेरे ख़ज़ाने इल्मो-अदब से,
> है फिर भी आहें सुबह की और रोना रात का। (8.1)

इसी ख़्याल को आप अपने कलाम की 57वीं ग़ज़ल में इस तरह फ़रमाते हैं: इस्लामी शरा के अनुसार मुक़द्दमें का फैसला करने वाले को मुफ़्ती कहते हैं जो किए गए कर्मों के अनुसार बुद्धि और तर्क के आधार पर फ़ैसला करता है लेकिन इश्क़ के फ़ैसले अक़्ल और तर्क से परे हैं। आप मुफ़्ती से सवाल करते हैं:

न माने इश्क़ को जो मुफ़्ती, बता दे वो यह ज़रा,
मरा जो कुत्ता नमक की खान में, हो गया कैसे नमक ही। (57.12)

वो अब कुत्ता न रहा कि हो गया नमक,
बता कि राज़ है क्या, गर सबको नहीं यक़ीं। (57.13)

पीर ख़ानक़ाह का हो कोई या फिर मदरसे का,
ना समझा कोई बात को, यह राज़ ही रहा। (57.14)

मुफ़्ती से पूछो कि नमक की खान में मरा कुत्ता नमक कैसे बन गया? यानी रब से इश्क़ में मस्त रब का रूप कैसे हासिल कर गया? इसका जवाब अक़्ल से बाहर है। आप कहते हैं कि ख़ानगाहों के पीर से लेकर मदरसे के उस्ताद तक जिसने इश्क़ के राज़ को न समझा उसने ज़िंदगी बरबाद कर दी।

ख़्वाजा साहिब अक़्ल का परदा दूर करने की अर्ज़ करते हैं:

तू कहाँ है ऐ इश्क़! आकर हटा दे अपना हिजाब,
राह को रोके यह अक़्ल जो है दरम्याँ। (87.4)

आबो-गिल का जिस्म फँसा है कीचड़ में गधे की तरह,
जब कि तबेले में मेरे बँधा है बुराक़े-इश्क़। (87.5)

आपने अपने कलाम में इश्क़ को बुराक़े*-इश्क़ कहा है। आप इशारा कर रहे हैं कि मिट्टी-पानी से बने इस जिस्म के साथ बँधी रूह दुनिया के दलदल में गधे की तरह फँसी है। सिर्फ़ इश्क़ का घोड़ा ही इसे दलदल से बाहर खींच सकता है, और यह इश्क़ का घोड़ा भी मेरे पास ही बँधा है।

आप फ़रमाते हैं कि सच्ची तरीक़त की बुनियाद इश्क़ है। एक बार जो इश्क़ की शराब में नहा लेता है, अक़्ल-चतुराई सब ख़त्म हो जाती है:

* बुराक़े=बहिश्त का चौपाया जिस पर सवार होकर हज़रत मुहम्मद साहिब मेराज पर गए थे।

नफ़्स से जल गए सात आसमाँ के परदे,
आबे-तरीक़त से जब नहा लिया मैंने। (77.3)

अक़्ल ने दिल में जो बात डाली थी,
शराबे-इश्क़ से सब क़ै कर दिया मैंने। (77.4)

रब का दीदार करने के लिए अक़्ल नहीं, बल्कि इश्क़ से भरी मजनूँ वाली आँख होनी चाहिए।

जमाले-यार नज़र आए न अक़्ल की आँख से,
मोईन मजनूँ की नज़र से देख हुस्न लैला का। (5.7)

सच्चा आशिक़

आशिक़ से पूछा जाए तो वह इश्क़ का एक लफ़्ज़ भी बयान नहीं कर पाता। इश्क़ को वही समझ सकता है जिसने इश्क़ किया है:

नुक़्ताए-इश्क़* नहीं होता तख़्ती पर बयाँ,
ऐ मोईन यह राज़ तेरे दिल के इल्म में है। (13.12)

सच्चे आशिक़ के बारे में आप कहते हैं कि उसकी मंज़िल ख़ुदा की दोस्ती हासिल करना है। ऐसी दोस्ती कि उसको दिल से याद करे न कि ज़ुबाँ से और ज़ुबाँ ग़ैर हक़ के ज़िक्र से रोकी जाए।[10]

जब यार तू मेरा है, मैं कोई ग़ैर न चाहूँ,
ग़ैर जो दिल मेरा ले ले ऐसा कोई दिलदार न चाहूँ। (63.1)

तेरी मोहब्बत की कसक का काँटा है जो मेरे दिल में,
उसकी ही चुभन चाहूँ, मैं गुलज़ार न चाहूँ। (63.2)

* नुक़्ताए-इश्क़=इश्क़ की बात

आशिक़ दिल की तमाम मुरादें ख़त्म करके सिर्फ़ महबूब को पाने की मुराद दिल में रखता है। इसी बारे में ख़्वाजा साहिब फ़रमाते हैं कि समरकंद के सफ़र के दौरान आपकी मुलाक़ात किसी नाबीना (अंधे) दरवेश से हुई। आपने इसका कारण पूछा तो दरवेश ने फ़रमाया:

> ... एक बार मेरी नज़र किसी ग़ैर पर पड़ गई, उसी वक़्त आसमान से आवाज़ सुनाई दी कि, 'हमसे मोहब्बत का दावा करता है और दूसरों को देखता है।' यह सुन कर मैं बहुत शर्मिंदा हुआ और यही दुआ माँगी कि 'ऐ ख़ुदा! जो आँख तेरे जलवे के सिवा कुछ और देखे, उसे अंधा कर दे।' उसी वक़्त मेरी आँखों की रौशनी जाती रही। उस दिन से मैं बड़े आराम से सिर्फ़ ख़ुदा की इबादत में मश्ग़ूल हूँ। देखने वालों को यह नज़र आता है कि मैं अंधा हूँ पर मेरा दिल ख़ुदा के नूर से ऐसा रौशन है कि अब मुझे किसी और रौशनी की ज़रूरत नहीं। मेरी आँखों के सामने उसकी अज़मत और जलाल है।[11]

ख़्वाजा साहिब अपने कलाम की 63वीं ग़ज़ल में बड़ी ख़ूबसूरती से आशिक़ के जज़्बात बयान करते हैं:

> राज़ तेरे किसी ग़ैर पे क्यूँ खोलूँ,
> तू जो जाने मैं जानूँ, इज़हार न चाहूँ।
>
> ग़ैरों का मेरे दिल में मुश्किल है गुज़र होना,
> इक तेरे सिवा मैं कोई यार न चाहूँ।
>
> ख़ून पीता हूँ हाथों से तेरे, मगर ख़ुश हूँ,
> तेरे लिए ऐ दिलबर मैं कोई आज़ार न चाहूँ।

> मैं मय नहीं पीता कि तू है मेरा साक़ी,
> मगर जिस्म की इक रग भी मैं होश में न चाहूँ। (63.4-7)

मैं नहीं चाहता कि मेरे और तेरे इश्क़ का राज़ किसी को पता चले। मैं नहीं चाहता कि मेरे दिल में किसी और का ख़्याल भी आए। मुझे तेरे भेजे हुए दु:ख भी प्यारे लगते हैं, क्योंकि मैं तेरी रज़ा में राज़ी हूँ और किसी हालत में तुझे नाराज़ नहीं करना चाहता। मैं चाहता हूँ कि तेरे इश्क़ में इस तरह खो जाऊँ कि मेरी इक रग भी होश में न रहे।

सच्चा आशिक़ जब इश्क़ के सुरूर में डूब जाता है तो उसके लिए हर तरह की ख़्वाहिश, तमन्ना, दुनिया की दोस्ती बेमायने हो जाती है:

> आशिक़ तेरा ग़ैरों से कैसे यारी कर सकता है,
> मैं तो कौसरे-जन्नत का गुलज़ार भी न चाहूँ। (63.8)
>
> फ़रिश्तों की न हूरों की, न ख़्वाहिश अर्श की मुझे,
> ये सब न चाहूँ, कि इश्क़ में हूँ मैं मुब्तिला। (66.5)
>
> ग़ाफ़िल तलब रखे दुनिया की, आक़िल चाहे आक़बत,
> मैं आशिक़ बेदिल हूँ, सिवाय यार के कुछ और न चाहूँ। (63.9)

आशिक़ कहता है कि मुझे बहिश्त और जन्नत या फिर हूरों और फ़रिश्तों की कोई चाह नहीं। मेरे अंदर इश्क़ की सच्ची तड़प है। दुनिया में बेसमझ लोग चाहे दुनिया के सुख माँगते हैं, अक़्लमंद लोग परलोक का सुख चाहते हैं, लेकिन आशिक़ अपने यार के सिवा और कुछ नहीं चाहता।

> ऐ वाइज, तू क्या जाने, बुलाएँ सौ जन्नतें मुझको,
> कि आशिक़ यार से मिलने के सिवा
> दिल में और कोई जगह क्यों रखे। (36.10)

आशिक़ दुनिया की मान-बड़ाई, राजपाट नहीं चाहता, यहाँ तक कि अपनी ख़ुदी भी ख़त्म कर देता है:

हस्ती को छोड़ अपनी, छोड़ मोईन ये रुतबे,
जिसमें न समाए सर वो दस्तार न चाहूँ। (63.10)

इसी ख़्याल को आप अपने कलाम में इस तरह भी फ़रमाते हैं:

ज़मीन पर शहबाज़ हूँ इश्क़ का, दाना चुगने वाला मुर्ग़ नहीं,
शिकार इश्क़ का करने बादशाह के हाथ से उड़ा हूँ। (66.6)

क्योंकि रूह तो रब से इश्क़ करने के मक़सद से इस कायनात में आया शाहबाज़ है। इसे किसी दूसरी चीज़ की ओर नज़र उठाकर देखने में कोई दिलचस्पी नहीं।

आप ने अपने कलाम में जगह-जगह आशिक़ की बेबसी का ज़िक्र किया है:

ऐ यार! दीदारे-हुस्न का तलबगार हूँ मैं,
मक़सद मेरा है तू, तुझे ही देखता हूँ मैं।

आँखें मेरी हैं तेरे ही दीदार के लिए,
गर रुख़ न दिखाए तू, दर तेरा देखता हूँ मैं। (69.1-2)

देखूँ जो तुझको राह में मर जाऊँ वहीं,
मौत से तो ख़ूब है कि तुझे देखता रहूँ मैं।

तेरा विसाल चाहता है आज ही मोईन,
क़यामत तक इंतज़ार का सब्र नहीं रखता मैं। (69.6-7)

तेरे दीद की उम्मीद पे गुज़ार दी है उम्र,
न देख पाऊँ गर तुझे तो ये उम्र न चाहूँ। (71.6)

आप कलाम में फ़रमाते हैं कि हर तरफ़ तूझे ही ढूँढ़ता हूँ, तू न दिखाई दे तो नज़र तेरे दर पर टिकी रहती है। मैं इसी वक़्त तेरा विसाल चाहता हूँ, क़यामत तक इंतज़ार करने का मुझमें सब्र नहीं है। अगर तेरा दीदार न हो तो मुझे उम्र की भी चाहत नहीं है।

इश्क़ की ख़ुमारी में आशिक़ उस हालत में पहुँच जाता है जहाँ न कोई तरतीब, न उसूल, न कोई बाक़ायदगी होती है। वह पुकार उठता है कि मेरा इक क़दम एक परदा तो क्या सात आसमानों, हज़ारों मंज़िलों को चीर कर तुझ तक पहुँच सकता है:

तेरे शराबे-इश्क़ की ख़ुमारी में मैं बेख़बर और मस्त हूँ,
जब से हुस्न तेरा देखा, उसी का है ये फ़ुसूँ।

छुपा रहे तू चाहे जितने भी परदों में,
लगाऊँ इक नारा तो सारे परदे फाड़ दूँ।

परदा न हो दरम्याँ तो फिर रुकावट क्या,
फैला दूँ जो पंख अपने तो सात आसमाँ पे जा पहुँचूँ।

सात आसमाँ तो क्या, जाऊँ इससे भी ऊँचे अर्श पर,
हज़ार मंज़िलें तय करूँ गर इक क़दम बढ़ाऊँ। (71.1-4)

आशिक़ के लिए माशूक़ ही उसके दिल का राज़दार है। आप कहते हैं कि 'इश्क़ की ज़ुबाँ ने' यानी मेरे माशूक़, मेरे ख़ुदा ने इश्क़ के जो गहरे राज़ बयान किए मैं वो कैसे बता सकता हूँ जब लोग इश्क़ से ही महरम नहीं हैं। माशूक़ ही दिल का नुक़्ता और दिल का दायरा है:

ऐ दिल तू राज़दार एक ही दिलबर बेमिसाल का है,
गर तीर मौत का आए तू ही निशाना उसका है। (122.1)

बदन है दायरा, है दरम्याँ इसके नुक़्ता दिल का,
मेरा दिल हो दायरा तो तू ही नुक़्ता, तू ही दायरा है। (122.3)

इश्क़ नज़रे-करम है

हालाँकि हक़ की राह पर चलने वाले आशिक़ को ख़ुदा से इश्क़ के लिए पूरी कोशिश करनी पड़ती है लेकिन इश्क़ ख़ुदा की नज़रे-करम है। क़ुरान शरीफ़ में ख़ुदा को *रहमानुल रहीम* (1:3) कहा गया है यानी वो ख़ुदा जो मेहरबान है, हमेशा रहमत बख़्शता है। ख़्वाजा साहिब फ़रमाते हैं:

> ख़ुदा जब यह चाहता है कि अपने बंदों में से किसी को अपनी दोस्ती का ऊँचा ओहदा दे तो उस पर अपनी मोहब्बत को ग़ालिब कर देता है।[12]

आप ने अपने कलाम में लिखा है:

तेरे दरयाए-करम से ही है नमी आलम में,
तेरे क़दमों की गर्द से ही है हस्ती ख़ाके-आदम में। (9.1)

ऐ कायनात के बादशाह, ऐ मालिक दो जहाँ के,
क़ायम है सारा आलम तेरे ही तुफ़ैल से। (23.1)

तू ख़ुद ही है मरकज़ सारे वुजूद का,
क़ायम है जहाँ तेरे ही नूरो-मेहर से। (23.2)

सारी कायनात ख़ुदा की रहमत के कारण ही वुजूद में आई है। इनसान भी उसकी रहमत की मीनाकारी है। रब इश्क़ करना चाहता था, अपनी दया-मेहर की बरखा करना चाहता था इसलिए उसने कायनात और इनसान की रचना की। यह कायनात और इनसानी जामा दोनों रब के लिए इश्क़ करने और रहमत करने के बहाने थे।

इसलिए ख़्वाजा साहिब कहते हैं कि उसकी रहमत की तरफ़ देख, अपने ऐबों-पापों को न देख।

रह न जाएँ होंठ प्यासे कहीं गुनाहों की वादी में,
ठाठें मार रहा हर तरफ़ समंदर उसकी रहमत का। (8.2)

तू समंदर रहमत का, हूँ पापी गुनहगार मैं,
बख़्श दे ख़ताएँ मेरी ओ गुनहगारों के रहनुमा। (22.6)

नेकी बदी का मामला सब तुझसे है,
बख़्शता है नेमतें तू बिन माँगे भी। (57.8)

ख़ुदा की दया-मेहर कभी अच्छे-बुरे में फ़र्क़ नहीं करती। यह उसी तरह है जैसे सूरज का स्वभाव है हरेक को रौशनी और तेज देना। हर रूह में उसका नूर है। कई तरह की कमियाँ होते हुए भी हर रूह ख़ुदा की रहमत की बराबर हक़दार है।

ख़ुदा की नज़रे-करम के बारे आपने एक मजलिस में फ़रमाया:

> एक दरवेश रोज़ाना यह कहते थे कि हर कोई अपने किसी न किसी काम में लगा हुआ है मगर मुझको कोई काम नहीं। मुझसे अब तक यह भी न हो सका कि मैं अपने आप को ख़ुदा पर क़ुर्बान कर दूँ। मैं अपने आप से ऐसा कभी न कर पाऊँगा, क्योंकि जब उसके दिल में मेरे लिए मोहब्बत पैदा होगी तो वह ख़ुद ही मुझे अपने पास बुलाएगा।[13]

ख़ुदा पर अपना पूरा भरोसा ज़ाहिर करते हुए आप कहते हैं:

क्यों करूँ ग़म हर साँस में, कि उम्र को करता है ये कम,
है दिलो-जाँ पे मेहरो-करम हर लम्हा तेरा। (22.9)

उम्मीद है क़यामत के दिन होगा न हिसाब,
मोईन उस पे है मुनहसिर रिआयत मेरे गुनाहों में। (9.9)

इस्लाम में ऐसा माना जाता है कि क़यामत वाले दिन सभी के कर्मों का हिसाब-किताब किया जाएगा। आप कहते हैं कि जिसके दिल में उसकी रहमत का यक़ीन हो जाता है, वह रब से विसाल की कोशिश करने लगता है और उसकी रहमत का हक़दार बन जाता है:

मिले दोज़ख़ से रिहाई का परवाना जिसको,
बंदा ग़ुलाम है उसका, लिखा ख़त जिसकी क़लम से। (9.5)

दुनिया वाले कहते हैं कि रब से विसाल हासिल करना मुश्किल है लेकिन रब के आशिक़ों के लिए उसकी रहमत से काम आसान हो जाता है:

ख़ल्क़ कहती है कि यह रास्ता है बहुत दुश्वार,
मैं गया जिस राह पर फ़ज़्ले-रब्बानी हुआ। (70.6)

ख़ुदा की तारीफ़

जैसा कि आप ऊपर बयान कर चुके हैं कि ख़ुदा की रहमत के कारण कायनात वुजूद में आई और इनसान भी ख़ुदा की रहमो-करम की मीनाकारी है इसी लिए कायनात का ज़र्रा-ज़र्रा ख़ुदा की तारीफ़ कर रहा है, क़ुरान शरीफ़ भी ख़ुदा की सिफ़त से शुरू होती है:

आफ़ताब बन नूर तेरा जब से हुआ ज़ाहिर जहाँ में,
ज़ाहिरो-बातिन के ज़र्रे-ज़र्रे करते हैं सिफ़त तेरी बयाँ। (100.2)

तेरी क़ुर्बत के महल में गर तेरी तारीफ़ को इतना ऊँचा मक़ाम न मिलता,
तो क़ुरान के अल्फ़ाज़ की शुरुआत
तेरी तारीफ़ से कैसे होती? (100.5)

एक वो तारीफ़ है जो ज़ुबान से की जाती है, लफ़्ज़ों से की जाती है। हमारे मज़हबी ग्रंथ ऐसी हमद से भरे हुए हैं लेकिन एक ऐसी तारीफ़ भी है जो रूह की ज़ुबान से होती है:

तारीफ़ ख़ुदा की ऐसी कि मोती से पुरजान नज़र आए,
वो मीठी ऐसी कि ज़ुबाने-जाँ मिठास से भर जाए।

तारीफ़ उसकी बयाँ करूँ दिलो-जाँ से हरदम,
सौ-सौ शुक्र गर दिलो-जाँ से वो बयाँ हो जाए। (81.1-2)

ख़ुदा की तारीफ़ रूह में मिठास भर देती है। ख़ुशक़िस्मत हैं वो जिन्हें रूह की ज़ुबान से तारीफ़ का मौक़ा मिलता है। इसकी वजह बताते हुए आप कहते हैं:

तारीफ़ उसकी ऐसी जो पाक मकाँ के गुलिस्ताँ में ले जाए,
जान की छत से अर्श की छत तक ले जाए।

तारीफ़ उसकी ऐसी जैसे इज़्ज़त का साया हुमा का वो कर दे,
जाँ के आशियाने से बारगाहे-अल्लाह की
बुलंदी तक ले जाए। (81.4-5)

आपने *'जान की छत से अर्श की छत तक'*; *'जाँ के आशियाने से बारगाहे-अल्लाह की बुलंदी तक'* लफ़्ज़ों का इस्तेमाल किया है। आप यहाँ रूह के सफ़र की ओर इशारा कर रहे हैं जो ग़ैबी आवाज़ सुन कर यानी आवाज़े-हक़ सुन कर मंज़िले-मक़सूद की तरफ़ बढ़ती है। फिर आप फ़रमाते हैं, *'जैसे इज़्ज़त का साया हुमा का वो कर दे'*—ऐसा माना जाता है कि जिस पर हुमा पंछी का साया पड़ जाए उसकी क़िस्मत बदल जाती है, वह कंगाल से बादशाह बन जाता है, इसी तरह ख़ुदा की तारीफ़ इनसान की क़िस्मत बदल देती है, ख़ुदा से विसाल का ज़रिया बनती है। लेकिन इस मक़ाम पर पहुँच कर रूह के पास ख़ुदा की तारीफ़ के लिए न लफ़्ज़ होते हैं, न ताक़त होती है।

ख़्वाजा साहिब कहते हैं कि जब मुझे अपनी क़िस्मत का राज़ पता चला तो मालूम हुआ कि मेरी रूह को शुरू से ही ख़ुदा की तारीफ़ की नेमत बख़्शी गई थी:

मेरी क़िस्मत का क़ुर्रा जब अज़ल के दिन डाला गया,
राज़ खुला तो मिली नियामत तेरी तारीफ़
की अपने जिस्मो-जाँ में। (100.3)

लेकिन आख़िर में आप कहते हैं कि कितनी भी कोशिश क्यों न की जाए ख़ुदा की तारीफ़ बयान नहीं की जा सकती, यह लफ़्ज़ों से परे है। यही बेहतर है कि बेज़ुबाँ होकर रूह से उसकी तारीफ़ करूँ:

तेरी तारीफ़ करने वाले अगर आसमाँ और ज़मीं एक कर दें,
तो भी तेरी शान और रुतबा न कर पाएँ बयाँ।

मोईन मिस्कीं गूँगा हुआ, तारीफ़ करने से रहा,
है यही बेहतर करूँ तारीफ़ तेरी बेज़ुबाँ। (100.6-7)

अहले रज़ा

आशिक़ी का उसूल है कि आशिक़ हमेशा महबूब की रज़ा में राज़ी रहता है, क्योंकि जो कुछ हो रहा है उसकी रज़ा, उसके हुक्म से हो रहा है। सारी कायनात उसकी रज़ा का खेल है। सूफ़ियों में दो तरह के दरवेश या फ़क़ीर माने गए हैं: 'अहले दुआ' और 'अहले रज़ा'। 'अहले दुआ' सिवाय रब के किसी दूसरे से कुछ नहीं माँगते। 'अहले रज़ा' रब से भी कुछ नहीं माँगते और हमेशा उसकी रज़ा में राज़ी रहते हैं। 'अहले रज़ा' का दर्जा 'अहले दुआ' से बहुत ऊँचा माना गया है।

मैं नहीं कहता कि नियामत चाहता हूँ या बला,*
चाहता हूँ हक़्क़-तआला† की रज़ा मैं तो सदा। (52.1)

कि न मैं सुख की उम्मीद करता हूँ न दुख की। मैं तो सिर्फ़ ख़ुदा की रज़ा में राज़ी रहना चाहता हूँ।

* नियामत=सुख, ख़ुशियाँ † हक़्क़-तआला=ख़ुदा

ख़्वाजा साहिब रज़ा के बारे में फ़रमाते हैं:

एक बार किसी आशिक़ ने इश्क़-ए-ख़ुदा की मस्ती में कहा कि अगर मैं चाहूँ तो सातों ज़मीनों को उलट दूँ, क्योंकि उसने मुझे देख लिया है। मगर मैंने यह कभी न चाहा कि मैं उसे देखूँ, क्योंकि अपने आप को उसकी ग़ुलामी में दे दिया तो ग़ुलाम का आरज़ू से क्या काम?[14]

अहले रज़ा के नज़रिये से ख़्वाजा साहिब के कलाम की 101वीं ग़ज़ल की ख़ास जगह है:

मैं नहीं कहता अनलहक़, यार कहता है कि कह,
जब नहीं कहता हूँ मैं, दिलदार कहता है कि कह। (101.1)

जो ना कहना चाहिए था इबादत ख़ाने में ज़ाहिदों के सामने,
बेतहाशा बर सरे-बाज़ार कहता है कि कह। (101.3)

मैंने पूछा इस जहाँ में राज़े-दिल किससे कहूँ,
महरमे-दिल ही नहीं जब, दरो-दीवार कहते हैं कि कह। (101.5)

आप फ़रमाते हैं कि रब की रज़ा सबसे ऊपर है। मेरा माशूक़ मुझसे जो खेल खिलाता है, मैं खेलता हूँ। कभी कहता है होंठ सिल ले तो कभी कहता है कि 'अनलहक़' का नारा लगा दे, कभी कहता है कि जो राज़ जपियों-तपियों को नहीं मालूम उन्हें सरे-आम बयान कर दे। कभी यह भी कह देता है कि ये राज़ कोई न सुने तो दरो-दीवार को ही बता दे।

आशिक़ कहता है कि मैं उस गेंद की तरह हूँ जिसे घोड़े पर सवार शहंशाह अपनी छड़ी से जिधर चाहे ठोकर मारता है। साथ ही हिदायत देता है कि मैं किसी तरह की कोई शिकायत न करूँ इसलिए रज़ा में ही राज़ी रहना बेहतर है:

मैं गेंद हूँ तू चौगान, मैं सवारी हूँ तू बादशाह,
हर तरफ़ दौड़ाता है फिर कहता है ज़ुबाँ न हिला। (55.7)

रज़ा के बारे में मंसूर हल्लाज का हवाला देते हुए ख़्वाजा साहिब ने फ़रमाया है:

मंसूर से पूछा गया कि इश्क़ में पूरा उतरने के लिए क्या करना चाहिए, आपने कहा जिससे तुम इश्क़ करते हो, अगर उसकी तरफ़ से तुम पर ज़ुल्मो-सितम किया जाए व तमाम मुसीबतें उसकी तरफ़ से तुम पर आएँ, तब भी इश्क़ पर क़ायम रहो और जो मर्ज़ी माशूक़ की है उसी को अपनी मर्ज़ी बना लो और इस इश्क़ में ऐसे खो जाओ कि अपने आप पर होने वाले ज़ुल्म की तुम्हें ख़बर भी न होने पाए। यही इश्क़ में पूरा उतरने का दर्जा है।[15]

हिज्र का दर्द

आशिक़ के दिल में जैसे-जैसे इश्क़े-इलाही की गहराई बढ़ती जाती है, हिज्र का दर्द, जुदाई की पीड़ा बढ़ती जाती है। यह दर्द इतना ज़बरदस्त होता है कि इसकी आग से तश्बीह दी गई है। इसी लिए जुदाई के दर्द को मोहब्बत की आग कहा गया है। जैसे आग सब कुछ जला कर ख़त्म कर देती है, मोहब्बत की आग आशिक़ की हस्ती ख़त्म कर देती है, उसकी ख़ुदी को जला देती है।

ग़रीब नवाज़ ने आशिक़ के दिल को एक ऐसा आतिश कदा-ए-मोहब्बत (प्रेम का अग्नि-कुंड) बताया है जिसमें जो चीज़ आती है जल जाती है, क्योंकि किसी भी तरह की आग इतनी तेज़ नहीं जितनी कि जुदाई की आग होती है।[16] आपने फ़रमाया:

एक रात हज़रत राबिया बसरी पर ऐसी इश्क़े-हक़ीक़ी की कैफ़ियत छाई हुई थी कि आप बेचैन हो गईं और ज़ोर-ज़ोर से 'मैं जली', 'मैं जली' पुकारने लगीं। जब बसरा के लोगों को पता चला तो वे घरों से पानी के मटके लेकर दौड़े। उस वक़्त एक बुज़ुर्ग वहाँ मौजूद थे, उन्होंने कहा, 'क्या नादानी करते हो? यह आग दुनिया की आग नहीं है जो पानी से बुझ जाए बल्कि यह आग तो इश्क़े-ख़ुदा की है। यह आग जिसके दिल में पैदा हो जाती है, कभी नहीं जाती। इस वक़्त आग की लौ ज़्यादा तेज़ हो गई है और राबिया बसरी में इसे बर्दाश्त करने की ताक़त नहीं है इसलिए वह पुकार रही है।'[17]

अपनी 14वीं ग़ज़ल में ख़्वाजा साहिब ने बड़े ख़ूबसूरत अंदाज में जुदाई का दर्द बयान किया है। जिसके अंदर ख़ुदा का इश्क़ पैदा हो जाता है, वह जुदाई में तड़पता है:

आतिशे-इश्क़ से मेरे जिस्मो-जाँ जल गए,
आह जब निकली तो तालू और ज़ुबाँ जल गए। (14.1)

दोज़ख़ की आग से भी बढ़ कर है आग जुदाई की,
उफ़! इस आग से ज़ाहिर-बातिन* सब जल गए। (14.2)

नियामतें दोनों जहाँ की चाहता था मेरा दिल,
आग ऐसी भड़की कि यहाँ-वहाँ† सब जल गए। (14.4)

इश्क़े-यार के सहरा‡ में प्यासा हूँ दीदार का,
प्यास की आतिश ऐसी भड़की,
जिस्मो-जाँ रूह सब जल गए। (14.7)

सैकड़ों परदे पड़े थे मेरे और उसके दरम्याँ,
मेरी आह की इक चिंगारी से सब जल गए। (14.10)

---

* ज़ाहिर-बातिन=बाहर-अंदर † यहाँ-वहाँ=लोक-परलोक
‡ सहरा=रेगिस्तान

जुदाई की आग दिल में समाई लोक-परलोक की हर तमन्ना, हर ख़्वाहिश, आशिक़-माशूक़ के बीच के हर परदे को जलाकर राख कर देती है।

एक और जगह ख़्वाजा साहिब हिज्र का दर्द इस तरह बयान करते हैं:

मैंने आँखों से अश्क बहाए कि आग बुझ जाए,*
लेकिन अश्क मेरे भरे थे ख़ून से, आग और भड़क उठी।

चाहता था भरूँ आह कि ग़मे-दिल हो जाए कम,
मगर जिस्म से जब आग भड़की, चाँद तारे जल गए। (15.5-6)

जुदाई की आग को बुझाने के लिए मैंने आँसुओं की झड़ी लगा दी लेकिन ख़ून के भरे आँसुओं से आग और भड़क उठी। मैंने दिल की तपिश बुझाने के लिए आहें भरनी शुरू कीं तो उन आहों से आग की लपटें आसमान तक पहुँच गईं।

जिसके दिल में जुदाई की तड़प पैदा हो जाती है, उसके रोम-रोम से इलाही इश्क़ की ही बू आती है:

आतिशे-इश्क़ जो जलती है मोईन की जाँ में,
बू उसी की तो इस दिलजले से आए है। (41.17)

मोहब्बत की आग बर्दाश्त करता हुआ आशिक़ इश्क़ के कई दौर, कई मंज़िलों से गुज़रता है। चिश्तिया सूफ़ियों ने इश्क़ की आम तौर पर पाँच मंज़िलें[18] बताई हैं:

1. **फ़ुक़्दाने-क़ल्ब**—अरबी ज़ुबान में एक जानी-मानी कहावत है: जिसने अपना दिल नहीं लुटाया, वह आशिक़ नहीं कहलाता। यह वो दौर है जब आशिक़ अपना दिल खो बैठता है।

* अश्क=आँसू

आशिक़ के चेहरे पर शिकन और आँखों में अश्क होते हैं। हो सकता है कि दिन में वह लोगों से अपने जज़्बात छुपाए पर रात को ख़ुदा की याद में अश्क बहाता है।

उसके ग़म में बहाता हूँ मैं अश्क हर रात,
कि उन्हीं अश्कों में हुस्न यार का नज़र आए है। (31.2)

2. **तअस्सुफ़**—अपने माशूक़ से जुदा आशिक़ इश्क़ के ग़म में डूबा रहता है। दिल ख़ामोशी इख़्तियार कर लेता है।

तेरे इश्क़ में ज़ख़्मी हुआ है दिल ऐसा,
कि दिल की ज़ुबाँ से हो न बयाँ ग़म ऐसा। (20.1)

3. **वज्द**—यह अंदरूनी मस्ती की हालत का ऐसा दौर है जिसे लफ़्ज़ों में बयान करना मुश्किल है। हाफ़िज़ ने इसे ग़ैब की ज़ुबाँ कहा है।

हुआ दीवाना फिर कहाँ होशो-अक़्ल रहे,
गर यार की तरफ़ से हू हक़ के जाम इसी तरह आते रहें।* (31.4)

आशिक़ के लिए सारी कायनात सिमट जाती है और वह पूरे आलम से बेख़बर हो जाता है। इस दौर में मोहब्बत इस क़दर छा जाती है कि महबूब के सिवा और कुछ नज़र नहीं आता। उसकी हालत दीवानों जैसी हो जाती है।

4. **बेसब्री**—इस दौर में दिल का दर्द बढ़ जाता है, बेचैनी और मदहोशी छा जाती है। इश्क़ की ऐसी आग हर चीज़ को जला देती है। जुदाई का ग़म दोज़ख़ की आग से भी बढ़ कर माना गया है।

आग दोज़ख़ की जलाती है खाल गुनहगारों की,
मगर हिज्र की आग में मग़्ज़† हड्डियों के भी जल गए। (14.3)

* हू हक़=सिर्फ़ अल्लाह ही है † मग़्ज़=हड्डियों के अंदर की वसा

दोज़ख़ की आग तो गुनहगारों की चमड़ी ही जलाती है लेकिन जुदाई की आग तो हड्डियों को अंदर तक जला कर राख कर देती है। ऐसी हालत में आशिक़ के दिल से जो पुकार उठती है, ख़्वाजा साहिब ने उसको बड़े ख़ूबसूरत लफ़्ज़ों में बयान किया है:

जाँ अपनी तड़पती है उम्मीदे-वस्ल में,
तेरे ही दम से आती है साँस इस दम में। (9.8)

जन्नत में भी न पाएगा चैन यह बेक़रार दिल,
चैन इस दिल का तेरे दीदार के इनाम में है। (13.4)

5. **सयानत**—आशिक़ की वो हालत हो जाती है जिसमें कुछ नज़र नहीं आता, होश नहीं रहता, इज़्ज़त व ज़िल्लत उठ जाती है।

हूँ मैं गुमनामी के रास्ते पे, हस्ती नहीं बाक़ी कोई,
बेनियाज़ी की बिजली कुछ ऐसी गिरी,*
नामो-निशाँ सब जल गए। (14.8)

माशूक़ की ख़ुशबू आशिक़ को ज़िंदा रखती है: *आ रही बू कहाँ से कि रूह और दिल मस्त है।*

बड़े नाज़ से सबा यार के कूचे से आई है,
कि ख़ुशबू यार की ज़मीं-आसमाँ से आई है। (31.1)

एक और जगह आप फ़रमाते हैं कि जिस मंज़िल पर तपसी, त्यागी और हठी हज़ार कोशिश करके भी नहीं पहुँच सकते, आशिक़ आहों के सहारे वहाँ पहुँच जाता है:

* बेनियाज़ी=बेपरवाही

पहुँचा है कोई ज़ाहिद जहाँ लाख कोशिश के बाद,*
मस्ताना शराबे-इश्क़ का, इक आह में वहाँ पहुँच जाए। (32.10)

जब आशिक़ माशूक़ की याद में आँसू बहाता है, सारी रात आहें भर-भर कर गुज़ारता है, दीवानों जैसी हालत हो जाती है, दुनिया से उसका दिल उठ जाता है, ऐसी हालत में हिज्र के दर्द का इनाम भी उसे बांकमाल मिलता है। यही दर्द माशूक़ से विसाल का ज़रिया बनता है:

रिश्ताए-जाँ को किया हिज्र की क़ैंची ने जुदा,
वस्ल की उम्मीद का पैबंद आख़िर लग गया। (18.6)

ख़ुदी से ख़ुदा तक

पूछा मैंने, तेरा वस्ल किसको होता है,
कहा, जुदा हुआ हो जो ख़ुद से उसको होता है। (84.3)

ख़ुदी से ख़ुदा तक के इस सफ़र में अपनी ख़ुदी की क़ुर्बानी देनी पड़ती है, अपनी हस्ती को नीस्तोनाबूद करना पड़ता है। ख़्वाजा साहिब ने एक मजलिस में फ़रमाया:

एक बुज़ुर्ग कहा करते थे, 'जब से मैंने ख़ुदा से मोहब्बत की तब से इस दुनिया को अपना दुश्मन जाना और उससे दूर हो गया, यहाँ तक कि ख़ुदा की दोस्ती में मैं ऐसा गुम हुआ कि मुझे अपने आप से भी दुश्मनी हो गई, क्योंकि दीदार-ए-महबूब की राह में ज़िंदगी थी इसलिए मैं मौत से दोस्ती करने लगा।'[19]

* ज़ाहिद=जपी-तपी

आप जिस ख़ुदी का परदा चाक करने के लिए कह रहे हैं, वह क्या है? अपने आप को ख़ुदा से अलग समझना, ख़ुदा के बजाय दुनियावी चीज़ों को अपना समझना, यह समझना कि जो मेरी ज़िंदगी में हो रहा है 'मैं' कर रहा हूँ, ख़ुदा के बताए तरीक़ों के बजाय अपने मनचाहे तरीक़ों से उसे ढूँढ़ना, ख़ुदी कहलाता है यानी हर वक़्त मैं-मेरी का ख़्याल ख़ुदी है। जब तक ख़ुदी का परदा नहीं हटता, ख़ुदा से विसाल हासिल नहीं हो सकता।

आपने अपने कलाम में तरह-तरह से ख़ुदी का भाव दोहराया है:

हर दिशा हर कोने में ढूँढ़ रहा हूँ तुझको,
रखेगा कब तक मुझे अपनी जुस्तजू में यह बता। (2.2)

आशिक़ कहता है कि हर दिशा में तेरी खोज कर रहा हूँ। मैं कब तक इस तरह भटकता रहूँगा। उसे जवाब मिलता है:

बोला बेपरदा हूँ मैं, परदा गर है तो तेरा ही,
वजह बना है सब परदों का वुजूद अपना ही तेरा। (2.6)

नक़ाबे-हस्ती को तू अपने दरम्याँ से हटा,
तो देख होता है कैसे हुस्नो-जमाल फिर पैदा। (3.10)

गर तू चाहे देखना नूर का जलवा,
मोईन अपने हसीन वजूद से नक़ाबे-हस्ती तो उठा। (3.13)

ख़ुदा का नूर इस दिल के अंदर है, पर ख़ुदी की मैल के कारण वह नूर दिखाई नहीं देता:

दिल के आईने में अपना हुस्न दिखलाता है दोस्त,
तेरे जिस्म का ज़ंग ही है हिजाब तेरे चश्माए-जाँ पे। (108.4)

ख़्वाजा साहिब एक और जगह फ़रमाते हैं कि दिल को दुनिया की दौलत और रिश्ते-नाते, दोस्तों की मोहब्बत से ख़ाली करने से ही ख़ुदा उस दिल में आकर बसता है:

चाहिए कि पहले करें दुनिया की दौलत को फ़ना,
हुस्न महबूब का फिर दिल में नज़र आता है। (45.4)

निकल जाती है जब ग़ैरों की मोहब्बत दिल से,
तो रहमते-ख़ुदा का समंदर उसमें उतर आता है। (45.7)

ख़ुदा तक पहुँचने का ज़रिया उससे इश्क़ है। क्योंकि ख़ुदा का दीदार जिस्म नहीं बल्कि रूह करती है, इसलिए अपने जिस्म का छिलका चीर कर अपनी रूह तक पहुँचने की ज़रूरत है:

गुज़र अपने वुजूद से गर है तलब ख़ुदा की,
सिवा तेरे वुजूद के तेरा कोई हिजाब नहीं।

गुज़र इस जिल्दे-बदन से ताकि तू अपनी रूह को देख,
तख़्तीए-रूह के अलावा कोई किताब नहीं। (10.4-5)

असलियत यह है कि ख़ुदा का राज़ इस जिस्म में छुपा है क्योंकि जिस रूह को ख़ुदा से विसाल हासिल करना है वह इसी जिस्म में है, इसलिए ख़ुदा को अपने अंदर ढूँढ़ने की ज़रूरत है:

बोले वो कब तक फिरोगे हर तरफ़ ऐ मोईन,
ढूँढ़ो ख़ुद में तब जानो कि बेनिशाँ वो कौन है। (116.11)

जिस्म की चट्टान में यह चश्माए-दिल है छुपा,
तोड़ दे इस पत्थर की चट्टान को तेशा* उठा। (99.1)

है छुपा आबे-हयात तेरी हस्ती के अँधेरे में,
बन के मछली आबे-हयात में ख़ुद को दे बहा। (99.2)

---

* तेशा=धरती खोदने का औज़ार

ख़ुदी का बीच में आना उसी तरह है जैसे चाँद और सूरज के बीच धरती के आने से ग्रहण लगता है। इस शरीर में आकर इनसान में ख़ुदी का भाव आ जाता है:

ग्रहण है मुझपे तो यह क़ुसूर आफ़ताब का नहीं है,
कि ये जिस्मे-ख़ाकी मेरा दरम्याँ होता है। (84.4)

जो रूहानी तरक़्क़ी ख़ुदी को ख़त्म करने से होती है, वह सैकड़ों साल नमाज़ पढ़ने और रोज़े रखने से नहीं होती:

गर इक लम्हा हस्ती से गुज़रे, बेहतर है उन सौ सालों से,
जिसमें तू पढ़े रात को नमाज़ और दिन में रोज़ा रखे। (119.2)

एक कहावत है: ख़ुदी है तो ख़ुदा नहीं, ख़ुदा है तो ख़ुदी नहीं। ख़ुदा के दीदार के लिए अपने ग़ुरूर को ख़त्म करना ज़रूरी है, यहाँ कोई अक़्ल और चालाकी काम नहीं आती:

उठा दे गर तू दिल से नक़ाब अपने दावे का,
तो देखे आईनाए-दिल में जमाल मौला का।

तोड़ दे शीशाए-ग़ुरूर लानत के पत्थरों से,
बहा दे इश्क़ की गली में ग़ुरूर हस्ती का। (5.1-2)

इन दो शेअरों में आप कहते हैं कि सिर्फ़ दुनिया की चीज़ों की हवस और लालच से ही नहीं, अपनी नेकनामी और बदनामी, इज़्ज़त और बेइज़्ज़ती के ख़्याल से भी ऊपर उठना पड़ता है।

अपने को फ़ना किए बिना महबूब का दीदार नहीं होता। सूफ़ी दरवेशों ने इसे 'फ़ना फ़ि अल्लाह बक़ा बिल्ला' का नाम दिया है यानी जो रूह अपने को अल्लाह में फ़ना कर देती है वह लाफ़ानी ज़िंदगी (अमर जीवन) पा लेती है:

कहाँ है समझ आक़िलों को कि फ़ना में है बक़ा,
अक़्ल के नुक़्सान में ही उनका नफ़ा है छुपा। (108.6)

फ़ना हो पहले गर तलब है बक़ा की तुझे,
फ़ना न हो जब तक तू, मिले न राह का पता। (3.3)

एक और ग़ज़ल में आप यही ख़्याल दोहराते हैं। रूह रब से पूछती है:

राहे-इश्क़ पर चलने वालों का कुछ तो पता बता मुझको,
शायद मेरा गुमराह दिल आ जाए हक़ की राह पर। (4.4)

इस भूले-भटके को इश्क़ की राह के बारे में कुछ तो बता ताकि वह भी रब से विसाल हासिल कर सके। रूह को जवाब मिलता है:

परदाए-हस्ती गर जला दे तू ला-इलाह की आग से,
तो बेहिजाब नूर इल्लल्लाह का उसी दम हो जाए ज़ाहिर। (4.5)

कि पहले इश्क़ का सबक़ पढ़। क़ुरान शरीफ़ की आयत है: 'ला इलाह इल अल्लाह।' इसका मतलब है: नहीं कोई अल्लाह सिवाय अल्लाह के यानी जो कोई एक अल्लाह के सिवाय दूसरी हर चीज़ से अपना मोह ख़त्म कर देता है, अपनी हस्ती, अपने वुजूद से आज़ाद हो जाता है उसे रब का दीदार होता है।

सच्चे आशिक़ की क़ुर्बानी को ख़्वाजा साहिब ने इश्क़ के क़ासिद (दूत) और आशिक़ की गुफ़्तगू के रूप में ख़ूबसूरत लफ़्ज़ों में बयान किया है:

मैंने कहा, क्या पेश करूँ ऐ इश्क़ के क़ासिद,
उसने कहा, ख़ुराक दिले-राह की तू पेश कर।

शराब अश्कों की और जिगर का कबाब ला,
साथ में दर्द भी ला जो निकले आह बनकर।

तोहफ़ा किया जो पेश, उसने आग़ोश में ले लिया,
जैसे कशिश मिक़नातीस की खींचे है अपनी ओर।* (32.7-9)

ख़्वाजा साहिब अपना तजरबा बताते हैं कि जैसे साँप अपनी केंचुली उतारता है, उसी तरह जब मैं अपनी हस्ती से बाहर निकला तो मैंने देखा कि आशिक़, माशूक़ और इश्क़ सब एक ही है यानी आलमे-तौहीद की हालत में सब एक है।[20] यही बात आप अपने कलाम में दोहराते हैं:

हक़ीक़त की नज़र से गर तू अपने जिस्मो-जाँ देखे,
तो हर इक चीज़ के वुजूद का सबब तू ख़ुद देखे।

तेरी तिनके-सी यह हस्ती मिसाले-आतिशे-मूसा बन जाए,
जो दूर कर दे सर से ख़ुदी की ज़ुल्मत,
नूर तू ख़ुद में अयाँ देखे। (113.1-2)

अगर हक़ की निगाह से यानी रूह की आँख से देखें तो इस कायनात की असलियत सामने आ जाएगी। अगर तू अपनी नाचीज़ हस्ती को मूसा की तरह जला कर राख कर दे, अपनी ख़ुदी को ख़त्म कर दे तो तू ख़ुदा के नूर से भर जाएगा।

आप कहते हैं कि 'सच्चे आशिक़ के दिल में दर्द और फ़रियाद उस वक़्त तक रहती है जब तक दोस्त का दीदार न हो जाए; जब ख़ुदा की दोस्ती हासिल हो जाए तो किसी क़िस्म का दर्द नहीं रहता, जैसे कि जब तक दरिया बहता है उसके बहने की आवाज़ हमको सुनाई देती है और जब वह अपनी मंज़िल यानी समंदर में मिल जाता है तो उसकी आवाज़ ख़त्म हो जाती है।'[21] यही हाल आशिक़ का है, जब वह अंदर महबूब का दीदार कर लेता है तो उसे ख़ामोशी व आराम हासिल हो जाता है, फ़रियाद व शोर हरगिज़ नहीं रहता।

* मिक़नातीस=चुंबक

शोर था सैलाब में जब दरिया से था जुदा,
जा गिरा दरिया में जब से वो ख़ामोश है। (43.2)

इसी लिए सूफ़ी ख़ुदा तक पहुँचने के लिए सिर्फ़ इश्क़े-इलाही को ही एक ज़रिया मानते हैं।

दिल की पाकीज़गी

ख़ुदा के इश्क़ के लिए दिल की पाकीज़गी ज़रूरी है। चिश्तिया शैख़ों का कहना है:

दुनिया का इलाज है दुनिया से बेतल्लुक़ी,
ख़ल्क़ का इलाज है दुनिया से तनहाई,*
शैतान का इलाज है जंग,
नफ़्स का इलाज है दिल की पाकीज़गी।[22]

नफ़्स सबसे बड़ी रुकावट है, इसलिए दिल की पाकीज़गी इस रूहानी सफ़र की बुनियाद है ताकि अंदरूनी और बाहरी तौर से पाकीज़गी हासिल करता हुआ इनसान मक़ामे-हक़ पर पहुँच सके।

नफ़्स को जितना ज़्यादा क़ाबू करना हो उतनी ज़्यादा रियाज़त (मेहनत) की ज़रूरत होती है, क्योंकि इससे जो पाकीज़गी हासिल होती है वो तजरबे से होती है। क़ुरान शरीफ़ की आयत में भी आया है: जो लोग हमारी राह में नफ़्सकुशी (मन को क़ाबू करना) करते हैं, हम उन्हें अपना रास्ता दिखा देंगे।[23]

गर बग़ावत जिस्म करे तो दिल पर हो जा सवार,
देख ये कि दिल तेरा तेरे क़ाबू में है। (13.8)

* ख़ल्क़=दुनिया के लोग

ख़्वाजा साहिब के मुर्शिद ने उनसे फ़रमाया:

औलिया अल्लाह और ख़ुदा के दोस्त वही लोग बन पाए जिन्होंने अपने नफ़्स को आरज़ुओं और ख़्वाहिशों से दूर रखा जिनसे उनके शरीर को आराम या सुख प्राप्त हो सके।...नफ़्स को क़ाबू में करना और किसी दूसरे इनसान को ज़रा भी दुःख न पहुँचाना ही दरवेशी है।[24]

आप आगे फ़रमाते हैं:

ईमान न ज़्यादा होता है न कम। ईमान नंगा होता है और इसका लिबास इबादत व परहेज़गारी है... ईमान दिल का नूर है। जब कोई नेक आदमी नेक काम करता है तो ये नेक काम उसके दिल को नूरानी बना देते हैं और जब दिल नूर से भर जाता है तो बुराइयाँ दूर हो जाती हैं और वह ख़ुदा की नज़दीकी हासिल कर लेता है।[25]

चिश्ती शैख़ हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया के लफ़्ज़ हैं:

मन को क़ाबू में (नफ़्सकुशी) करने के लिए ज़रूरी है हलीमी और दूसरों को अपने से बेहतर समझना।... नफ़्स की लगाम जब हाथ में आ जाए तो इन दोनों की ट्रेनिंग साथ-साथ चलती है और इनकी अहमियत एक जैसी होती है:

पहली यह कि अपने दोस्तों के साथ तो सभी अच्छा सुलूक करते हैं लेकिन वह इनसान दुश्मनों के साथ भी नेकी, नरमी और हलीमी का बरताव करने लगता है। दूसरी यह कि वह सिवाय अल्लाह के हर चीज़ का तर्क करने के लिए तैयार होता है।

तर्के-दुनिया यानी दुनिया को छोड़ने से सूफ़ियों का मतलब है कि वह दुनिया में रहता हुआ खाता-पीता है, खिलाता-पिलाता है, पहनता-पहनाता है और अपनी ज़रूरतों व दूसरों की ज़रूरतों पर पैसा ख़र्च करता है लेकिन जमा नहीं करता।... माले-दुनिया (दुनिया की धन-दौलत) से मोहब्बत नहीं करता, न ही दुनिया कमाने में इतना अंधा हो जाता है कि हक़ की कमाई और हराम की कमाई में पता ही न चले।[26]

ख़ुदा के दीदार के लिए दिल को ग़ैर के ज़ंग से साफ़ करना ज़रूरी है। जब तक 'दिल से उठ गई दुनिया, रह गया तेरा ख़्याल' वाली हालत नहीं होती, तब तक ख़ुदा का जमाल नज़र नहीं आता।

तसव्वुफ़ के लिए यह ज़रूरी है कि मन पर निगरानी रखी जाए। अगर किसी शख़्स के पेट में दर्द हो और वह दवा खाए तो दवा असर करेगी, पर अगर ऊपर ही लेप करता रहे तो अंदर क्या असर होगा। सूफ़ियों में मुराक़बे (ख़ुदा का ध्यान) का यही असल है।... दिल पर गहरी नज़र रखना ज़रूरी है ताकि मन के जज़्बात जो चुपके-चुपके दिल में जगह बना लेते हैं और इनसानी शख़्सियत को अंदर से खोखला कर देते हैं, उन्हें क़ाबू किया जा सके। इनकी गिनती मुश्किल है। मिसाल के तौर पर यूँ समझ सकते हैं कि एक घना जंगल है जिसमें घनी-घनी झाड़ियाँ, बेलें, घास-फूस, बड़े-बड़े दरख़्त, बारीक़-बारीक़ घास है जिसने सारे माहौल को ढक रखा है। अगर उसे साफ़ करने लगें तो मोटे-मोटे दरख़्त काटने में उम्र तमाम हो जाएगी, फिर भी सफ़ाई करोगे तो क़िस्म-क़िस्म की घास, बेलें बाक़ी रह जाएँगी जो इस वक़्त उखाड़ भी दें तो उसकी जड़ें फिर से पनपेंगी और चंद बरसों के बाद मालूम होगा कि जंगल मौजूद है। लेकिन उसी जंगल में आग लगा दी जाए तो आनन-फ़ानन सब चीज़ों को भस्म करके राख कर देगी और हमें अपना मक़सद हासिल हो जाएगा। सूफ़ियों ने इश्क़ की तश्बीह आग से दी है। यह एक

ऐसा जज़्बा है जो मन्फ़ी जज़्बातों* को ख़त्म कर देता है जहाँ यह पनपने लगे, फिर और किसी का गुज़र नहीं होता।[27]

इसलिए चिश्ती शैख़ों का कहना है कि नफ़्स को क़ाबू करने का क़ुदरती तरीक़ा इबादत है।... इबादत से जब नफ़्स क़ाबू आ जाती है तो सालिक में वह ताक़त नहीं रहती जो नफ़्स को उभारती है, बुराई से बुराई ख़त्म करना चाहती है; न वह हौंमैं रहती है जो दूसरों पर हमले करती है या दूसरों का हक़ छीन लेती है जिससे हिर्स और हसद (हवस और ईर्ष्या) पैदा होती है; इसी लिए कहा गया है कि अगर कोई नफ़्स (मन) से पेश आए तो दरवेश को क़ल्ब (दिल) से पेश आना चाहिए।[28]

इश्क़ ख़ुदा के लिए तलब है और अपने आप को तर्क करना है। इश्क़ वह जज़्बा है कि जब इनसान पर छा जाता है तो उसकी नफ़्स की सब कमियों को जला देता है।[29]

आख़िरत में वो दिखाए उसे अपना हुस्न,
जो आईनाए-दिल को पाक और रौशन रखे। (35.8)

लेकिन इबादत में लगने के लिए, ख़ुदा का इश्क़ दिल में ज़ाहिर करने के लिए कुछ सिफ़तें सूफ़ी ज़िंदगी की बुनियाद बताई गई हैं जो इनसान में नफ़्सकुशी के लिए ज़रूरी हैं।

कम खाना, कम बोलना, कम सोना

चिश्ती सूफ़ियों में कम खाना, कम बोलना और कम सोने का उसूल बहुत ज़रूरी माना जाता है।[30] ख़्वाजा साहिब के जानशीन बख़्तियार काकी दरवेशी के उसूल के बारे में फ़रमाते थे:

* मन्फ़ी जज़्बातों=नकारात्मक विचार

ऐ दरवेश जब तक तू कम न खाएगा, कम बातचीत न करेगा, कम न सोएगा और लोगों से मिलना-जुलना कम न करेगा हरगिज़ हरगिज़ तुझे दरवेशी हासिल नहीं हो सकती। दरवेशी तो वो गिरोह है जिसने अपने ऊपर नींद हराम कर रखी है, बोलचाल की ज़बान गूँगी बना ली है, खाने के लिए घास-पात ही रखी है। लोगों से मिलना-जुलना ज़हर समझ रखा है। इन बातों को इख़्तियार करने के बाद ही ख़ुदा की नज़दीकी नसीब होती है।[30-a]

ख़्वाजा साहिब इसकी वजह बताते हैं कि कम खाने से सूफ़ी बाक़ी का खाना ग़रीबों और ज़रूरतमंदों में बाँट सकता है; कम बोलने से सूफ़ी लोगों के दुःख-दर्द सुन सकता है और ख़ामोशी उसे ख़ुदा की रज़ा, उसका हुक्म सुनने में मदद करती है और कम सोने से वह रात का वक़्त इबादत में गुज़ार सकता है।

तौबा

हुज़ूर ग़रीब नवाज़ के अनुसार तौबा असल में इनसान की ज़िंदगी का एक ऐसा मोड़ है जहाँ से वह नए माहौल में क़दम रखता है।

तौबा की तीन क़िस्में[31] हैं: पहली शर्मिंदगी, दूसरी गुनाहों से बचना और तीसरी ख़ुद को ज़ुल्म से रोकना और दुश्मनी से दूर रहना।

शर्मिंदगी: इनसान को अपने किसी काम पर नाज़ नहीं करना चाहिए। उसे हमेशा ख़ुदा का ख़ौफ़ रखना चाहिए, क्योंकि ख़ुदा का हक़ पूरा करने में बंदा तब तक मजबूर है जब तक ख़ुदा की उस पर रहमत न हो। इसलिए बंदे को हमेशा उसके सामने शर्मिंदा ही रहना चाहिए ताकि उसकी मोहब्बत का हक़दार हो।

गुनाहों से बचना: इनसान को गुनाहों से हमेशा दूर रहना चाहिए क्योंकि ख़ुदा हमेशा देख रहा है। इसलिए गुनाह का तो ख़्याल भी दिल में नहीं आना चाहिए।

ख़ुद को ज़ुल्म से रोकना: दरवेश को चाहिए कि ख़ुदा से दोस्ती हासिल करने के लिए वह कभी किसी का दिल न दुखाए, क्योंकि जब हम किसी को तकलीफ़ पहुँचाते हैं तो इससे बड़ा ज़ुल्म दूसरा कोई नहीं है। जब किसी की ज़ुबान से आह निकलती है तो वह एक पल में ख़ुदा के पास पहुँच जाती है... इसलिए कोशिश करो कि सब तुमसे ख़ुश हों। अगर कोई तुमको परेशान करे या तकलीफ़ पहुँचाए तो उसके लिए अपने दिल में भी कोई बुरा ख़्याल न आने दो।

तवक्कुल

तवक्कुल का मतलब है भरोसा। सूफ़ी ख़ुदा के सिवाय किसी और पर भरोसा नहीं रखता। न वह अपनी राहत की दास्तान किसी को सुनाता है, न रंज की शिकायत किसी से करता है।[32] किसी इनसान के सामने ज़रूरत पूरी करने के लिए सवाल करने का मतलब है ख़ुदा पर भरोसे की कमी। ख़ुदा के सिवाय किसी और को ज़रूरत पूरा करने के क़ाबिल समझना कुफ़्र (ग़लती) है।

आप अपने कलाम में फ़रमाते हैं:

ख़ुदा पे यक़ीं के नूर से रौशन जब ये दिल हुआ,
आईनाए-दिल पर पड़ा ग़ुबार शक का साफ़ हुआ। (57.15)

ख़्वाजा साहिब ने बायज़ीद बिस्तामी के लफ़्ज़ों को दोहराते हुए फ़रमाया है:[33]

आरिफ़ का तवक्कुल है कि इन तीन चीज़ों पर भरोसा न करना:

- इल्म—अपने ज्ञान पर फ़ख़्र न करना।
- इबादत—कभी अपनी इबादत को बहुत नहीं समझना।
- ख़ल्क़—दुनिया की मोहब्बत का दिल में ग़ुरूर न होना बल्कि हर चीज़ को ख़ुदा की समझ कर इस्तेमाल करना।

सब्र

सब्र जिस्मानी भी है और मन का भी। जिस्मानी सब्र के मायने है कि हर तरह के जिस्मानी दुःख-दर्द को सहना। मन के सब्र का मतलब है अपने मन पर क़ाबू रखना यानी न दुःख का शिकवा हो, न मुसीबत में रोना आए। हर हालत में सब्र रखना। दुनियावी ज़िंदगी में सब्र के बारे में चिश्ती शैख़ हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया ने सब्र के तीन दर्जे बताए हैं:

तनहाई (ख़िलवत) तभी जायज़ है अगर चाल-चलन में कमज़ोरी न आए (बिना शादी किए अपने पर सब्र हो);... अगर ऐसा नहीं हो सकता तो इनसान को चाहिए कि शादी करे, बाल-बच्चों पर जो सख़्तियाँ आएँ उन्हें सब्र से झेले; और अगर दुनिया में रहते हुए बाल-बच्चों का, लोगों का हक़ न दे सके तो दोज़ख़ (नरक) की आग को सब्र से सहे।[34]

बाबा फ़रीद के लफ़्ज़ हैं कि झेलने वाला दुश्मन को ख़त्म करने वाला होता है।[35]

ख़्वाजा साहिब के लफ़्ज़ों में:

सब्र का मतलब बेरुख़ी नहीं है। सब्र का मतलब है पक्का इरादा, पुख़्ता दिल और शांत मन। ताकि मन ऐसी बेहद सख़्त चट्टान की तरह बन जाए कि इनसान हर हालात से गुज़र सके। ख़ुदा का दीदार सब्र का ज़रिया है।[36]

चाहती है दुनिया ख़ुदा से रहमतें और नेमतें,
मैं चाहता हूँ बला में सब्र दिल का बेइन्तिहा। (52.3)

सोहबत

नेक लोगों की सोहबत (संगति) के बारे में ग़रीब नवाज़ फ़रमाते हैं:

> हदीस शरीफ़ में आया है, 'अल सोहबत तास्सुर' यानी साथ रहने का असर होता है। अगर कोई बुरा आदमी नेक लोगों में बैठना शुरू कर दे तो उम्मीद है कि वह नेक हो जाएगा। अगर कोई नेक आदमी बुरे लोगों के साथ बैठना शुरू कर दे तो बुराई उस पर छा जाएगी और वह बुराई की तरफ़ जाने लगेगा। इसलिए जो जिस सोहबत को इख़्तियार करेगा वह वैसा ही फल पाएगा। इसके बाद आपने फ़रमाया कि नेक लोगों के साथ बैठना नेक काम करने से अच्छा है क्योंकि जिसने भी कोई नेमत पाई वह नेक लोगों की सोहबत की वजह से पाई और अगर किसी इनसान ने बुरे लोगों के साथ बैठना शुरू किया तो एक तरह यह सोहबत बुरे काम करने से भी बुरी है। क्योंकि अगर तुम नेक लोगों के साथ हो तो नेकी के अलमबरदार* हो और अगर बुरे लोगों के साथ हो तो बुराई से मोहब्बत करने वाले हो।[37]

> छोड़ इस हवस को, कर उसकी सोहबत की ख़्वाहिश,
> नौ फ़लक† तय कर ला-मकाँ को तू अपना बना। (55.2)

सदक़ा (दान)

चिश्ती सिलसिले में सदक़ा (दान) देने को अहमियत दी गई है। ऐसा माना जाता है कि जो लोग सदक़ा देते हैं वे ख़ुदा की राह में उसकी रहमत पाते हैं। ख़्वाजा साहिब के लफ़्ज़ों में:

> जो इनसान किसी भूखे को खाना खिलाए, ख़ुदा क़यामत के दिन उसके और दोज़ख़ के बीच सात परदे कर देगा यानी जो ख़ुदा के रास्ते में नेकी करते हैं और नेकियों का बदला सिर्फ़

* **अलमबरदार**=नेकी का प्रचार करने वाला † **नौ फ़लक**=नौ आसमान

> ख़ुदा से ही चाहते हैं तो उसका बेहतरीन बदला ख़ुदा ही देता है। क्योंकि जब ख़ुदा के बंदों पर एहसान करते हैं तो ख़ुदा फ़रमाता है, 'वह एहसान तुमने मुझ पर किया है, मुझसे अच्छा बदला देने वाला कोई दूसरा नहीं।'[38]

ख़्वाजा साहिब लोगों की मदद के लिए इतने मशहूर थे कि लोग उन्हें ग़रीब नवाज़ कहते थे। ख़्वाजा बख़्तियार काकी साहिब का कहना है:

> मैं उनके साथ बहुत लंबे अर्से तक रहा। मैंने आज तक ऐसा कोई ज़रूरतमंद नहीं देखा जो उनके दर से बिना मदद के ख़ाली गया हो।[39]

आपके मुर्शिद ख़्वाजा हारूनी का फ़रमान है:

> रसूल-ए-अकरम से पूछा गया कि कौन-सा कार्य सबसे अच्छा है? आपने जवाब दिया, 'किसी की ज़रूरत पूरी करना।'[40]

> आपका कहना है कि लोगों को जितनी राहत और सुख पहुँचाया जा सके वह पहुँचाओ लेकिन अपने नफ़्स को तंगी में रखो ताकि ख़ुदा का दीदार कर सको, क्योंकि सूफ़ी की मंज़िल ख़ुदा की दोस्ती हासिल करना है और सदक़ा इस दोस्ती के बीच एक पुल का काम करता है।[41]

चिश्ती सिलसिले में किसी को खाना खिलाने की इतनी अहमियत है कि हर आने-जाने वाले के लिए लंगर ज़रूरी माना गया है:

> यह नज़राने पर चलता है पर शर्त यह है कि मुर्शिद मुरीद पर नज़राना मुक़र्रर न करे। अगर मुरीद ख़ुशी से दे, उसे रद्द न करे और जो न दे तो उससे कद (रंजिश) न करे।[42]

हक़-हलाल की कमाई (लुक़्माए-हलाल)

चिश्ती शैख़ों ने हक़-हलाल की कमाई की सख़्ती से ताकीद की है और कहा है कि:

> अगर दरवेश को लुक़्माए-हलाल न मिले तो फ़ाक़े (भूखा रहना) को फ़क़ीर की शबे-मेराज* समझो।[43]

मुर्शिद

सूफ़ियों के सभी सिलसिलों में एक मुर्शिद से दूसरे मुर्शिद तक गद्दी आगे चलती है जो इस बात का इशारा है कि इस राह पर वक़्त के मुर्शिद की ज़रूरत होती है, एक ऐसे मुर्शिद की जो अपनी नफ़्स पर क़ाबू करके, दिल को पाक करके इश्क़े-इलाही का सफ़र तय कर चुका हो। इसलिए हरेक सूफ़ी का एक मुर्शिद होना लाज़िमी है, मुर्शिद और मुरीद का रिश्ता सूफ़िज़्म की बुनियाद है।

मुर्शिद की ज़रूरत

ख़्वाजा साहिब फ़रमाते हैं: जिसका कोई मुर्शिद नहीं वो असरारे-इलाही (ख़ुदा के राज़) से महरूम है।[44] आप अपने कलाम में लिखते हैं:

> बेदोस्त इस बियाबान में क़दम न रख तू ऐ मोईन,
> तनहा न जा, ठहर कि वो हमराह बन कर आए हैं। (32.11)

मुर्शिद के लिए 'दोस्त' लफ़्ज़ का इस्तेमाल करते हुए आप आगाह करते हैं कि इस सफ़र में अकेला मत जा, मुर्शिद को अपना हमराही बना।

एक और जगह आप अहमद ग़ज़ाली के हवाले से फ़रमाते हैं:

> जिस शख़्स का शैख़ नहीं, उसका दीन नहीं
> जिसका दीन नहीं, उसका इर्फ़ान† नहीं,

* **शबे-मेराज**=इस्लामी सातवें महीने की दरमियानी रात जिसमें पैग़म्बरे-इस्लाम को मेराज हुई।

† **इर्फ़ान**=अपने आप की पहचान

> जिसका इर्फ़ान नहीं, उसमें ख़ुदा का जज़्बा नहीं,
> जिसमें ख़ुदा का जज़्बा नहीं, उसमें इश्क़े-हक़ीक़ी नहीं।[45]

मुर्शिद की ज़रूरत के बारे मौलाना रूम अपनी मिसाल देते हुए कहते हैं:

> मौलवी हरगिज़ न शुद मौलाए-रूम, ता ग़ुलामे-शम्स तब्रेज़ी न शुद।[46]

यह मौलवी कभी भी मौलाना रूम न बन सकता, अगर वह हज़रत शम्स तब्रेज़ का ग़ुलाम (मुरीद) न होता।

हदीस में फ़रमाया गया है: पीर अपने मुरीदों में ऐसा है जैसा नबी अपने उम्मत (मुसलमान) में।[47]

अपनी किताब *चिश्ती तालीमात* में चिश्तिया शैख़ों का हवाला देते हुए डॉ. निसार अहमद फ़ारूक़ी ने लिखा है:

> सूफ़ियों में आम ख़्याल है: मजाज़* हक़ीक़त तक पहुँचने की सीढ़ी है।... सूफ़ियों ने जो मोहब्बते-पीर की तालीम दी है उस उसूल का यही राज़ है। सवाल यह पैदा होता है कि जब दिल में इश्क़े-इलाही रहेगा तो फिर पीर की मोहब्बत कहाँ समाएगी? उनका जवाब है कि पीर की मोहब्बत मोहब्बते-मजाज़ी है। अगर पीर सच्चा है और उसका क़ल्ब ख़ुदा की मोहब्बत से भरपूर है तो मुरीद को पीर की मोहब्बत से ख़ुदा की मोहब्बत का अभ्यास करना है। फिर वो मंज़िल आएगी जहाँ मोहब्बते-पीर मोहब्बते-हक़ में बदल जाएगा और आख़िरी दर्जे में मुरीद और मुर्शिद का फ़र्क़ ही मिट जाएगा।[48]

क़ुरान शरीफ़ में भी आया है:

> सारी दुनिया के लोग एक कौम है। अल्लाह हमेशा अपने पैग़ाम के साथ नबी भेजता है।[49]

* **मजाज़**=जिस्मानी सूरत

ऐ बंदो! जब मैं तुम्हारे में से चुन कर कोई ख़लीफ़ा भेजूँ तो उसे पूरी इज़्ज़त और तवज्जोह के साथ सुनो।[50]

हमारा अल्लाह और उसके फ़रमान में पूरा भरोसा है, जो हज़रत इब्राहीम, इस्माइल, इस्हाक़, याक़ूब, हज़रत ईसा, हज़रत और दूसरे नबियों के ज़रिए समय-समय पर उतरता रहा है। हम उनमें कोई फ़र्क़ नहीं करते कि एक को क़बूल कर लिया जाए और दूसरे को न किया जाए। (3.84)[51]

सूफ़ी दरवेश अब्दुल करीमुल जिल्ली (1366 ई.) अपनी मशहूर किताब इनसानुल-कामिल में हक़ीक़ुल-मोहम्मदिया के बारे में लिखते हैं:

उसका एक नाम अमरूल्लाह है यानी अल्लाह का हुक्म यानी कलमा...आप नूरे-मोहम्मदी की एक और ख़ासियत बयान करते हुए लिखते हैं कि मोहम्मद का नूर अलग-अलग समय में अलग-अलग रूप लेकर ज़ाहिर होता है। जिस समय में यह ज़ाहिर होता है, उसे उस समय के हिसाब से कोई नाम दे दिया जाता है।...जब यह हक़ीक़त मोहम्मद के रूप में ज़ाहिर हुई तो इन्हें मोहम्मद कहा गया। जब यह हक़ीक़त किसी दूसरे रूप में ज़ाहिर हुई तो जो नाम दिया गया, उससे जाना गया।[52]

इबनुल अरबी लिखते हैं: वली (संत) अपनी ख़ुदी ख़त्म करके इनसाने-कामिल (पूर्ण पुरुष) बन चुका होता है। वह अल्लाह का रूप होता है... दुनिया में वली कभी ख़त्म नहीं होते।[53]

यही ख़्याल ख़्वाजा साहिब अपने कलाम में फ़रमाते हैं:

सर से पाँव तक नवाज़ा है नबी को नूरे-हक़ से तूने,
कि चाँद को जैसे करता है रौशन हरदम आफ़ताब। (6.4)

जैसे चाँद को हमेशा सूरज रौशन करता है वैसे ही नबी, वली या दरवेश में रब का नूर चमकता है।

ख़्वाजा साहिब ने शैख़ शिहाबुद्दीन सुहरवर्दी का हवाला देते हुए फ़रमाया:

दो चीज़ों से अच्छा कोई काम नहीं, दरवेशों के साथ रहना और वलियों की इज़्ज़त करना, क्योंकि जब कोई दरवेशों के साथ रहता है तो ज़िक्रे-ख़ुदा और नेकियों के सिवा सुनने को कुछ नहीं मिलता और जब वलियों के लिए दिल में मोहब्बत पैदा होती है तो ख़ुदा के लिए मोहब्बत पैदा होती है। दरवेशों और वलियों की तालीम पर चलने से ख़ुदा का विसाल हासिल होता है।[54]

आप अपने कलाम में फ़रमाते हैं:

आ फ़क़ीरों की महफ़िल में कि ख़ुदी है दौलतमंदों में,
फिर ख़ुद को पहचाने, अपनी नेकी का नतीजा देखे। (113.10)

मौलाना रूम मसनवी में फ़रमाते हैं:

मर्दे-हज्जी हमरही हाजी तलब, ख़्वाह हिंदु ख़्वाह तुरक ओ या अरब।
मनिगर अंदर नक्श ओ अंदर रंगे-ऊ, बनिगर अंदर अज़्म ओ दर अहंगे-ऊ।[55]

अगर ख़ुदा के साथ विसाल का हज करना चाहता है तो उसके साथ विसाल हासिल कर चुके किसी हाजी को अपना रहबर बना। तू यह न देख कि वह हिंदु है, तुर्क है या अरब। तू उसकी बाहरी शक्ल-सूरत की ओर न देख। उसकी अंदरूनी रूहानी पहुँच और इरादे को देख।

ख़्वाजा साहिब फ़रमाते हैं: ऐ मुर्शिद! तूने इश्क़ की मय का कैसा जाम पिलाया है कि मेरे दिल में हर वक़्त ख़ुदा की आवाज़ गूँज रही है:

ऐ साक़ीए-वहदत मुझे यह जामे-मय कैसा दिया,
कि हर घड़ी दिल से मेरे आती है हू हू की सदा। (120.1)

यही ख़्याल मौलाना रूम *मसनवी* में लिखते हैं, 'नूरानी शैख़ (मुर्शिद) रास्ते से वाक़िफ़ करवाता है और अपनी तालीम के साथ नूर भी देता है।'[56]

शरफ़ुद्दीन मनेरी रूहानी सफ़र में मुर्शिद की अहमियत बताते हुए लिखते हैं:

> इस सफ़र को तय करते हुए सालिक को रूहानियत के कई मक़ामों से गुज़रना पड़ता है। जैसे-जैसे रूह के परदे उतरते जाते हैं, इनसान की रूह नूर से पुरनूर होती जाती है। हो सकता है वो ऐसे मक़ाम पर भी पहुँच जाए कि करामात दिखाने लगे। अक़्ल, इल्म और समझ होने के बावजूद सच को न जान पाए। इसलिए ऐसे मुर्शिद की ज़रूरत है जो यह सफ़र तय कर चुका हो और अगर मुर्शिद रहनुमाई नहीं करता तो इस बात का डर बना रहता है कि कहीं मुरीद अपना भरोसा न खो बैठे; ग़लतफ़हमी में पड़ जाए कि ख़ुद को नबी या ख़ुदा का सानी समझने लगे। इस सफ़र के दौरान ऐसे कई जोख़िम भरे दौर आएँगे; कई तरह के रूहानी तजरबे होंगे जो या तो शैतान ने पैदा किए हों या अपने नफ़्स ने और कुछ ऐसे भी जो ख़ुदा की रहमत से हुए हों... सालिक के लिए ये सब तजरबे नए होते हैं, इसलिए वह इनकी असलियत नहीं जान पाता। यहाँ उसे किसी ऐसे मददगार की ज़रूरत होती है जो इन तजरबों से गुज़र चुका हो और इनकी असलियत जानता हो।[57]

ख़्वाजा साहिब ने अपने कलाम में मुर्शिद को साक़ी कहा है। आपने जगह-जगह साक़ी की सिफ़त की है, उसे ख़ुदा तक पहुँचने का ज़रिया बताया है। आप कहते हैं कि जिस ख़ुदा की तलाश में बरसों भटकता रहा, इबादत करता रहा, वो मुझे साक़ी की सोहबत में मयख़ाने में मिला। जब साक़ी ने इश्क़ की मय पिलाई, वहदत का प्याला दिया तो मेरे दिल पर लगी सारी मैल उतर गई, मुझे ख़ुदा का दीदार हो गया:

मैं ढूँढ़ता था जिसे दुआओं में बरसों से,
मिला वो मुझको यहीं मयख़ाने में देख। (54.5)

ख़ज़ाने आलमे-ग़ैब के सब हों उस पे निसार,
गर खोल दे साक़ी दर उस मयख़ाने का। (20.2)

मेरे साक़ी कैफ़े-मय तेरी और ही कुछ असर रखे,
जहाँ वालों को इसका एक क़तरा ही बेख़बर रखे। (36.1)

हूँ उसी साक़ी का दीवाना, हाथ में जिसके जाम और मीना है,
नज़र जिस रुख़ पे डाले चेहरा वो गुलज़ार हो जाए। (38.9)

जब हुआ ज़ाहिर साक़ीए-बाक़ी का नूर,
अब जामे-दिल को ज़ंग से साफ़ पा रहा हूँ मैं। (62.9)

साक़ीया साग़रे-जाँ को ज़रा मय वस्ल की चखा,
हर घड़ी ख़ूने-दिल कब तक मैं पीता रहूँ। (68.2)

मये-वहदत का इक प्याला तो इनायत कर मेरे साक़ी,
कि मैं भी इस जहाँ में सूरते-मंसूर हो जाऊँ। (78.3)

साक़ी के हाथों मैंने जब इक जाम बक़ा का पीया,
था मौत का जो ज़ंग, मये-वहदत से वो धुल गया। (86.5)

दरम्याँ मेरे और मेरे साक़ी के पड़े हैं परदे सौ हज़ार,
मगर मेरे एक मस्त नारे से वो चाक हो जाते हैं। (97.10)

ख़्वाजा साहिब के ख़लीफ़ा हज़रत बख़्तियार काकी शैख़ की ज़रूरत के बारे में लिखते हैं:

> बैअत या मुरीद होने की ग़रज़ यह है कि ख़ुदा तक पहुँचने के लिए शैख़ से वास्ता और राबिता रखे ताकि सालिक गुमराही

से बच जाए।... इसके लिए पहला क़दम है कि अपने गुनाहों की तौबा करे।... दूसरा, कामिल शैख़ की जुस्तजू करे। शैख़ ऐसा हो जो आलमे-दीन (रूहानियत का जानकार) हो, शैख़ बैअत करने की क़ाबिलीयत रखता हो और जिसकी मजलिस में बैठने से ख़ुदा से मोहब्बत बढ़े और दुनिया से मोहब्बत कम हो।[58]

मुर्शिद की तालीम का मक़सद मुरीद की सोई हुई रूह को बेदार (जाग्रत) करना और उसकी रूहानी तरक़्क़ी में मदद करना है। जब मुर्शिद मुरीद को बैअत करता है तो इस रिश्ते पर मोहर लग जाती है। ख़्वाजा साहिब कहते हैं: लोगों के लिए यह समझना बहुत मुश्किल है कि शैख़ कौन है और उन्हें अपने मुर्शिद से क्या हासिल होता है?[59]

मुरीद का फ़र्ज़

मुरीद का अपने शैख़ के लिए कैसा नज़रिया होना चाहिए इस बारे में चिश्ती शैख़ फ़रमाते हैं:

मुरीद को चाहिए कि अपने पीर को सिर्फ़ उस्ताद ही न समझे बल्कि चिश्ती सिलसिले में मुरीद आशिक़ व पीर माशूक़ होता है। अपने पीर से बढ़ कर किसी को न माने। मुरीद को चाहिए कि अपने पीर से इतनी मोहब्बत रखे कि वह अपने परिवार, धन-दौलत से भी बहुत ज़्यादा अज़ीज़ समझे।[60]

मुरीद के लिए ज़रूरी है कुछ अर्सा शैख़ की सोहबत में रह कर फ़ायदा उठाए। मुरीद के लिए शैख़ की सोहबत और शैख़ की ख़िदमत निहायत ज़रूरी है। शैख़ जो अज़कार (ज़िक्र) दे और अभ्यास का तरीक़ा बताए उसे पूरी तवज्जोह से करे।[61]

मुरीद को चाहिए वह अपने आप को हर वक़्त पीर की निगरानी में समझे। और अपने काम में पीर और ख़ुदा की मेहरबानी चाहे। इस अभ्यास के बाद उसे हर जगह पीरो-मुर्शिद ही नज़र आएगा।[62]

मुरीद को यह ख़्याल नहीं करना चाहिए कि मुरीद होते ही ग़ैब की बातें मालूम होने लगेंगी। और न ही मुरीद को यह जेहन में लाना चाहिए कि मुर्शिद उसके गुनाह माफ़ करा देगा। यह ख़ुदा की इबादत और नेक आमाल से ही हासिल होता है। मुर्शिद मुरीद को एक निगाह में बाकमाल बना सकता है, लेकिन इस उम्मीद पर अपनी कोशिश से ग़फ़लत और हुक्म से लापरवाही सख़्त गुमराही है।[63]

किसी भी मुरीद का पहला फ़र्ज़ है पूरी लगन और मेहनत से रूहानी राह पर चलना।

अपनी किताब चिश्ती तालीमात में चिश्ती शैख़ों के हवाले से डॉ. निसार अहमद फ़ारूक़ी लिखते हैं:

इस राह पर किसी को रियाज़त की अहमियत बताने के लिए एक दरवेश किसी दुनियादार के पास पहुँचे और पूछा कि तुम दुनिया कैसे कमाते हो। उसने कहा—सख़्त मेहनत करता हूँ, पसीना बहाता हूँ, दौड़-धूप में लगा रहता हूँ तब कहीं कुछ हाथ आता है और कभी मिलता भी नहीं। दरवेश ने कहा फ़ानी दुनिया के लिए इतनी कोशिश करते हो तब भी वह नहीं मिलती। तो फिर आख़िरत के लिए बिना कोशिश किए क्या वहाँ कुछ मिल जाएगा?[64]

इस बारे में अपना तजरबा बताते हुए ग़रीब नवाज़ लिखते हैं:

मैं हज़रत ख़्वाजा उस्मान हारूनी का मुरीद था। मैंने लगभग बीस साल उनकी ख़िदमत में रात-दिन एक कर दिया। हज़रत उस्मान

हारूनी कहीं भी सफ़र पर जाते तो आपका बिस्तर और दूसरा सामान सिर पर उठा कर आपके साथ चलता और आपके हर हुक्म को दिल से पूरा करने की कोशिश करता। मेरी इस ख़िदमत से ख़ुश होकर आपने जो दौलत बख़्शी मैं उसका बयान भी नहीं कर सकता।[65]

आप अपने कलाम में फ़रमाते हैं:

नौवें आसमाँ से भी ऊपर पहुँचने की मिली है नेमत मुझे,
क्या ख़ूब है कि तेरी ख़िदमत से ही यह फ़ायदा हुआ। (96.4)

अगर मुरीद मुर्शिद की दिल से ख़िदमत करता है तो ख़ुदा की दया-मेहर से सबसे ऊँचे रूहानी मक़ाम पर पहुँच सकता है।

ग़रीब नवाज़ ने फ़रमाया है:

मुरीद को चाहिए कि अपने पीर के बताए रास्ते पर चले और जो तालीम और आमाल (काम) वह बताए उन्हें सबसे बड़ी दौलत समझे तभी वह अपनी असली मंज़िल पर पहुँच पाएगा, क्योंकि मुर्शिद जो भी बताएगा मुरीद के फ़ायदे के लिए ही होगा।[66]

ख़्वाजा साहिब ने एक और मजलिस में नसीहत दी:

अपने पीरो-मुर्शिद की तरफ़ देखना, उनकी ख़िदमत करना, इबादत करना है।... पीर के उपदेश बड़े ग़ौर से सुनो और वह जो बताए, उसे करो। अपने पीरो-मुर्शिद की ख़िदमत में रहो, उनकी ख़िदमत से ग़ायब न हो।[67]

यही ख़्याल आप अपने कलाम में दोहराते हैं:

गर तू बंदगी करे, तख़्ते-सुलतानी पर बैठे,
मोईन अयाज़ ने महमूद की ख़िदमत की थी जैसे। (119.8)

आपने यहाँ अयाज़ की मिसाल दी है जो महमूद ग़ज़नवी का चहेता ग़ुलाम था क्योंकि बादशाह उसकी वफ़ादारी से बहुत ख़ुश था। एक समय आया जब महमूद ग़ज़नवी ने अयाज़ को लाहौर का नवाब बना दिया। जो मुर्शिद की सच्चे दिल से बंदगी करता है रब उसे अपने साथ विसाल का फ़ख़्र बख़्शता है।

मुरीद की कामयाबी इस पर मुनहसिर है कि वो कितनी दिलो-जान से मुर्शिद की ख़िदमत करता है। बाबा फ़रीद ने अपने मुर्शिद ख़्वाजा बख़्तियार काकी के हवाले से फ़रमाया:

एक बार आप इबादत में थे कि आपके मुर्शिद ख़्वाजा चिश्ती का पैग़ाम आया। बख़्तियार काकी एकदम उठ कर चले गए। ख़्वाजा साहिब ने उनसे पूछा कि वे क्या कर रहे थे तो उन्होंने जवाब दिया कि वे इबादत में थे और आपका संदेश सुनते ही आ गए। ख़्वाजा सहिब ने फ़रमाया कि आपने जो किया दुरुस्त किया। इबादत से बढ़ कर मुर्शिद का हुक्म है। रूहानी सफ़र में यह बेहद ज़रूरी है कि मुरीद का मुर्शिद में पूरा भरोसा और यक़ीन होना चाहिए।[68]

असली फ़ायदा ख़िदमत (सेवा) में है; ख़िदमत के सिवा कोई और नुक़्ता नहीं।[69] मुरीद बनने का मतलब है अपने रूहानी रहबर का ग़ुलाम बनना। हम रूहानी रहबर की तारीफ़ कर सकते हैं, उसे इज़्ज़त बख़्श सकते हैं पर जब तक उसकी ख़िदमत नहीं करते मुरीद नहीं कहलाते।[70] प्यार और ख़िदमत इस रिश्ते की बुनियाद है। ख़्वाजा साहिब कहते हैं:

मुरीद के लिए कुछ मायने नहीं रखता। उसकी ज़िंदगी में और कुछ नहीं जिसके लिए वह जीए और जिससे प्यार करे। उसकी रोज़मर्रा की ज़िंदगी में ख़िदमत से बढ़ कर और कोई उसूल नहीं। ऐसी ख़िदमत जो पाक हो, बेग़रज़ हो और तारीफ़ और इल्ज़ाम से ऊपर हो।[71]

रूह का सफ़र

सूफ़िज़्म में रूह के सफ़र को हदीसे-इश्क़ यानी इश्क़ की कहानी कहा गया है, जिसमें सालिक (साधक) मुर्शिद की रहनुमाई में रियाज़त करता हुआ दिल की गहराइयों में पहुँच जाता है। दिल की गहराइयों का राज़ बताते हुए ख़्वाजा साहिब दलील उल आरिफ़ीन में कहते हैं:

दिल वो जगह है जहाँ ख़ुदा अपना जलवा दिखाता है। असली दिल वो दिल है, जो न दाईं तरफ़ है न बाईं तरफ़, न ऊपर न नीचे की तरफ़, न दूर न नज़दीक। मगर इस असली दिल की पहचान आसान नहीं। ख़ुदा के अज़ीज़ इसे जानते हैं। आशिक़ का दिल असल में ख़ुदा का सिंहासन है।[72]

ख़ुदा से मिलने का ज़रिया उसका इश्क़ है और ख़ुदा का इश्क़ ख़ुदा की इबादत है। इश्क़े-इलाही का यह अंदरूनी सफ़र ही असली हज है। डा. शारिब अपनी किताब *The Mystical Philosophy of Khwaja Moinuddin Hasan Chishti* में फ़रमाते हैं: असल में इनसान का दिल ही काबा है।[73] आप ने मुहम्मद साहिब का हवाला देते हुए लिखा है: 'हक़ की पहचान करने के लिए अंदरूनी सफ़र पहला क़दम है क्योंकि इनसान अपने आप में सल्तनत है।'[74] इनसान की रूह ख़ुदा का घर है।[75] ख़्वाजा साहिब इस हज की तश्बीह मक्का-मदीना के हज से करते हुए कहते हैं:

इनसान की हस्ती चारदीवारी की तरह है। अगर शक-शुबहा का परदा और दुनिया का ख़्याल उठ जाए तो दिल के आँगन में ख़ुदा का नूर ज़ाहिर हो जाए। यही सच्चा काबा है। सच्चे हज से मतलब है अपने को फ़ना करना यानी अंदरूनी और बाहरी तौर पर पाक हो जाना, और अपने अंदर ख़ुदा की सिफ़तों को ज़ाहिर करना।[76]

ख़्वाजा साहिब कहते हैं कि असली काबा वह है जिसका तवाफ़ (परिक्रमा) रूह करती है:

हाजी लोग अपने जिस्म के साथ काबे का तवाफ़ करते हैं लेकिन आरिफ़ लोग अपनी रूह से जन्नत का तवाफ़ (परिक्रमा) करते हैं। उन्हें सिर्फ़ ख़ुदा की तड़प होती है।[77]

इबादत

अन्य सूफ़ी दरवेशों की तरह ख़्वाजा साहिब ने भी इबादत पर बहुत ज़ोर दिया है। इबादत की अहमियत बताते हुए आप फ़रमाते हैं:

इबादत का मतलब यह नहीं कि कभी-कभी ख़ुदा की मौजूदगी का एहसास हो। इबादत ख़ुदा से असली दोस्ती का ज़रिया है। ख़ुदा के साथ सच्ची दोस्ती का मतलब है आज़ादी और बेपरवाही की ज़िंदगी जीना। इबादत का मक़सद है ख़ुदा को जानना, उसकी रज़ा में रहना। इसमें कोई दुनियावी ख़्वाहिश या ख़्याल नहीं होना चाहिए। इबादत का मतलब है ख़ुदा से पाक रिश्ता जोड़ना।...

जैसे हमारे फेफड़े लगातार साँस लेते हैं, हृदय में बिना रुके ख़ून चलता है और हमें इसका एहसास तक नहीं होता कि ऐसा लगातार हो रहा है, उसी तरह हमारी इबादत भी कोई एक वक़्त का अभ्यास नहीं है। इबादत ज़िंदगी है इसलिए इबादत बिना रुके करनी है।... हमें अपनी रूहानी ज़िंदगी को बरबाद नहीं होने देना चाहिए बल्कि हमारी सारी तवज्जोह उस एक ख़ुदा पर होनी चाहिए।... इबादत का मक़सद है बिना ख़्वाहिश के

ख़ुदा को याद करना, किसी चीज़ पर हक़ नहीं रखना, अपने आप को उसकी रज़ा में छोड़ देना।[78]

आपका कलाम है:

ज़ाहिद करते हैं इबादत जन्नत और बहिश्त की ख़्वाहिश से,
मैं चाहूँ इस जहाँ में ख़ुदा से बस ख़ुदा। (52.4)

जप-तप करने वाले लोग इसी उम्मीद से इबादत करते हैं कि मौत के बाद उन्हें जन्नत और बहिश्त नसीब होगी। ख़्वाजा साहिब कहते हैं कि मेरी इबादत का मक़सद सिर्फ़ ख़ुदा से ख़ुदा को माँगना है।

रूह की तरक़्क़ी के लिए इबादत बहुत ज़रूरी है।[79] ख़्वाजा साहिब कहते हैं:

नमाज़ दो तरह की है—एक वह जो उलमा* ने बताई है, यह सिर्फ़ उसूलों के दायरे तक है। इसमें ख़ुदा का विसाल हासिल नहीं होता। उनकी रसाई आलमे-मलकूत† तक ही रहती है। दूसरी नमाज़ नबी और औलियों की है जो दिल को हाज़िर रख कर की जाती है। उसमें ख़ुदा से विसाल हासिल होता है। उसकी रसाई आलमे-जबरूत तक है।[80]

इबादत असल में एक राज़ है, रब्बी राज़ जिसमें सालिक रब को राज़दाँ बनाता है। यह रब की नज़दीकी हासिल करने का एक मौक़ा है। इबादत के सिवा कोई और मौक़ा मौजूद नहीं है जिसमें वह रब को अपना राज़ बयान कर सके।[81]

---

* उलमा=विद्वान लोग

† सूफ़िज़्म में रूहानी सफ़र के दौरान इन चार मक़ामों का ज़िक्र आया है: आलमे-नासूत (जिस्म के छः चक्र), आलमे-मलकूत (सहस्रदल कँवल), आलमे-जबरूत (त्रिकुटी), आलमे-लाहूत (दसम द्वार)।

शुरू-शुरू में इबादत बेलज़्ज़त महसूस होती है। इबादत में ख़ुद-बख़ुद लज़्ज़त नसीब हो जाए उसकी मिसाल देते हुए चिश्ती शैख़ हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया ने फ़रमाया है:

कोई शख़्स बढ़ई का काम करता हुआ कुर्सी बना रहा है। इस काम में कोई दिली लगाव या लज़्ज़त नसीब नहीं है बल्कि अपनी रोज़गारी के लिए कर रहा है। लेकिन यही कुर्सी अगर वह अपने महबूब के बैठने के लिए बना रहा है तो उस पर वज्द छा जाएगा और उसे बनाने में ऐसा मश्ग़ूल रहेगा कि दीन-दुनिया से बेख़बर हो जाएगा। यही हाल इबादत का है। ख़ाली दिल से इबादत करना शरीर की कसरत करना है पर अगर इबादत करने वाले को अपने मुर्शिद से दिली प्यार है, इश्क़ है या वो जानता है कि किस महबूब की बारगाह में है तो वही इबादत वज्द और शौक़ में तब्दील हो जाएगी। इश्क़ इबादत की रूह ही है।[82]

इबादत में ऐसी कैफ़ियत (हालत) हो जाए कि लगे कि मैं आँखों से ख़ुदा को देख रहा हूँ, ख़ुदा मेरे सामने मौजूद है। अगर ऐसा न हो तो इतना एहसास ज़रूर होना चाहिए कि ख़ुदा तो मुझे देख रहा है। इसे सूफ़ी मक़ामे-हुज़ूरी कहते हैं।[83]

ख़्वाजा साहिब का कलाम है:

ख़ुदा की ज़ात में गुम होकर न गुनाह बाक़ी रहे, न बंदगी,
कैफ़ियत हुई ऐसी कि मैं उसमें और वो मुझमें समा गया। (120.8)

आपने अपनी मजलिसों में फ़रमाया है:

हर आदमी को यह समझ लेना चाहिए कि वह जो इबादत व रियाज़त करता है, ख़ुद अपनी भलाई के लिए करता है और

इसका फ़ायदा भी उसको पहुँचता है। और यह रास्ता ख़ुदा ने इसलिए बताया कि सब उसकी मोहब्बत व रहमत हासिल कर सकें और अगर कोई बंदा अपनी इबादत से मग़रूर हो जाता है वह ख़ुदा की नज़रों से गिर जाता है। इसलिए अपनी इबादत व परहेज़गारी को हमेशा कम समझो और उस पर ग़ुरूर न करो।[84]

कोई चीज़ ऐसी नहीं है जो ख़ुदा न जानता हो, जिस पर उसकी क़ुदरत हासिल न हो। इसलिए इनसान के लिए ज़रूरी है कि जहाँ तक हो सके ख़ुदा की इबादत करे। ख़ुदा उसका बदला उसको देगा।[85]

मोईन भेजता है दुरूद* हरदम तुझ पे,
या ख़ुदा हो मेहरबाँ सदा तू मुझ पे। (23.10)

ख़्वाजा साहिब इबादत के लिए वक़्त के बहुत पाबंद थे। आप कहते थे:

'उन लोगों पर अफ़सोस है जो वक़्त पर इबादत नहीं करते और उन पर तरस आता है जो कभी ख़ुदा को याद ही नहीं करते।'[86]

आप कहते हैं कि हज़रत राबिया बसरी से किसी ने पूछा कि सबसे अच्छा काम कौन-सा है। आपने कहा, 'वक़्त की पाबंदी के साथ ख़ुदा की इबादत करना और उस पर क़ायम रहना।'[87]

ख़्वाजा हारूनी ने हज़रत समरकंदी के हवाले से फ़रमाया है:

रात की इबादत मौत के बाद की तमाम मंज़िलों में नूर पैदा कर देती है और जो ख़ुदा की याद में रातें जाग कर गुज़ारता है, ख़ुदा उसकी दुआओं को क़बूल करता है।[88]

---

* दुरूद=वो दुआ जो रसूल (मुहम्मद साहिब) से की जाए।

ख़्वाजा साहिब का कलाम है:

यह सर है दर पे तेरे, पर खुलता नहीं दर तेरा,
याद में उसकी गुज़ार दे तू रात तो क्या हो। (25.3)

बंदा कहता है कि ऐ ख़ुदा! तेरे दीदार के लिए तेरे दर पर सिर झुकाए खड़ा हूँ पर तेरा दर खुलता नहीं। फिर इसी शेअर की दूसरी लाइन में जवाब दिया है कि अगर ख़ुदा की याद में सारी रात गुज़ार दें यानी सारी रात इबादत में लगा दें तो क्या का क्या हो जाए।

इसी बारे में ग़रीब नवाज़ ने अपने मुर्शिद हज़रत ख़्वाजा उस्मान हारूनी के हवाले से फ़रमाया:

बुख़ारा की यात्रा के समय मुझे ख़ुदा के दोस्त और दिलों का हाल जानने वाले एक दरवेश मिले। बहुत दिनों तक मैं उनके साथ रहा और उस समय मैंने यह देखा कि इनकी कोई रात ख़ुदा की इबादत से ख़ाली नहीं है। जब वहाँ के लोगों से मेरी बात हुई तो उन्होंने बताया कि चालीस साल से रात को इनकी कमर ने ज़मीन को नहीं छुआ है यानी चालीस साल से यह इसी तरह इबादत कर रहे हैं।[89]

इबादत की राह में मज़हबे-इश्क़ इख़्तियार करना पड़ता है, क्योंकि इबादत का मक़सद है ख़ुदा को हमेशा याद करना। इसलिए उसका ज़िक्र, उसका तसव्वुर और आवाज़े-हक़ को सुनना इबादत के अहम पहलू हैं।

डॉ. निसार अहमद फ़ारूक़ी ने अपनी किताब *चिश्ती तालीमात और अस्रे-हाज़िर में उनकी मानवीयत* में चिश्तिया शैख़ों का हवाला देते हुए लिखा है:

जब इनसान मरता है तो जो कुछ उसने ज़िंदगी में किया था, या फिर जिन कामों में उसने दिल लगाया था वही उसके सामने आएगा।

अगर दुनिया की तलब थी तो उसके आगे दुनिया आएगी, अगर आख़िरत और बहिश्त की तमन्ना की थी तो मौत के बाद वही नज़र आएगा।... अगर किसी ने न दुनिया की तलब की हो, न हूर ओ क़ुसूर की तमन्ना की हो सिर्फ़ ख़ुदा का ख़्याल किया तो उसे क्या मिलेगा?... तो उसे ख़ुदाए-पाक का विसाल हासिल होगा।[90]

मुरीद का फ़र्ज़ है कि वह इबादत के ज़रिए अपने अंदर इश्क़ पैदा करे ताकि उसका दिल इश्क़ की अमानत के क़ाबिल बन जाए। पीर का फ़र्ज़ यह है कि सूखी लकड़ियों में एक चिंगारी रख दे जिसे मुरीद ज़िक्र, फ़िक्र, तसव्वुर और रियाज़त (मेहनत) के ज़रिए इसे हवा देता रहे ताकि वह चिंगारी बुझ न जाए। यह नेमत लाफ़ानी है।[91]

ज़िक्र (सिमरन)

ज़िक्र के बारे में ख़्वाजा साहिब अपने कलाम में फ़रमाते हैं:

विसाले-ख़ुदा गर तू चाहे, कर ज़िक्र उसका हरदम,
विसाले-हक़ होगा, गर हो विसाले नामे-ख़ुदा। (1.2)

याद उसकी जाँ में जज़्ब हुई, बन गई शौक़े-दीदार,
याद उसकी आक़बत* से ही है मेरी जाँ में छुपी। (18.2)

अगर तू ख़ुदा से विसाल हासिल करना चाहता है तो हमेशा उसके नाम का ज़िक्र कर। उसकी याद यानी उसका ज़िक्र शुरुआत से ही रूह में छिपा है। ज़िक्र करता हुआ जब तू नाम में जज़्ब हो जाता है तो समझ ख़ुदा में जज़्ब हो जाता है।

---

* **आक़बत**=दूसरा जहाँ, परलोक

चिश्ती सूफ़ियों ने ख़ुदा के ज़िक्र की सिफ़त इस तरह की है:

ज़िक्र ज़िंदगी है, ज़िक्र भूल जाना मौत है;[92]

दुनिया के ज़िक्र से मर चुके मन को ख़ुदा के ज़िक्र से ज़िंदा करो।[93]

दुनिया का कोई काम ज़िक्र से बड़ा नहीं; ख़ुदा के आशिक़ पल भर के लिए भी ख़ुदा की याद से ग़ाफ़िल हो जाएँ तो वे कहते हैं कि हम मुर्दा हैं, अगर ज़िंदा होते तो ख़ुदा की याद में मुर्दा न होते। ख़ुदा का ज़िक्र ख़ुदा में यक़ीन होने की निशानी है।[94]

जिस किसी को ख़ुदा अपना दोस्त बनाना चाहता है, उस पर अपने ज़िक्र का दरवाज़ा खोल देता है।[95]

मोहब्बत दो तरह की होती है: मोहब्बते-ज़ात और मोहब्बते-सिफ़ात। मोहब्बते-ज़ात ख़ुदा की रहमत से मिलती है और उसमें कोशिश का कोई काम नहीं... लेकिन मोहब्बते-सिफ़ात के लिए कोशिश करनी पड़ती है।... मोहब्बते-सिफ़ात हासिल करने का तरीक़ा क्या है? इसके लिए ज़िक्र बताया गया है। ज़िक्र की शर्त यह है कि उसमें कोई ग़फ़लत न होने पाए और अपने क़ल्ब (दिल) को ज़िक्र के इलावा हर ख़्याल से ख़ाली कर दे। जब दिल हर ख़्याल से ख़ाली हो जाएगा फिर ज़िक्र का असर शुरू होगा और आख़िर में यह ज़िक्र आईनाए-जमाले-इलाही बन जाएगा यानी इसमें ख़ुदा का नूर ज़ाहिर हो जाएगा।[96]

ज़िक्र की आख़िरी मंज़िल है कि ज़िक्र, ज़िक्र करने वाले के वुजूद को भी ख़त्म कर देता है, फिर ज़िक्र ख़ुद भी फ़ना हो जाता है और फिर वही रहता है जिसका ज़िक्र किया जाता है क्योंकि उसी का वुजूद वाजिब है।[97]

ख़्वाजा साहिब ज़ुन्नून मिसरी का हवाला देकर कहते हैं:

> उन्होंने ख़ुदा से पूछा, 'ख़ुदावंद तू कहाँ है? तुझे कहाँ तलाश करूँ?' आवाज़ आई 'ज़िक्रे-रूह (दिल से किया अंदरूनी ज़िक्र) में मौजूद हूँ।' फिर आपने बायज़ीद बिस्तामी का हवाला दिया, 'ख़ुदावंद रास्ता किधर है? मैं कैसे निजात पाऊँ?' आवाज़ आई, 'सभी रास्तों में से दिल का रास्ता सबसे ऊँचा है। मैं ज़िक्रे-ख़फ़ी (रूह से किया अंदरूनी ज़िक्र) में हूँ, न कि ज़िक्रे-ज़ुबानी (ज़ुबान से बोल कर किया गया ज़िक्र) में।'[98]

आप आगे फ़रमाते हैं:

> अगर तुमने ज़िक्र का वादा किया है तो ज़िक्र रोज़ करना चाहिए। अगर सुबह नहीं कर सकते तो रात को करो लेकिन हर हालत में करो, क्योंकि हदीस में लिखा है कि जो ज़िक्र में नाग़ा करता है लानत है उस पर।
>
> ईमान वाले का दिल हमेशा ज़िक्रे-ख़फ़ी में मश्ग़ूल होता है इसी लिए वो लाफ़ानी ज़िंदगी हासिल करता है जबकि आम आदमी ज़िक्र के राज़ से ग़ाफ़िल है इसलिए वो मुर्दा है।[99]

चिश्ती सिलसिले में ज़िक्र की अहमियत बताते हुए मुहम्मद हसन सफ़दर का कहना है:

> ज़िक्र के बारे में यह ख़्याल रखना ज़रूरी है कि शुरू में कुछ अरसा, दो-तीन साल तक यह तयशुदा जगह पर बैठ कर किया जाए... इससे ज़िक्र के लिए सही माहौल तैयार होता है और ध्यान नहीं टूटता।[100]

तसव्वुर (ध्यान)

> अंदर मेरे दिल में उठा ऐसा शोरोगुल,
> यह शोर है कि ख़ुदा इसी राह आए हैं। (32.6)

अंदर जिस नुक़्ते पर ध्यान किया जाता है ख़्वाजा साहिब ने उसे शाह राह कहा है। जब ध्यान यहाँ टिक जाता है तो ख़ुदा का दीदार होता है।

क़ादिरी सिलसिले के साईं बुल्लेशाह ने शाह रग के बारे में क़ुरान शरीफ़ की आयतों के हवाले से फ़रमाया है:

> नहुनु-अक़रबु लिख दितोई, हुव मअकुम सबक़ दितोई।
> व फ़ी अनफ़ुसिकुम हुकम कीतोई, फिर केहा घूंघट पायो ई।[101]

मैं शाह रग से भी नज़दीक हूँ, मैं हमेशा तेरे साथ हूँ; तू अपने अंदर में मेरी पहचान कर।

शाह राह का मतलब है शाही मार्ग जो सीधा रब की ओर जाता है। क़ुरान शरीफ़ में 'नहनु अक़रबु' का इशारा मिलता है जिसका मतलब है जब ध्यान शाह रग में पहुँच जाता है, रूह रब के नज़दीक पहुँच जाती है।

डा. निसार अहमद फ़ारूक़ी अपनी किताब *चिश्ती तालीमात* में चिश्ती शैख़ों के हवाले से लिखते हैं:

> इर्फ़ान (रूहानियत) की तलब और उसे हासिल करने का फ़ख़्र सिर्फ़ इनसान को नसीब है, लेकिन यह रूहानियत तभी मिलती है जब दिल में सिवाय ख़ुदा के कोई और ख़्याल न हो और चाल-चलन पूरी तरह से पाक हो। दिल में सिवाय उसके और किसी का ख़्याल न आए, तसव्वुर में बस उसी की सूरत और ज़ुबान पर उसी का ज़िक्र रहे। जब बात करे तो उसी की रहमत और उसी की जफ़ा और वफ़ा की, उसकी बख़्शिश और मेहरबानी की।[102]

चिश्तिया शैख़ों ने तसव्वुर को इन लफ़्ज़ों में बयान किया है:

मुरीद शुरू में परदों के अंदर होता है। इस वास्ते ख़ुदा की तरफ़ तवज्जोह नहीं कर सकता। इस हालत में मुर्शिद का तसव्वुर करना मुरीद के लिए ज़रूरी है।[103]

तसव्वुरे-शैख़ की सूरत है कि मुरीद अपने आप को शैख़ के रूबरू, उनकी मजलिस में हाज़िर-नाज़िर समझे, अपने दिल में शैख़ का ख़्याल जमाए।[104]

आँखें बंद करके पीरो-मुर्शिद का तसव्वुर इस हद तक करे कि ख़ुद मुरीद को लगने लगे कि उसने मुर्शिद की सूरत ही इख़्तियार कर ली है। वह जो भी काम करे वो ऐसा समझे जैसे मुर्शिद ही कर रहा है। हर वक़्त मुर्शिद का तसव्वुर और उसकी सूरत अंदर नज़रों में रहे।[105]

पीर ख़ुदा का सफ़ीर (दूत) है इसलिए जो कुछ मिलेगा पीर के हाथ से ही मिलेगा।[106]

हर वक़्त अपने को पीर की हाज़िरी में समझे और अपने ऊपर पीर की तजल्ली (नूर) का तसव्वुर करे, क्योंकि इसका अभ्यास करने से एक वक़्त ऐसा आएगा कि पीर उसकी तनहाई में मौजूद होगा और पीर के दिल पर जो हक़ की तजल्ली हो रही है उसका अक्स मुरीद के दिल पर जलवागर नज़र आएगा।[107]

सालिक को ख़िलवत (एकांत) के लिए ऐसी जगह ढूँढ़नी चाहिए जहाँ तनहाई ही तनहाई हो, कोई दूसरा न हो। तनहाई में ज़िक्र और तसव्वुर का ख़ास ख़्याल रखें। ज़िक्र और तसव्वुर के लिए तनहाई में दिल की मौजूदगी पहली शर्त है। जब दिल की मौजूदगी होती है तभी इलाही तजरबा होता है।[108]

चिश्ती सिलसिले में तसव्वुर की अहमियत के बारे में सैयद रिज़वी ने लिखा है:

ज़िक्र के वक़्त मुरीद को ऐसा महसूस करना ज़रूरी है कि वह शैख़ की हुज़ूरी में है और शैख़ का तसव्वुर उसकी अगुआई कर रहा है।[109]

आवाज़े-हक़, आवाज़े-ख़ुदा

आवाज़े-हक़ ख़ुदा की वो आवाज़ है जिसे क़ुरान में 'कुन' (हो जा) कहा गया है। कुन से इस कायनात की रचना हुई है। ख़ुदा की इसी आवाज़ ने तड़पती रूहों को वापस बुलाने के लिए 'इरजिई'* का फ़रमान किया था। इससे ज़ाहिर है कि आवाज़े-ख़ुदा ख़ुदा की ताक़त है। ख़्वाजा साहिब भी अपनी ग़ज़ल में फ़रमाते हैं:

तेरी ज़ात है आयतें कुन फ़यकून की दलील,
आकाश से पाताल तक सब उसी ने पैदा किया। (57.7)

आवाज़े-ख़ुदा के बारे में मौलाना रूम लिखते हैं कि जिस तरह इसराफ़ील फ़रिश्ता क़यामत के रोज़ बिगुल बजा कर मुर्दों को कब्र से जगाता है उसी तरह आवाज़े-ख़ुदा इस फ़ानी जिस्म में सोई रूह को बेदार (सचेत) करती है। ख़्वाजा साहिब भी यही ख़्याल दोहराते हैं:

उड़े पिंजरे से रिहा होकर मोईन बुलबुले-क़ुद्स,
जब समाए ज़ेहन में ये ख़्वाहिश आलमे-ग़ैब से। (7.16)

---

* इरजिई=वापस आ जा

ग़ैबी आवाज़ सुन कर ही यह रूह इस फ़ानी जिस्म के पिंजरे को तोड़ कर इस दुनिया से आज़ाद होती है।

सूफ़ी इसे कलामे-अल्लाह या कलामे-हक़ भी कहते हैं। यह ख़ुदा की ताक़त है, उसकी शक्ति है। क़ुरान मजीद में इसे कुन या कलमा कहा है; यह सबसे ऊँचा और बड़ा है।[110]

इस्लामी परंपरा के अनुसार क़ुरान मजीद में दिए अल्लाह तआला के 99 नामों की बहुत अहमियत है, क्योंकि इन नामों का ज़िक्र करने से ख़ुदा की रहमत और बख़्शिश हासिल होती है। इसमें कोई शक नहीं कि कुछ चिश्ती सूफ़ियों और हज़रत सैयद जलाल-उल-दीन बुख़ारी ने भी इन 99 नामों में से कुछ नामों को रूहानी शग़ल में ज़िक्र का आधार बनाया। लेकिन सूफ़ियों का मानना है कि ख़ुदा का सच्चा नाम लफ़्ज़ों से परे है, यह ख़ुदा की ताक़त है। इसे आप इस्मे-आज़म कहते हैं। इस्लाम में इस्मे-आज़म को लेकर विद्वानों और मज़हबी रहनुमाओं ने अलग-अलग सोच ज़ाहिर की है। सूफ़ियों का मानना है कि ख़ुदा के इस बे हरफ़ (बिना लफ़्ज़ों) कलाम को पकड़ने से ही रूह को निजात मिल सकती है।

मौलाना रूम मसनवी में लिखते हैं:

या ख़ुदा! मेरी रूह को वो मक़ाम दिखा दे, जहाँ हरफ़ के बग़ैर
कलाम गढ़ा जा रहा है।[111]

मैं लफ़्ज़, आवाज़ और बोली को मिटाना चाहता हूँ ताकि इन
तीनों के बिना तेरे साथ बात कर सकूँ।[112]

मसनवी में ही एक और जगह आप बड़े ख़ूबसूरत लफ़्ज़ों में इस सवाल का जवाब देते हैं:

इस्मे आज़म हस्त अल्ला अल्ल-अज़ीम
जाने-जाँ ओ मुहईऐ अज़्मे रमीम।[113]

कि अल्लाह अल-अज़ीम ही इस्मे-आज़म है। जो रूह की रूह है, और मुर्दा हड्डी को ज़िंदा करती है।

आगे फ़रमाते हैं, इस्मे-आज़म ही मेरा सच्चा दोस्त है; ख़ुदा से नज़दीकी हासिल करने का सही तरीक़ा है:

अल्ला अल्ला इस्मे-ज़ाते पाक दूस्त,
इस्मे आज़म अज़ बराए क़ुर्बे-अस्त।[114]

मौलाना रूम कहते हैं कि लफ़्ज़ी कलाम को छोड़कर कलाम से नंगा हो और फिर बिला लफ़्ज़ के कलाम को हासिल कर:

बरहना शौ हरफ़ ओ आशना कुन।
ब बहर यर्फ़ बे गुफ़्तार अजीं सू।[115]

क़ादिरी सिलसिले के सूफ़ी हज़रत सुलतान बाहू अपने कलाम में लिखने, पढ़ने वाला कलमा और दिल का कलमा यानी कलामे-इलाही (इस्मे-आज़म) में फ़र्क़ बताते हुए लिखते हैं:

ज़े-ज़बानी हर कोई पढ़दा, दिल दा कलमा कोई हू।
जित्थे कलमा दिल दा पढ़िये, मिले ज़बां न ढोई हू।[116]

आशिक़ पढ़न नमाज़ पिरम दी, जैं विच हरफ़ न कोई हू।...
जीभ न हिल्ले, होठ न फड़कण, ख़ास नमाज़ी सोई हू।[117]

करदे वुज़ू इस्म आज़म दा, दरिया वहदत न्हाते हू।[118]

ज़ुबान से कलमा तो हर कोई पढ़ता है, लेकिन दिल का कलमा कोई विरला ही पढ़ता है। वो विरले आशिक़ ही हैं जो इश्क़ की नमाज़ पढ़ते हैं जिसमें लफ़्ज़ों का कोई काम नहीं। वे वहदत के समंदर में कलमे से वुज़ू करके मन की मैल धोकर अपने आप को पाक कर लेते हैं।

ख़्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती ने भी इसी ख़्याल को दोहराया है:

इस्मे-अल्लाह के जमाल ने मेरे जानो-दिल को छीन लिया,
नामे-ख़ुदा की शीरीं ने प्यासे लबों को सेराब किया। (1.1)

ख़ुदा का नाम ख़ुदा से जुदा नहीं ज़रा भी,
ख़ुदा के नामों के नूर में नामे-इलाही का कमाल देख।

यक़ीन कर कि दिन-रात हक़ के साथ है तू,
गर हमनशीं है तेरे ख़्याल में नाम उसका।

है मुबारक गर भरे उड़ान तू ऊँचे मंडलों की,
उड़े जो साथ ले के तू बुलंद नाम उसका। (1.3-5)

यह ग़ज़ल ख़्वाजा साहिब के कलाम का ताज है। आप समझा रहे हैं कि ख़ुदा में और ख़ुदा के नाम में कोई फ़र्क़ नहीं। अगर ख़ुदा से विसाल हासिल करना चाहते हो तो नाम से विसाल हासिल करो। ख़ुदा की सब सिफ़तें ख़ुदा के नाम में समाई हैं। अगर तेरा ख़्याल दिन-रात ख़ुदा के नाम के साथ जुड़ा है तो समझ ले कि तेरा ख़्याल ख़ुदा में लीन है। आप आगे कहते हैं कि अगर मुझे ख़ुदा का नाम सुनाई देने लग जाए तो मैं एक बार नहीं, हज़ार बार ख़ुद को ख़ुदा पर क़ुर्बान कर दूँ।

फिर आप एक और जगह कहते हैं कि यह नाम न तो इन कानों से सुना जा सकता है न ही इस ज़ुबाँ से बोला जा सकता है:

क़ुरान में है तूने कहा कि इस जहाँ में मैं बेज़ुबाँ करता हूँ बात,
बग़ैर कान सुनता हूँ,
फिर सुनता बोलता है जो कान और ज़ुबाँ से, वो कौन है। (116.6)

कलमा सुनने की ताकीद करते हुए ख़्वाजा साहिब के मुरीद हज़रत बख़्तियार काकी के लफ़्ज़ हैं:

किसी ऐसी जगह जंगल या मकान में जहाँ किसी आदमी का गुज़र न हो, रात या दिन को पैरों के भार बैठ कर दोनों उँगलियों के पोरों से दोनों कान बंद करो तो कानों में आवाज़ आएगी जो पानी के गिरने जैसी होगी। जिस वक़्त यह आवाज़ आने लगे उसको पूरी तवज्जोह से सुनो। यह आवाज़ धीरे-धीरे इतनी बुलंद हो जाएगी कि बाज़ार में भी यह सुनाई देने लगेगी। इस शग़ल (अभ्यास) को अपने पीरो-मुर्शिद की पैरवी में करना चाहिए।[119]

मौलाना शैख़ मुहम्मद साबिरी लिखते हैं:

हज़रत मुहम्मद कई साल तक ग़ारे-हिरा (गुफा) में आवाज़े-मुस्तक़ीम (पक्की आवाज़)के शग़ल (अभ्यास) में लगे रहे।[120]

रूहानियत के नज़रिए से किसी भी साधक के लिए यह सबसे ज़रूरी तालीम है कि उसे अंतर में आवाज़ सुनने और नूर को देखने की कोशिश करनी चाहिए। ख़्वाजा साहिब ने अपने कलाम में आवाज़े-ख़ुदा को अलग-अलग नामों से पुकारा है। आपने इसे महबूब की सदा, आवाज़े-हक़, इश्क़ का नग़मा, नगाड़े की आवाज़, कभी बाँसुरी की धुन तो कभी तबले की सदा कहा है।

दिल पे मेरे आ रही महबूब की सदा आलमे-ग़ैब से,
पैग़ाम वस्ल का ला रही सदा आलमे-ग़ैब से। (7.1)

नग़मा इश्क़ का गूँजता है शाख़े-सिद्रा* से,
उस बुलबुल की तरह जो चहचहाती है आलमे-ग़ैब में। (7.15)

* शाख़े-सिद्रा=बेरी का पेड़ जो सातवें आसमान पर है जहाँ हज़रत मुहम्मद पहुँचे थे।

राज़े-इश्क़ की फिर बाँसुरी बजी इस दिल में,
दिलो-जाँ से नाता तेरी बाँसुरी से जोड़ा मैंने। (77.5)

आसमाँ से रोज़ आती है इश्क़ के तबले की गूँज,
क्या हुआ था, इक सुबह सुनी क्यों न तबले की सदा। (117.6)

आप समझा रहे हैं कि आलमे-ग़ैब से हमेशा आवाज़ उठ रही है जो रब के साथ विसाल के लिए अपनी ओर बुला रही है। आप दूसरे लफ़्ज़ों में इस तरह फ़रमाते हैं कि रूहानी मंज़िलों से इश्क़ का नग़मा गूँज रहा है। मक़ामे-हक़ से आ रहे इस नग़में को जब रूह रूपी बुलबुल सुनती है, तब वह इस शरीर की क़ैद से आज़ाद हो जाती है। आप फिर कहते हैं कि मेरे दिल में इश्क़ की बाँसुरी की धुन उठ रही है और मेरी रूह ने बाँसुरी की इस धुन से दिलो-जाँ से नाता जोड़ लिया है। एक और जगह आप कहते हैं कि आसमान से हमेशा इश्क़ के तबले की गूँज सुनाई देती है।

ख़ुदा की इस आवाज़ को बाहरी कानों से सुना नहीं जा सकता, इस ज़ुबान से बोला नहीं जा सकता। आवाज़े-हक़ को सुनने के लिए रूह के कान चाहिएँ। इसी ख़्याल को आपने अपने कलाम में अलग-अलग लफ़्ज़ों में ज़ाहिर किया है—कभी 'रूह के कान खोलने' को कहा है, कभी 'कान से रूई हटाने' की बात कही है तो कभी मुर्ग़े-जाँ के कानों से सुनने की बात की है:

बंद कर लबों को तू, कान रूह के खोल ले,
फिर परदाए-दिल में होती है क्या गुफ़्तगू देख। (88.5)

इश्क़ का नगाड़ा बजता है दो जहाँ में मेरा,
कान से हटा रूई और सुन उसकी सदा। (12.6)

बयाँ करता हूँ वहदत का राज़, यक़ीं गर तू नहीं करता,
खोल कान अपने और दिल की गहराई से सुन। (104.2)

ग़ैबी फ़रिश्ते ने मुर्ग़े-जाँ के कानों में कहा ख़ामोशी से,
गर इश्क़ है तो बुलंदियों पर बेपरों के आशिक़ पहुँच जाए। (30.5)

जब ग़ैबी आवाज़ कानों में सुनाई देती है तो रूह बिना परों के ही नूरानी मंज़िलों में उड़ान भरना शुरू कर देती है।

आप आगे ताकीद करते हैं कि अगर आलमे-ग़ैब से आ रही आवाज़ सुनाई न दे तो हज़रत मोहम्मद साहिब की तालीम पर चल, क्योंकि उन्होंने ग़ैबी धुन को सुनने की ही तालीम दी है:

सुन न पाए गर तू ग़ैब से आवाज़े-हक़,
नबी के लफ़्ज़ों को सुन, है सदा ये आलमे-ग़ैब से। (7.8)

हासिल नहीं होगी ख़ुदा से और ज़्यादा नज़दीकी,
गर करे न पैरवी पेशवाए* आलमे-ग़ैब की। (7.14)

फिर आप समझाते हैं कि रूहानी नज़ारों को देखने के लिए दिल की आँख होनी चाहिए। इन बाहरी आँखों से उसका नूर नहीं देखा जा सकता। आप अपने कलाम में जगह-जगह फ़रमाते हैं:

पाक चमन की सैर गर हो मंज़ूर तुझे,
तो दिल से देख नज़ारे आलमे-ग़ैब के। (7.2)

देखने को हुस्न उसका आँख दूजी† चाहिए,
सुनने को बोल उसके कान दूजा चाहिए। (85.1)

देख न इन फ़ानी आँखों से हुस्ने-रब ऐ दिल,
तू चश्मे-दिल से देख इक नज़र तो क्या हो। (25.4)

---

* पेशवाए=रहनुमा
† आँख दूजी=अंदर की आँख

मस्त होकर गर तू अपने दिल की आँख खोल दे,
यार का दीदार तू पहली नज़र में ही करे। (119.1)

गर नज़र को बंद करे दुनिया से, आँख दिल की खोले,
अपने यार की हस्ती रगे-जाँ में रवाँ देखे। (113.9)

ख़ुदा का दीदार इन फ़ानी, बाहरी आँखों से नहीं हो सकता। उसका नूर देखने के लिए रूह की आँख खोलने की ज़रूरत है। और एक बार जब रूह की आँख खुल गई तो तेरा रोम-रोम रब के नूर से भर जाएगा।

रूह के कान और आँख खोलने के लिए आप अपने कलाम में समझाते हैं:

ऐ अक़्ल निकल अब तू पाँच हवास* के फंदे से,
मेरा दिलदार इसी राहे-निहाँ† से आया है। (41.3)

जब तू दुनिया की हवस, पाँच इंद्रियों के विकारों यानी काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार के फंदे से बाहर निकलकर अपनी रूह को पाक करेगा फिर तुझे ख़ुदा का दीदार होगा।

अपनी एक और ग़ज़ल में रूहानी राज़ को समझने के लिए ग़ैबी आवाज़ सुनने की ताकीद करते हैं:

इधर आ, बात औ अदना की मेरी ज़ुबाँ से सुन,
राज़ है तू ख़ुद ख़ुदा का, मेरी ज़ुबाँ से यह राज़ सुन। (104.1)

औ अदना का मतलब है रब से और नज़दीकी। आप कहते हैं कि ख़ुदा से नज़दीकी हासिल करने का राज़ मैं तुझे बताता हूँ।

आप कहते हैं कि मैंने तुझे वहदत का जो राज़ बताया है, अगर उस पर यक़ीन नहीं तो अपने रूह के कान से ग़ैबी आवाज़ सुन, तब रूहानी राज़ समझ आ जाएँगे:

* हवास=पाँच इंद्रियाँ † राहे-निहाँ=अंदरूनी राह

बयाँ करता हूँ वहदत का राज़, यक़ीं गर तू नहीं करता,
खोल कान अपने और दिल की गहराई से सुन। (104.2)

हज़रत बू अली शाह क़लन्दर का कलाम है:

चश्म बंदो गोश बंदो लब बबंद।
गर न बीनी सिर्रे-हक़्क़ बर मन बख़ंद।[121]

यानी तू आँखें बंद कर ले, होंठ बंद कर ले और कान बंद कर ले। अगर फिर भी ख़ुदा का राज़ न मिले तो मुझ पर हँस लेना।

मरने से पहले मरना

हदीस में हज़रत मुहम्मद साहिब की तालीम दर्ज है: *मूतू क़ब्ल अन तमूतू* यानी मरने से पहले मरो।

मौलाना रूम इसी अमल को दोहराते हुए लिखते हैं: ऐ दोस्त मरने से पहले मरने में ही सुकून है, मुस्तफ़ा (हज़रत मुहम्मद साहिब) ने हमें यही फ़रमान दिया है:

मर्ग पेश अज़ मर्ग, अमन अस्त ऐ फ़ता ईं चुनी फ़रमूदा मारा मुस्तफ़ा।[122]

यह ऐसी मौत नहीं कि इनसान जीते-जी क़ब्र में चला जाएगा, बल्कि ऐसी मौत है जिससे अँधेरे से रौशनी में आ जाएगा।[123]

हदीस का हवाला देते हुए ख़्वाजा साहिब के लफ़्ज़ हैं कि ज़िक्रे-ख़फ़ी (रूह से किया गया अंदरूनी ज़िक्र) तर्के-वुजूद कर देता है यानी रूह को इस फ़ानी हस्ती से अलग कर देता है।[124] इसलिए आप कहतें हैं कि आवाज़े-हक़ को सुनने के लिए, ख़ुदा से विसाल के लिए इस शरीर से बाहर निकलना यानी जीते-जी मरना ज़रूरी है:

मुर्ग़े-जाँ को जब सदा आई कि आ तू लौट आ,
तो उसे पिंजरे को तोड़ परवाज़ करना चाहिए। (85.3)

वस्ल की आरज़ू है गर रगो-जाँ* को तेरी,
तो जिस्म के ख़िरक़े को फाड़ देना चाहिए। (85.2)

इस उम्मीद पर कि दोस्त का दामन मेरे हाथ थाम लें,
लाश अपनी क़ब्र में छुपानी चाहिए। (85.5)

जिस्म गर है मिट्टी, इसको ख़ाक होना चाहिए,
रूह है आसमानी तो उसे आसमाँ में रहना चाहिए। (98.1)

आबो-गिल से गुज़र, चल दिलो-जाँ के महल की ओर तू,
देख क़रीब कितना है तू अल्लाह के असरार† से। (107.5)

ख़्वाजा साहिब ने अपने कलाम में 'जिस्म के ख़िरक़े को फाड़ देना चाहिए', 'लाश को क़ब्र में छुपा देना चाहिए'; 'इस पिंजरे को तोड़ कर परवाज़ करना चाहिए', 'पाँव से जूता अलग कर' ऐसे कई लफ़्ज़ों का इस्तेमाल किया है। आप यह ख़्याल पक्का करवा रहे हैं कि एक तो अपनी हस्ती को फ़ना करना पड़ता है यानी अपने जिस्मानी वुजूद की अहमियत को ख़त्म करना ज़रूरी है और फिर रूहानी अभ्यास के दौरान जब रूह ऊपर उठने लगती है, जिस्म जीते-जी मुर्दे की तरह होने लगता है तब रूह की अंदर की आँख और अंदर के कान खुलने लगते हैं और रूह रूहानी बुलंदी की तरफ़ बढ़ती है। फिर पता चलता है कि रूह ख़ुदा के कितनी करीब है।

आप फ़रमाते हैं:

पाँव से जूता अलग कर‡ अर्श की ओर हो रवाँ,
उस जगह जिसका कोई मक़ाम नहीं, बेजान होकर हो जा रवाँ। (105.1)

क़ादिरी सिलसिले के हज़रत सुलतान बाहू का भी यही कहना है कि जो लोग हक़ीक़त की रम्ज़ को समझते हैं वे जीते-जी मर जाते हैं—मरन थीं

* रगो-जाँ=जाँ की रग-रग

† असरार=राज़ ‡ पाँव...कर=अपनी हौंमैं को फ़ना कर दे

अग्गे मर रहे, जिन्हां हक़ दी रमज़ पछाती हू।[125]; असली फ़क़ीर वही है जो जीते-जी मरता है—*नाम फ़क़ीर तदां ही सोह्न्दा, जद जीवंदयां मर जावे हू।*[126]

साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि जीते-जी मर कर ही इनसान लाफ़ानी ज़िंदगी हासिल करता है:

मूतू क़ब्ल अन तमूतू होया, मोया नूं फेर जवाली ओ यार।
बुल्ला शौह मेरे घर आया, कर कर नाच वखाली ओ यार॥[127]

एक और जगह आपने यही ख़्याल फ़रमाया है:

बुल्लया हिजरत विच इसलाम दे, मेरा नित्त है ख़ास मुक़ाम।
नित्त नित्त मरां ते नित्त नित्त जीवां, मेरा नित्त नित्त कूच मुक़ाम।[128]

हज़रत मुहम्मद साहिब का मक्का से मदीना चले जाने को हिजरत का नाम दिया गया है। साईं बुल्लेशाह ने इस अमल को सूफ़ियाना अंदाज़ में बयान करते हुए कहा है: मैं हर रोज़ मरता हूँ और हर रोज़ ज़िंदा होता हूँ। इस अमल से मैं हर रोज़ कसरत से हिजरत करके वहदत में दाख़िल होता हूँ। यही इस्लाम में दाख़िल होना है।

अंदरूनी रूहानी सफ़र

क़ुरान में हज़रत मुहम्मद साहिब का बुराक़ पर चढ़ कर अंदरूनी आसमान में सफ़र करने का हाल दर्ज है जिसे अल-मेराज या अल-इसरा कहा गया है। मुहम्मद साहिब की रूहानी ज़िंदगी में इस घटना की बहुत अहमियत है। ऐसा माना जाता है कि आप चाँदी जैसे सफ़ेद घोड़े (बुराक़) पर सवार होकर आंतरिक आकाशों को पार कर गए।[129]

सूफ़ी दरवेशों, पीर-पैग़ंबरों को रूहानी मंज़िलों का हाल बयान करने के लिए तश्बीह देनी पड़ती है, क्योंकि इन्हें बयान करने के लिए न तो इस दुनिया में उनकी बराबरी की कोई चीज़ है और न ही लफ़्ज़ हैं। सूफ़ी बुराक़ को ख़ुदा की वो ताक़त मानते हैं जो रूह को तेज़ी से ऊपर खींचती है मानो जैसे कोई घोड़े पर सवार हो।

ख़्वाजा साहिब ने भी मुहम्मद साहिब की तरह अपने रूहानी तजरबे का हाल अपने कलाम की 80वीं ग़ज़ल में दर्ज किया है:

अहमद की तरह वस्ल के लिए मेराज की रात को,*
मस्जिद अल-हराम† से मस्जिदे-अक़्सा‡ तक जाऊँ मैं।
ज़मीं से सिद्रा§ तक, सिद्रा से आगे अर्श¶ तक,
बिजली की तरह बुराक़ पर जाऊँ मैं।
आसमानों से गुज़र कर इस कायनात और इससे परे जाऊँ मैं,
*फिर दना से आगे तदल्ला** की तरफ़ जाऊँ मैं।*
क़ाब क़ौसैन†† और औ अदना‡‡ भी हैं इक परदा,
इन परदों के बग़ैर उस बारगाहे-हुस्न§§ में जाऊँ मैं।
यह नहीं मालूम कि इस गहरे समंदर में,
जा रहा हूँ, या खड़ा हूँ या यहाँ बैठा हूँ मैं। (80)

मुहम्मद साहिब की तरह आपकी रूह भी अंतर में आसमानों का रुख़ क़ायम करती हुई मस्जिद अल-हराम से मस्जिद-अक़्सा तक जाती है। आप इशारा करते हैं कि रूह बुराक़ पर सवार होकर सातवें आसमान तक पहुँचती है और फिर उससे आगे की चढ़ाई शुरू करती है। आपने अंदरूनी रूहानी पड़ावों—दना, तदल्ला का भी ज़िक्र किया है।

---

* **मेराज**=मुहम्मद साहिब का आसमान को पार करके अल्लाह का दीदार करना।
† **मस्जिद अल-हराम**=काबा
‡ **मस्जिदे-अक़्सा**=वो मस्जिद जो सबसे दूर है।
§ **ज़मीं से सिद्रा**=इस ज़मीन से सातवें आसमान पर जहाँ बेरी का पेड़ है।
¶ **अर्श**=नौवाँ आसमान जो सबसे ऊँचा रूहानी मंडल है।
** **दना...तदल्ला**=अंदरूनी रूहानी पड़ाव
†† **क़ाब क़ौसैन**=ऐसा माना जाता है कि पैग़ंबर मुहम्मद साहिब ने दो कमान की दूरी पर ख़ुदा के नूर को देखा था।
‡‡ **औ अदना**=ख़ुदा से और नज़दीकी §§ **बारगाहे-हुस्न**=ख़ुदा के दरबार में

दुनिया के सब कामिल पीरों, दरवेशों की तरह हज़रत ग़रीब नवाज़ की तालीम का भी यही सार है कि इनसानी ज़िंदगी का असल मक़सद दिल को फ़ानी दुनिया की मोहब्बत से पाक करके, इसके अंदर लाफ़ानी ख़ुदा का सच्चा इश्क़ पैदा करना है। यह सच्चा इश्क़ ख़ुदा की इबादत या बंदगी के रूप में ज़ाहिर होना चाहिए जिसकी तरक़ीब कामिल मुर्शिद समझाता है। जब मुरीद मुशिर्द की रहनुमाई में रूह को आवाज़े-हक़ से जोड़ता है तो उसकी रूह कायनात से छुटकारा हासिल करके क़ादिर की हज़ूरी में पहुँच जाती है। यह कसरत (द्वैत) से वहदत (अद्वैत) में पहुँच जाती है। कायनात के सृजन के वक़्त ख़ुदा से जुदा हुआ रूह रूपी क़तरा वापस ख़ुदा रूपी समंदर में समा जाता है। रूह को फ़ानी दुनिया से निजात मिल जाती है और वह वापस मक़ामे-हक़ में पहुँच जाती है।

कलाम

मोईन दिल की जलन गर चाहे कुछ लिखना,
क़लम से मेरी दिल की आग का धुआँ ही निकलता है।

ख़्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती का मूल कलाम फ़ारसी भाषा में है। यह कलाम 122 ग़ज़लों के रूप में है। आपके कलाम में दो तरह की ग़ज़लों की झलक मिलती है। एक ऐसी जिसमें शुरू से आख़िर तक एक ही भाव चलता है, उसे 'ग़ज़ले-मुसल्सल' कहते हैं। दूसरी ऐसी ग़ज़लें जिनमें हर शेअर या हर दो तीन शेअरों के बाद भाव बदल जाता है। कुछेक ग़ज़लों को छोड़ कर अन्य सभी ग़ज़लों का हिंदी अनुवाद इस पुस्तक में शामिल किया गया है।

ग़ज़ल

(1)

इस ग़ज़ल में ख़्वाजा साहिब ने फ़रमाया है कि ख़ुदा के नाम और ख़ुदा में कोई फ़र्क़ नहीं। अगर तेरे ध्यान में हरदम ख़ुदा का नाम है तो यक़ीन कर कि तू हमेशा उसके साथ है। इसी नाम के सहारे तू रूहानी बुलंदी पर पहुँच सकता है।

इस्मे-अल्लाह के जमाल ने मेरे जानो-दिल को छीन लिया,
नामे-ख़ुदा की शीरीं ने प्यासे लबों को सेराब किया। 1

विसाले-ख़ुदा गर तू चाहे, कर ज़िक्र उसका हरदम,
विसाले-हक़ होगा गर हो विसाले नामे-ख़ुदा। 2

ख़ुदा का नाम ख़ुदा से जुदा नहीं ज़रा भी,
ख़ुदा के नामों के नूर में नामे-इलाही का कमाल देख। 3

यक़ीन कर कि दिन-रात हक़ के साथ है तू,
गर हमनशीं है तेरे ख़्याल में नाम उसका। 4

तेरे ही लायक है उड़ान ऊँचे मंडलों से परे,
उड़े जो तू नामे-ख़ुदा के परों के साथ। 5

नाम उसका जो सुनूँ गर सौ जान हों मेरी,
निसार उस पे, है ऐसा शोहरत भरा नाम उसका। 6

ख़ुदा के नाम से मोईन कैसे मायूस है,
ख़ुदा के नाम से मायूसी ही तो है मलाल उसका। 7

(2)

बंदा ख़ुदा से शिकवा करता है कि ऐ ख़ुदा मैं तुझे हर दिशा, हर कोने में ढूँढ़ रहा हूँ, मैं कब तक तेरी तलाश करूँ? ख़ुदा जवाब देता है कि मैं तो हमेशा तेरे साथ हूँ। तेरी हस्ती ही हमारे बीच का परदा है। तू अपनी हस्ती को फ़ना करके अपने दिल में ढूँढ़, वहीं तुझे दीदार होगा।

ढूँढ़ता हूँ मैं तुझे और तू है मुझसे दूर-दूर,
देखता हूँ जब तुझे, तू चेहरे को लेता है छुपा।1

हर दिशा हर कोने में ढूँढ़ रहा हूँ तुझको,
रखेगा कब तक मुझे अपनी जुस्तजू* में यह बता।2

तू जहाँ भी हो मैं तेरे साथ हूँ ओ बेख़बर,
मैं फिर भी तेरे साथ हूँ गर तू मेरे साथ नहीं।3

बादल तू है, मैं समंदर, ग़म न कर अपने भारी बोझ का,
अश्क गर बरसाए तू, खिल जाए बाग़ तेरा।4

महबूब से मैंने पूछा परदे में कब तक रहेगा तू छुपा,
वक़्त वो आया कि छुप सकता नहीं चेहरा तेरा।5

बोला बेपरदा हूँ मैं, परदा गर है तो तेरा ही,
वजह बना है सब परदों का वुजूद अपना ही तेरा।6

गर हक़ीक़त में तू है सामने, हर जगह मौजूद तू,
फिर यहाँ वहाँ के मायने क्या?
बेहतर है मेरी फ़ानी हस्ती को ख़ुद में ले मिला।7

कहते हैं आईनाए-चिश्ती में ज़ाहिर है मोईन,
क्या कहूँ मैं, तू ही बेहतर जानता है ऐ ख़ुदा।8

* **जुस्तजू**=तलाश

(3)

दरवेशों की सोहबत से ही ज़िंदगी के मक़सद का पता चलता है, और लाफ़ानी ज़िंदगी का लुत्फ़ तो ख़ुदा के इश्क़ में डूबने पर मिलता है। आप नसीहत देते हैं कि ख़ुदा को ढूँढ़ने के लिए दर-बदर भटकने की ज़रूरत नहीं। इसके लिए ज़रूरी है अपनी हस्ती को फ़ना करना, ख़ुदी को ख़त्म करना ताकि ख़ुदा का जमाल इसी इनसानी जामे में नज़र आ जाए।

ऐ दिल तू कभी तो रिंदों* की महफ़िल में आ,
पाए तू भी सुरूर लाफ़ानी ज़िंदगी† की मय का।1

तू आ के डाल दे दोनों जहाँ को हैरत में,
है कायनात जो सब दाव पे दे लगा।2

फ़ना‡ हो पहले गर तलब है बक़ा§ की तुझे,
फ़ना न हो जब तक तू, मिले न राह का पता।3

शहंशाह के हाथों से उड़ा है तू ऐ बाज़,
सिवाय शाही महल के, तू किसी ओर उड़ान न भरना।4

जो इस ख़ाकी वुजूद¶ के अँधेरे से गुज़रे,
अपनी पस्ती** से जा पहुँचे मक़ामे-बुलंद पर।5

बुराक़े††-इश्क़ गया सौ क़दम तेरी ही ख़ातिर,
हरज क्या गर इक क़दम तू भी बढ़ा।6

तलाशे-यार में क्यों दर-बदर भटकता है,
तू देख अपने आप को, ख़ुद ही है तू अस्मा‡‡ का नज़ारा।7

* **रिंदों**=भाव इश्क़ के मतवाले आशिक़ † **लाफ़ानी ज़िंदगी**=अमर जीवन
‡ **फ़ना**=अपनी हस्ती मिटाना § **बक़ा**=सदा रहने वाला, अनश्वर
¶ **ख़ाकी वुजूद**=नश्वर शरीर ** **पस्ती**=निचला दर्जा
†† **बुराक़े**=काल्पनिक घोड़ा जिस पर चढ़ कर मुहम्मद साहिब ने आंतरिक मंडलों की यात्रा की थी। ‡‡ **अस्मा**=ख़ुदा के सिफ़ाती नाम

यह न देख कि तू ख़ाकी है और ख़ाक है अँधेरा,
देख, तू ही तो है आईनाए-जमाल ख़ुदा का। 8

इश्क़ के बादल जो बरसाएँ मोहब्बत की बरसात,
तो हैरत क्या गर खिल जाएँ गुल ख़ाक में सदहा*। 9

नक़ाबे-हस्ती† को तू अपने दरम्याँ से हटा,
तो देख होता है कैसे हुस्नो-जमाल फिर पैदा। 10

गर साने-इश्क़‡ से अपने जिस्म को साफ़ करे,
तो देखे आईनाए-जाँ§ में नूर मौला का। 11

तू फ़िक्र कर कि तेरी आँख का ग़ुबार हो दूर,
कि हो जाए ज़ाहिर तुझे नूर ख़ुदा का। 12

गर तू चाहे देखना नूर का जलवा,
मोईन अपने हसीन वजूद से नक़ाबे-हस्ती तो उठा। 13

---

* **सदहा**=हज़ारों † **नक़ाबे-हस्ती**=ख़ुदी का परदा

‡ **साने-इश्क़**=इश्क़ की सान (सान का अर्थ वह पत्थर जिस पर छुरी या चाकू रगड़ कर ज़ंग साफ़ किया जाता है और खान से निकले पत्थर को घिस कर नगीना बनाया जाता है।)

§ **आईनाए-जाँ**=अपनी रूह के आईने में

(4)

ख़ुदा बंदे से कहता है कि अगर तू एक-एक करके क़दम भी मेरी ओर बढ़ाएगा तो मेरी बारगाह में पहुँच जाएगा। इस राह पर जो हिम्मत से आगे बढ़ता है उसी को ऊँचा रुतबा हासिल होता है, वही ख़ुदा से विसाल हासिल करता है। जो ख़ुदी को ख़त्म करता है, ख़ुदा का नूर उसी पर ज़ाहिर होता है। ख़ुदा का जलवा ग़ाफ़िल दिल पर नहीं, बल्कि आगाह दिल पर ज़ाहिर होता है।

रुतबा हो उसका ऊँचा जो चले इक क़दम मेरी राह पर,
पाए राह मेरी इश्रतगाह* की आख़िर। 1

ख़ाक उसके क़दमों की रखता है आफ़ताब† अपने रुख़ पर,
गर्द मेरी दरगाह की पड़ जाए जिस रुख़ पर। 2

घोड़ा अपनी हिम्मत का दौड़ाए जो नौ फ़लक पर,
चूमता है शहंशाह की सेज वो झुक कर। 3

राहे-इश्क़ पर चलने वालों का कुछ तो पता बता मुझको,
शायद मेरा गुमराह दिल आ जाए हक़ की राह पर। 4

परदाए-हस्ती‡ गर जला दे तू ला-इलाह की आग से,
तो बेहिजाब§ नूर इल्लल्लाह का उसी दम हो जाए ज़ाहिर। 5।

ख़्वाहिश है दिल की, कि जान दे दे ख़ुदा की याद में,
पूरी हो आरज़ू मिले आक़बत की राह का तोशा आख़िर¶। 6

कब चमकती है दिले-ग़ाफ़िल पे मेहर यार की,
कि दिले-आगाह पर ही होता है ज़ाहिर उसका नूर। 7

---

* **इश्रतगाह**=रंगमहल, जन्नत, स्वर्ग † **आफ़ताब**=सूरज

‡ **परदाए-हस्ती**=ख़ुदी का परदा § **बेहिजाब**=बिना परदे के

¶ **आक़बत...आख़िर**=परलोक के सफ़र के लिए साथ ले जाने वाला सामान।

डरता हूँ कहीं जल न जाएँ बालो-पर* फ़रिश्तों के,
गर जा पहुँचें शोले मेरी आहों के आसमानों पर।8

नूर उसका न देख इस फ़ानी बदन में तू ऐ मोईन,
कि देख आलमे-जाँ† में, है रौशन जिसमें मेरा जलवाए-नूर।9

* **बालो-पर**=बाल और पंख † **आलमे-जाँ**=रूह

(5)

ख़्वाजा साहिब ख़बरदार करते हैं कि ख़ुदा के दीदार के लिए अपने ग़ुरूर को ख़त्म करना ज़रूरी है, क्योंकि यहाँ अक़्ल और चालाकी काम नहीं आती। इसके लिए ख़ुदा के इश्क़ की आग में जलना पड़ता है, दीवानगी की हद तक पहुँचना पड़ता है।

उठा दे गर तू दिल से नक़ाब अपने दावे* का,
तो देखे आईनाए-दिल में जमाल† मौला का।1

तोड़ दे शीशाए-ग़ुरूर लानत के पत्थरों से,
बहा दे इश्क़ की गली में ग़ुरूर हस्ती का।2

आठों जन्नत तो एक कोना है मेरे नूरी चमन का,
मैं आधा जौ भी न खाऊँ हक़ीर‡ दुनिया के खेत का।3

क़सम है ख़ुदा की दो जहान न देखूँ एक नज़र,
जब तक न देखूँ जमाल मौला का।4

दीवाना हूँ उस दरख़्त के पत्ते-पत्ते का,
ज़ाहिर किया जिसने मूसा पे राज़ मौला का।5

जला हूँ इश्क़ में उसके तो इसमें हैरत क्या,
सह न पाया कोह§ भी नूर उसके जलवे का।6

जमाले-यार नज़र आए न अक़्ल की आँख से,
मोईन मजनूँ की नज़र से देख हुस्न लैला का।7

* **दावे**=यानी ख़ुदी का † **जमाल**=नूर ‡ **हक़ीर**=तुच्छ
§ **कोह**=पहाड़। यहाँ इशारा कोहे-तूर की ओर है जहाँ मूसा को ख़ुदा ने अपना जलवा दिखाया था। उसकी तजल्ली (नूर) से कोह (पहाड़) टुकड़े-टुकड़े हो गया था।

(6)

ख़ुदा के नूर की तश्बीह दुनिया की किसी चीज़ से नहीं की जा सकती। चाँद, सूरज की रौशनी तो उस नूर के आगे न के बराबर है। ख़ुदा ने अपने नूर से पैग़ंबर साहिब को नवाज़ा था जिसकी वजह से उन्होंने रूहानी सफ़र तय किया। यह रब्बी राज़ कोई धार्मिक किताब भी बयान नहीं कर सकती। ख़्वाजा साहिब कहते हैं कि अपने जुर्मों और ख़ताओं के बावजूद मैं ख़ुदा से रहमत की उम्मीद करता हूँ कि वो मुझे अपने से कभी जुदा न करे।

तेरे रुख़ के सामने शर्म से है पानी-पानी आफ़ताब*,
तेरे चेहरे की चमक से चाँद ने डाली है निक़ाब। 1

तेरे क़दमों की ख़ाक से पाया है फ़ख़्र आफ़ताब ने,
तभी तो ताने हुए है सुनहरी ख़ेमा जनाब। 2

नूर चेहरे का तेरा चमके गर आसमानों पे,
मुँह छुपा ले शर्म से आफ़ताब पहन कर निक़ाब। 3

सर से पाँव तक नवाज़ा† है नबी को नूरे-हक़ से तूने,
कि चाँद को जैसे करता है रौशन हरदम आफ़ताब। 4

फ़लक‡ के सफ़ेद घोड़े पर लगी है शानदार लगाम,
कि मेराज की रात उसने पहनी थी पाँव में रिकाब§। 5

राज़ ऊँचा वहाँ का ज़िबराइल पर भी न खुला,
यह राज़ है ख़ासो-ख़ास, न कर पाया ज़ाहिर पाक-किताब¶। 6

पहुँचा मक़ामे-वस्ल मिला अल्लाह का साथ,
हुआ विसाल ऐसा जैसे किरणों से कभी होता नहीं जुदा आफ़ताब। 7

---

* **आफ़ताब**=सूरज † **नवाज़ा**=रहमत की ‡ **फ़लक**=आसमान
§ **रिकाब**=घोड़े की काठी का पायदान
¶ **पाक-किताब**=क़ुरान शरीफ़

अल्लाह के दीदार के लिए मुहम्मद सी आँख चाहिए,
जन्नत में तो ऐसे जलवों का होगा न कोई शुमार। 8

रसूले-अल्लाह* से सिफ़ारिश की मैं रखता हूँ उम्मीद,
बावजूद इसके कि मेरे जुर्मो-ख़ताओं का नहीं कोई हिसाब। 9

क़यामत के दिन गुनहगारों के वास्ते होगी सज़ा,
आग दोज़ख़† की भड़क उठेगी देने को अज़ाब‡। 10

ज़ेहन में मेरे कभी उठी नहीं बहिश्त की ख़्वाहिश,
रहमो-करम की उम्मीद तुझसे है रोज़े-अज़ाब§। 11

जो भी चाहे कर मोईन के साथ ओ दरियाए-रहमत,
न कर बारगाह से अपनी जुदा कभी तू ऐ रब। 12

---

* **रसूले-अल्लाह**=पैग़ंबर हज़रत मुहम्मद † **दोज़ख़**=नरक
‡ **अज़ाब**=दुःख, दर्द § **रोज़े-अज़ाब**=क़यामत के दिन

(7)

इस ग़ज़ल में ख़्वाजा साहिब रूहानी मंडलों से आ रहे इश्क़ के नग़मे को सुनने की ताकीद कर रहे हैं। इसको सुनने, यार का नूर देखने के लिए और ख़ुदा से नज़दीकी हासिल करने के लिए, मुर्शिद की रहनुमाई की ज़रूरत है, दिल की पाकीज़गी ज़रूरी है। दिल की गर्द को इश्क़ से साफ़ करके ही उस नग़मे को सुना जा सकता है। जब रूह रूपी बुलबुल उस नग़मे को सुनती है तो इस फ़ानी-जिस्म से हमेशा के लिए आज़ाद हो जाती है।

दिल पे मेरे आ रही महबूब की सदा* आलमे-ग़ैब† से,
पैग़ाम वस्ल‡ का ला रही सदा आलमे-ग़ैब से।1

पाक चमन की सैर गर हो मंज़ूर तुझे,
तो दिल से देख नज़ारे आलमे-ग़ैब के।2

जो हिज्रे-यार§ में वहदत के समंदर में तैरता है,
उसी की होती है जाँ आश्ना¶ आलमे-ग़ैब से।3

ऐ दिल गर चमकता है तू नूरे-हुस्न से,
साफ़ है कि दो जहाँ रौशन हैं आलमे-ग़ैब के नूर से।4

हिजाबे-ख़ाक** से हट कर जमाले-यार देख,
नूर मौला का है आ रहा आलमे-ग़ैब से।5

ख़ुदा की बारगाह की राह हमेशा दिखा रहे हैं तुझे,
मुहम्मदे-अरबी बन के रहनुमा आलमे-ग़ैब से।6

रूह को तू रूहे-क़ुद्स से पाक कर ले††,
भर जाए तू ख़ुशबू से आ रही जो आलमे-ग़ैब से।7

---

* **सदा**=धुन, आवाज़ † **आलमे-ग़ैब**=रूहानी मंडल ‡ **वस्ल**=मिलाप
§ **हिज्रे-यार**=यार की जुदाई में ¶ **आश्ना**=वाक़िफ़ ** **हिजाबे-ख़ाक**=नश्वर शरीर का परदा †† **रूह...ले**=भाव अपनी रूह को कलमे से पवित्र करना

सुन न पाए गर तू ग़ैब से आवाज़े-हक़,
नबी के लफ़्ज़ों को सुन, है सदा ये आलमे-ग़ैब से।8

चल कर ज़मीं से पहुँचे हक़ की बुलंदी पर गर तू,
झूम उठे फ़िज़ा आलमे-ग़ैब की।9

ज़िबराइल-इसराफ़ील* के परो-बाल पर होना सवार तू,
कि मिलेगा मक़ामे-तनहाई आलमे-ग़ैब में।10

कहा यह ज़िबराइल ने नदीमे-शाही† से,
कि मुहम्मद की तारीफ़ है आलमे-ग़ैब की तारीफ़।11

देखा मुहम्मद को तो यक़ीं उनको भी आ गया,
क़ुरान भी तारीफ़ करता है आपकी आलमे-ग़ैब से।12

अगर दिल के गर्द को साफ़ करे मोहब्बत से,
देख ले दिल में ही जलवाए-हुस्न आलमे-ग़ैब से।13

हासिल नहीं होगी ख़ुदा से और ज़्यादा नज़दीकी,
गर करे न पैरवी पेशवाए‡ आलमे-ग़ैब की।14

नग़मा इश्क़ का गूँजता है शाख़े-सिद्रा§ से,
उस बुलबुल की तरह जो चहचहाती है आलमे-ग़ैब में।15

उड़े पिंजरे से रिहा होकर मोईन बुलबुले-क़ुद्स¶,
जब समाए ज़ेहन में ये ख़्वाहिश आलमे-ग़ैब से।16

---

* **ज़िबराइल-इसराफ़ील**=दो फ़रिश्तों के नाम। ज़िबराइल पैग़ंबरों के पास ख़ुदा का आदेश पहुँचाया करता था और इसराफ़ील एक फ़रिश्ते का नाम जो क़यामत के दिन बिगुल बजाने का काम करता है।
† **नदीमे-शाही**=हज़रत मुहम्मद को कहा गया है। ‡ **पेशवाए**=रहनुमा
§ **शाख़े-सिद्रा**=बेरी का पेड़ जो सातवें आसमान पर है जहाँ हज़रत मुहम्मद पहुँचे थे।
¶ **बुलबुले-क़ुद्स**=पाक रूह

(8)

इश्क़ का मक़ाम इल्म और अक़्ल से ऊँचा है। कायनात की शुरुआत से ही रब और रूह के रिश्ते की बुनियाद इश्क़ पर रखी, यह रिश्ता क़यामत के बाद भी क़ायम रहेगा। इश्क़ की राह पर क़दम बढ़ाने के लिए दुआ और रहमत का आसरा चाहिए। इश्क़ में तड़पते दिलों को ही ख़ुदा का दीदार नसीब होता है। दुनिया की ऐशो-इशरत से ऊपर उठ कर, अपने को फ़ना करते हुए ही यह सफ़र तय किया जा सकता है।

भरे हैं मेरे ख़ज़ाने इल्मो-अदब* से,
है फिर भी आहें सुबह की और रोना रात का। 1

रह न जाएँ होंठ प्यासे कहीं गुनाहों की वादी में,
ठाठें मार रहा हर तरफ़ समंदर उसकी रहमत का। 2

नूर अल्लाह का हुआ है ज़ाहिर तेरे लिए,
अलस्तु बिरब्बिकुम† का जब तूने इक़रार किया। 3

तू बंदा मेरा, मैं रब्ब तेरा, है यही काफ़ी क़यामत में,
कि ख़त्म हो जाता है वहाँ माँ बाप का रिश्ता। 4

जाल हज़ारों बिछा कर तुझको क़ैद किया,
रिहा करूँ फिर तुझे जाल से, है यह काम ग़ज़ब का। 5

ऐ बंदे! आया हूँ मैं तेरी पुकार पर तेरे लिए हज़ार बार,
इस उम्मीद पर कि तू मुझे एक बार तो कह दे या रब्ब! 6

---

* **इल्मो-अदब**=किताबी ज्ञान

† **अलस्तु बिरब्बिकुम**=यह क़ुरान शरीफ़ की आयत है (7:172)। इसका अर्थ है कि रब ने सभी रूहों से पूछा: क्या मैं तुम्हारा रब नहीं हूँ? रूहों ने जवाब दिया: 'क़ालु बला शहिदना' यानी 'बेशक तू हमारा परमात्मा है'। इस तरह रूहों ने रब के साथ इक़रार किया कि हम तेरे सिवा किसी दूसरे को रब मान कर उसकी इबादत नहीं करेंगी।

रहमत मेरी पे नज़र कर, न देख अमल अपने,
जब ज़ाहिर होता है मुसब्बिब*, तो ख़त्म हो जाता है सबब†। 7

ज़ाहिर करता हूँ सिफ़त से अपने जमाले-ज़ात‡ को मैं,
पा लेगा नजात§ तू गर उठा लूँ परदा मैं। 8

मुझे ढूँढ़ न पाएगा जन्नत में तू हरगिज़,
गुनहगारों के तड़पते दिल में मुझे तलाश करना । 9

रहमत मेरी के लूटे हैं मज़े, जो वक़्ते-दुआ में तूने,
ग़ौर कर की ऐशो-इशरत में है वो लुत्फ़ कहाँ। 10

मोईन नामो-निशाँ से गुज़र यह है राहे-इश्क़,
ख़ूब यही कि है ग़ुलाम तू उसके दर के कुत्ते का॥ 11

---

* **मुसब्बिब**=सबब पैदा करने वाला, यहाँ भाव ख़ुदा से है। † **सबब**=कारण

‡ **जमाले-ज़ात**=अपनी असलियत का जमाल § **नजात**=छुटकारा पाना

(9)

दुनिया ख़ुदा की रहमत का खेल है। बंदे के वुजूद में ख़ुदा का नूर है। इस दुनिया में इनसान के गुनाह ज़्यादा हैं और नेकियाँ कम, फिर भी वह उम्मीद करता है कि उसकी रहमत से एक दिन विसाल ज़रूर हासिल होगा। ख़ुदा ही इस दुनिया से रिहाई का परवाना लिखता है। क़यामत के दिन हिसाब-किताब और गुनाहों में रिआयत उसकी मेहर से ही मुमकिन है।

तेरे दरयाए-करम* से ही है नमी आलम में,
तेरे क़दमों की गर्द से ही है हस्ती ख़ाके-आदम† में।1

इनसान हैं बेदार और ख़्वाब में अब तक,
है हुस्न उस वुजूद में, पैदा हुआ जो अदम‡ से।2

ख़ुरशीद की तरह ईसा हैं अर्श पर ताने हुए ख़ेमा,
इस आरज़ू से कि साया पड़े उसके अलम§ से।3

तह में समंदर की छिपा है दिल का वो मोती,
छिपे हुए हैं सौ समंदर जिसके अंदर में।4

मिले दोज़ख़ से रिहाई का परवाना जिसको,
बंदा ग़ुलाम है उसका, लिखा ख़त जिसकी क़लम से।5

ग़मे-उम्मत¶ पे कर दी फ़िदा ख़ुशियाँ जहाँ की,
यह जान कि इसी ग़म से हैं ख़ुशियाँ जहाँ में।6

देखा कि ज़्यादा हैं गुनाह, नेकियाँ हैं कम,
दोनों की निस्बत** कम है ग़म फिर भी जहाँ में।7

* **दरयाए-करम**=रहमत का दरिया † **ख़ाके-आदम**=नश्वर शरीर
‡ **अदम**=परलोक § **अलम**=ख़ेमें के ऊपर लगाया जाने वाला झंडा
¶ **ग़मे-उम्मत**=पैग़ंबर मुहम्मद साहिब के पैरोकार के ग़म में ** **निस्बत**=तुलना में

जाँ अपनी तड़पती है उम्मीदे-वस्ल में,
तेरे ही दम से आती है साँस इस दम में।8

उम्मीद है क़यामत के दिन होगा न हिसाब,
मोईन उस पे है मुनहसिर* रिआयत मेरे गुनाहों में।9

* **मुनहसिर**=निर्भर

(10)

ख़ुदा कहीं बाहर नहीं, इनसान के अंदर है। ख़ुदा और बंदे के बीच परदा इनसान की अपनी ख़ुदी है। ख़ुदा तक पहुँचने का ज़रिया इश्क़ है। इसलिए उसका दीदार जिस्म से नहीं, बल्कि रूह से ही मुमकिन है। तपस्वी और त्यागी जन्नत के सुखों को ही सब कुछ समझ लेते हैं जबकि हक़ का राज़ सिर्फ़ दिल की तख़्ती पर ही पढ़ा जा सकता है। यह राज़ किसी पाक किताब में ढूँढ़ने से हासिल नहीं होता। आख़िर में ख़्वाजा साहिब कहते हैं कि ख़ुदा के इश्क़ में डूबा इनसान ख़ामोशी इख़्तियार कर लेता है।

तू ही है कि तेरे सिवा दूसरा हिजाब* नहीं,
सिवा नूर के तेरा कोई निक़ाब नहीं। 1

तू ही है वाक़िफ़ ज़ात से अपनी,
तेरे ख़्याल में ग़ैरों का कोई हिसाब नहीं।† 2

राज़े-इश्क़ पढ़ अपने दिल की तख़्ती पर,
कि उस नुक़्ते के हल की कोई किताब नहीं। 3

गुज़र अपने वुजूद से गर है तलब ख़ुदा की,
सिवा तेरे वुजूद के तेरा कोई हिजाब नहीं। 4

गुज़र इस जिल्दे-बदन‡ से ताकि तू अपनी रूह को देख,
तख़्तीए-रूह के अलावा कोई किताब नहीं। 5

* **हिजाब**=परदा † **तेरे...नहीं**=दुनिया वाले तेरी पहचान नहीं कर पाते।
‡ **जिल्दे-बदन**=शरीर का ख़ोल यानी बाहरी जिस्म

बादाए-जन्नत* के नशे में ही मर गया ज़ाहिद†,
गुमाँ उसको था कि उसके सिवा और कोई शराब नहीं।‡ 6

जब इसमें डूबा है तो मोईन नाम न पूछ,
सिवा ख़ामोशी के इसका कोई जवाब नहीं। 7

* **बादाए-जन्नत**=जन्नत की शराब † **ज़ाहिद**=जप-तप करने वाला
‡ **गुमाँ...नहीं**=आप समझा रहे हैं कि ज़ाहिद यानी तपसी लोग जन्नत के सुखों को ही सच्चा सुख मानते हैं।

(11)

इश्क़ की अहमियत बताते हुए आप कहते हैं कि कायनात ख़ुदा के नूर से रौशन है, यह नूर ख़ुदा का इश्क़ है। लेकिन जिनकी हालत चमगादड़ की तरह है वो उस नूर को देख नहीं पाते। ख़ुदा ने इनसान की रचना करते वक़्त उसमें अपना नूर, अपना इश्क़ रख दिया। इसी लिए आशिक़ का दिल उसी इश्क़ की आग में जलता है, उसके अश्कों में यार की ही सूरत होती है। ख़्वाजा साहिब कहते हैं कि इश्क़ की यह मय कामिल दरवेशों की सोहबत से मिलती है।

नूर यह कैसा जिससे कायनात रौशन है,
नूरे-इश्क़ है ये, रूह ख़ुद ही इससे रौशन है।1

हुमा* की मिसाल आसमाँ की बुलंदियों पे पहुँचा है इश्क़,
इसकी परछाईं से दोनों जहाँ रौशन हैं।2

तू है दिल में, तेरी ख़ुशबू से सराबोर हूँ मैं,
तेरी ख़ुशबू से महका ये जहाँ है।3

शम्स† को दिन में न देख सके चमगादड़,
मगर ज़र्रे-ज़र्रे में हर तरफ़ वो रौशन है।4

क़ज़ा के दर्ज़ी ने चाहा कि सिले ख़ास लिबास‡,
ज़ाहिर इस लिबास में तेरे-मेरे रिश्ते की डोर है।5

---

* **हुमा**=कहा जाता है, जिसके ऊपर हुमा नामक पंछी का साया या परछाईं पड़ जाती है, वह बादशाह बन जाता है। आप समझा रहे हैं कि इश्क़ हुमा पंछी के समान है जिसका साया पड़ने पर रूह रूहानी दौलत से मालामाल हो जाती है।

† **शम्स**=सूरज

‡ **क़ज़ा...लिबास**=भाव ख़ुदा ने सृष्टि की रचना के समय इनसान को सृष्टि का सिरताज (अशरफ़ुल-मख़्लूक़ात) बनाया।

अश्कों से भरी आँखों में तेरे चेहरे की है झलक,
जैसे बहते पानी में आफ़ताब रौशन है।6

तपते मन ने इक आग लगा दी है दिल में,
आह की तपिश से तो अब ज़ुबाँ में भी जलन है।7

राहे-ख़ुदा की तलाश में लिए फिरता हूँ दौलत यह,
आशिक़ों में इसी दौलत के निशाँ की चमक है।8

महफ़िले-ख़ास है, मय ला वहदत की मोईन,
मस्तानों की इस महफ़िल में नूरे-इश्क़ रौशन है।9

(12)

ख़ुदा का नूर हर जगह मौजूद है पर उस नूर को देखने के लिए अंदर की आँख की ज़रूरत है। ख़ुदा के इश्क़ के नगाड़े को सुनने के लिए कानों से रूई हटाने की ज़रूरत है। ख़ुदा का दीदार करने के लिए ख़ुदी को ख़त्म करना ज़रूरी है।

ख़ुदा का नूर है छाया जहाँ में देख ज़रा,
नहीं कोई जगह आलम में बिना नूरे-ख़ुदा।1

छुपी रही जो हक़ीक़त जहाँ की आँखों से,
ज़ाहिर है मेरी सूरते-दिलकश से नूर उसका।2

हुस्न ऐसा कि न हो आँख भी महरम जिसकी,
आफ़ताब की तरह वो मेरे आईनाए-जाँ पर चमका।3

पूछा ये कि रहेगा हुस्न तेरा छुपा कब तक,
बोले वो हुस्न तो है ज़ाहिर, नहीं है देखने वाला दीदा।4

ख़ुद ही आहिस्ता से आ, न ढूँढ़ ठीकरियों में,
यह कशिश जो भी है, है खिंचाव मिक़नातीस सा।5

इश्क़ का नगाड़ा बजता है दो जहाँ में मेरा,
कान से हटा रूई और सुन उसकी सदा।6

तनहाई से हुआ है मोईन महरम जब से,
हस्ती और नीस्ती* अपनी वो ख़ुद खो बैठा।7

* **हस्ती और नीस्ती**=यानी होना और न होना (वुजूद और अदम)

(13)

इश्क़ की गहराई में डूबे आशिक़ की बेसब्री, बेक़रारी और बेचैनी को बयान किया गया है जिसे चैन और सुकून सिर्फ़ माशूक़ के दीदार से ही मिलता है। आशिक़ और माशूक़ में फ़ासला दिलों की दूरी का है, इसलिए दिल को क़ाबू में करना बेहद ज़रूरी है। माशूक़ हमेशा आशिक़ के दिल में रहता है, लेकिन यह बात वही समझ सकता है जिसने इश्क़ किया है।

मस्त हूँ आज कि मय मेरे दिल के जाम में है,
इश्क़ की चाश्नी क़यामत तक मेरे काम में है।1

प्यास ऐसी नहीं दिल की जो बुझना चाहे,
जबकि नहरे-फ़िरदौसे-बरीं* दिल के मेरे जाम में है।2

तन-परस्ती† के लिए है दो जहाँ की ख़्वाहिश,
मगर दीदारे-ख़ुदा के वादे का पैग़ाम इस जाम में है।3

जन्नत में भी न पाएगा चैन यह बेक़रार दिल,
चैन इस दिल का तेरे दीदार के इनाम में है।4

मेरे दिल की दुआ का हर साँस पहुँचता है आसमाँ पे,
कि हर फ़रिश्ता सुने जो मेरे दिल में है।5

आलमे-पाक‡ से यह दिल ज़मीं पर आया है,
जाएगा फिर वहीं पर, उलझा अभी जाल में है।6

न सोच पहुँचना है अर्श§ पे उसे पाने के लिए,
फ़ासला दिल का वहाँ तक मेरे इक क़दम में है।7

* **नहरे-फ़िरदौसे-बरीं**=जन्नत की सबसे ऊँची नहर
† **तन-परस्ती**=शरीर की पूजा यानी इस कायनात की सभी नेमतों का संबंध शरीर से है।
‡ **आलमे-पाक**=वो जहान जो पवित्र है यानी परलोक।
§ **अर्श**=नौवाँ आसमान जो सबसे ऊँचा रूहानी मंडल है।

गर बग़ावत जिस्म करे तो दिल पर हो जा सवार,
देख ये कि दिल तेरा तेरे क़ाबू में है।8

अँधेरा ख़ाके-बदन का तेरा बना है परदा,
वरना रौशनी नूरे-ख़ुदा की दिल के हर कोने में है।9

बुलबुले-इश्क़ तो है सारे आलम से आज़ाद,
परिंदा हुशियार है वो, उलझा जो दिल के जाल में है।10

जिसकी हुकूमत और दौलत का सिक्का चलता है,
वो शहंशाह फ़रिश्तों का मौजूद तेरे दिल में है।11

नुक़्ताए-इश्क़ नहीं होता तख़्ती पर बयाँ,
ऐ मोईन यह राज़ तेरे दिल के इल्म में है।12

(14)

इस ग़ज़ल में जुदाई के दर्द का बख़ूबी बयान किया है। हालाँकि जुदाई के दर्द की तश्बीह आग से की गई है जो सब कुछ जला कर राख कर देती है, लेकिन ख़्वाजा साहिब फ़रमाते हैं कि दोज़ख़ की आग तो गुनहगारों की खाल जलाती है, लेकिन जुदाई की आग से तो हड्डियों के मग़्ज़ भी जल जाते हैं। यह जुदाई की आग इनसान की हस्ती, उसके जिस्मो-जाँ का नामोनिशान ख़त्म कर देती है। ख़ुदा और इनसान के दरमियान पड़े सब परदे जुदाई से निकली आह की एक चिंगारी से जल जाते हैं।

आतिशे-इश्क़ से मेरे जिस्मो-जाँ जल गए,
आह जब निकली तो तालू और ज़ुबाँ जल गए।1

दोज़ख़ की आग से भी बढ़ कर है आग जुदाई की,
उफ़! इस आग से ज़ाहिर-बातिन* सब जल गए।2

आग दोज़ख़ की जलाती है खाल गुनहगारों की,
मगर हिज्र† की आग में मग़्ज़‡ हड्डियों के भी जल गए।3

नियामतें दोनों जहाँ की चाहता था मेरा दिल,
आग ऐसी भड़की कि यहाँ-वहाँ§ सब जल गए।4

दीनो-दुनिया चल बसे, रह गया बस इश्क़े-मौला,
नूरे-ख़ुदा की चमक से दोनों जहाँ जल गए।5

नुक़्सान में है दुनिया वाले, नफ़े में हैं दूसरे जहाँ वाले,
इश्क़ की तपन से सब नफ़े नुक़्सान जल गए।6

इश्क़े-यार के सहरा¶ में प्यासा हूँ दीदार का,
प्यास की आतिश ऐसी भड़की, जिस्मो-जाँ रूह सब जल गए।7

---

* **ज़ाहिर-बातिन**=बाहर-अंदर † **हिज्र**=जुदाई ‡ **मग़्ज़**=हड्डियों के अंदर की वसा
§ **यहाँ-वहाँ**=लोक-परलोक ¶ **सहरा**=रेगिस्तान

हूँ मैं गुमनामी के रास्ते पे, हस्ती नहीं बाक़ी कोई,
बेनियाज़ी* की बिजली कुछ ऐसी गिरी, नामो-निशाँ सब जल गए।8

आईनाए-जाँ में जब दीदार जानाँ का हुआ,
नूर से उसके मेरे जिस्मो-जाँ सब जल गए।9

सैकड़ों परदे पड़े थे मेरे और उसके दरम्याँ,
मेरी आह की इक चिंगारी से सब जल गए।10

पहले करता था मोईन तारीफ़ उसके हुस्न की,
अब तो हुस्न से उसके लफ़्ज़ ही सारे जल गए।11

* बेनियाज़ी=बेपरवाही

(15)

जब इश्क़ की आग भड़कती है तो आशिक़ की अपनी हस्ती ख़त्म हो जाती है, उसके लिए इस दुनिया की हस्ती भी नेस्तोनाबूद हो जाती है। अगर सब्र के लिए वह अश्क बहाता है तो जुदाई का दर्द और भी बढ़ जाता है।

आग ऐसी भड़की कि जिस्मो-जाँ दोनों जल गए,
अंदरूनी सीना धूप और अंबर की मिसाल जल गए।1

काश कोई महरम-दिल पूछे हाल दिलजलों का,
यह कैसी आग थी कि ज़मीं और समंदर जल गए।2

यह ज्वाला का था शोला या फिर ग़ैबी आग थी,
कि हमारी अक़्लो-फ़िक्र की हुमा* के पर जल गए।3

कैसी चिंगारी छुपी थी ख़ाके-वुजूद में,
ऐसी भड़की कि सारे ख़ुश्को-तर जल गए।4

मैंने आँखों से अश्क† बहाए कि आग बुझ जाए,
लेकिन अश्क मेरे भरे थे ख़ून से, आग और भड़क उठी।5

चाहता था भरूँ आह कि ग़मे-दिल हो जाए कम,
मगर जिस्म से जब आग भड़की, चाँद तारे जल गए।6

राज़ कुछ ऐसा है कि सरे आम न कहना मोईन,
सैकड़ों वाइजो-मिम्बर‡ इस आग में जल गए।7

* हुमा=ऊँचे आसमान में उड़ान भरने वाला पंछी
† अश्क=आँसू
‡ वाइजो-मिम्बर=मंच और मंच पर उपदेश देने वाले धर्मप्रचारक।

(16)

यह ग़ज़ल वहदत की एक ख़ूबसूरत मिसाल है। आप कहते हैं कि इस कायनात में जो कुछ है, ख़ुदा है और वही इस कायनात के ज़र्रे-ज़र्रे में समाया हुआ है। जब रूह के आईने में माशूक़ का दीदार होता है तो उसका नूर ज़र्रे-ज़र्रे में दिखाई देने लगता है। इस हालत में अंदर-बाहर, अपने-पराए, वहदत-कसरत के सारे फ़र्क़ दूर हो जाते हैं और आशिक़ 'तू ही तू' की मस्ती में खो जाता है।

ज़ुहूरे-आशिक़* और माशूक़े-गुलबदन† है वही,
तनहाई का साथी, साक़ी और अंजुमन है वही। 1

गर तू चश्मे-हक़ीक़त से देखे तो जाने,
कि ज़ाहिर है जो दिल में, जाँ से प्यारा है वही। 2

आईनाए-दिल में तब उसके रुख़ का अक्स पड़ा,
खुली यह बात कि जिस्म में जानो-तन है वही। 3

ख़ुदी की पोशाक को गर तू तार-तार कर दे,
तो साफ़ नज़र आए कि लिबास के अंदर है वही। 4

यह जामे-इश्क़‡ है, सिर्फ़ मंसूर§ ही मतवाला नहीं,
आती है सदा सूली से भी बस वही है वही। 5

अवैस क़रनी¶ के पास (मुहम्मद की) ख़ुशबू कौन ले गया,
क़रन को मदीना के क़रीब करने वाला था वही। 6

---

* **ज़ुहूरे-आशिक़**=आशिक़ का जलवा

† **माशूक़े-गुलबदन**=माशूक़ का फूल जैसा कोमल बदन

‡ **जामे-इश्क़**=इश्क़ का जाम

§ **मंसूर**=सूफ़ी दरवेश जिसने अनलहक़ (मैं ख़ुदा हूँ) का नारा लगाया था जिसके कारण उसे सूली पर चढ़ा दिया गया था।

¶ **अवैस क़रनी**=क़रन निवासी अवैस, हज़रत मुहम्मद साहिब को सच्चे दिल से इश्क़ करता था। उसकी मुहम्मद साहिब से कभी मुलाक़ात नहीं हुई थी।

राज़े-इश्क़ को ज़ाहिर किया न सोचा कुछ भी,
जो दिल में झाँका तो अंदर है वो ही वो ही। 7

न कह कि कसरते-दुनिया* में वहदत ही नहीं,
गर चश्मे-दिल से देखे तो हर जगह दिखता है वही। 8

गर वहमो-गुमाँ है मैं और तू का तुझे,
निकल इस ख़ामख़याली से, मैं और तू सब है वही। 9

बाँसुरी रखता है लबों पर वो जब बजाने को,
तो आशिक़ों की नज़र में लब और बाँसुरी है वही। 10

कहाँ है फ़र्क़ साक़ी की शराब और जाम में,
मोईन लब न हिला, रूहे-अंजुमन† है वही। 11

---

* **कसरते-दुनिया**=द्वैत की दुनिया † **रूहे-अंजुमन**=महफ़िल की रूह

(17)

इस ग़ज़ल में भी वहदत के ख़्याल को बयान करते हुए आप कहते हैं कि ख़ुदा ज़र्रे-ज़र्रे में समाया हुआ है, इसलिए द्वैत या कसरत सिर्फ़ नज़र का धोखा है। वही आशिक़ों के दिल में बैठ कर उनसे इश्क़ करता है। वही ख़ुद को ज़ाहिर करता है, वही ख़ुद को छुपा लेता है।

या अल्लाह दिल के आईने में झलकता है नूर जिसका वो कौन है,
हुस्न ज़ाहिर है तो फिर परदे के अंदर कौन है।1

ख़ाली जब उससे नहीं इक ज़र्रा भी कायनात का,
फिर दो आलम में सिवाय उसके जलवानुमा कौन है।2

एक है आफ़ताब, मगर मुख़्तलिफ़* ज़र्रों में है,
हर एक सूरत में रौशन नूर है जिसका, वो आख़िर कौन है।3

गर तू जिस्मे-ख़ाकी में ज़ाहिर है अपने जलवे से,
फिर मेरी जाँ में छुप कर जो बैठा है, वो कौन है।4

महफ़िले-जाँ में गूँजती है हरदम तेरी सदा,
फिर आशिक़ों के दिल में जिसका नूर है, वो कौन है।5

ख़ुद ही अपने नूर से अपने को उसने ढक लिया,
नाज़ उठाए आशिक़ों के नाम पर जो, वो फिर कौन है।6

दरम्याँ लाओगे कब तक मैं और तू को ऐ मोईन,
जब मैं और तू है वही फिर दूसरा अब कौन है।7

---

* **मुख़्तलिफ़**=अलग-अलग रूप में

(18)

ख़ुदा के नाम का ज़िक्र ही ज़िंदगी की बुनियाद है। जब तक दिल में ख़ुदा के नाम की आरज़ू नहीं होती, न तो रूह उसकी याद में तड़पती है, न ही वो दिल में ज़ाहिर होता है। दिल की पाकीज़गी और लब पर उसके नाम का ज़िक्र, ख़ुदा के विसाल का ज़रिया है। अपनी ख़ुदी को ख़त्म करके बंदा ख़ुदा में समा सकता है।

नाम उसका लब पे है तो वक़्ते-आख़िर सँवर गया,
दूध बन कर वो मेरी रग-रग में बस गया।1

याद उसकी जाँ में जज़्ब हुई, बन गई शौक़े-दीदार,
याद उसकी आक़बत* से ही है मेरी जाँ में छुपी।2

कहती है दुनिया आख़िर जुनूँ उसका रंग लाएगा,
यह यक़ीं मुझको न था लेकिन ज़ाहिर आख़िर हुआ।3

मुद्दतों से थी दिल में हसरत उस शरबती लब की,
आरज़ू दिल की बन गई उम्मीदे-आशिक़ाँ†।4

वो छुपा था अंदर परदाए-पाकीज़गी में,
रुख़ से नक़ाब उठा कर हो गया रुसवाए-जहाँ‡।5

रिश्ताए-जाँ को किया हिज्र की क़ैंची ने जुदा,
वस्ल की उम्मीद का पैबंद आख़िर लग गया।6

बेनिशाँ§ जब लोग होते हैं तो पाते हैं निशाँ,
उस बेनिशाँ में मिल कर बेनिशाँ मोईन हो गया।7

---

* **आक़बत**=दूसरा जहाँ, परलोक
† **उम्मीदे-आशिक़ाँ**=आशिक़ों की उम्मीद पर
‡ **रुसवाए-जहाँ**=जहाँ में बदनाम
§ **बेनिशाँ**=अपनी हस्ती, अपनी ख़ुदी को ख़त्म करना।

(19)

इश्क़ की राह ख़ौफ़नाक है जिसे मुर्शिद की रहनुमाई में ही तय किया जा सकता है। इस राह में जुदाई का दर्द और तनहाई हमसफ़र होते हैं। यार का दीदार ना भी हो, तो भी उसकी याद का दामन थामे रखना ज़रूरी है।

राहे-इश्क़ में तेरा दर्द ही काफ़ी है,
सुबह की आह और दिल की तनहाई काफ़ी है।1

राह ख़ौफ़नाक है, अँधेरी भी, साथ दुश्मन है छिपा,
कि नूर रहबर है यह भरोसा ही काफ़ी है।2

गर मौला के दर का रस्ता न बताएँ दर के लोग,
तो दूर से ही सज्दा उस दर का काफ़ी है।3

हुस्न साक़ी ने दिखाया न हो बेपरदा अगर,
जामे-दिल में उसका अक्स ही काफ़ी है।4

तेरे दीदार का खुले न दर जब तक दिल में,
यार का दामन थामे रखना ही काफ़ी है।5

अक़्ल की आँख को तू इश्क़ के झंडे तले ले आ,
फ़ौज हो चाहे लाखों की, एक बादशाह ही काफ़ी है।6

ख़ुरशीद* की तरह देख न तू हर ज़र्रे को,
दिल के मुसाफिर को सिर्फ़ उसकी नज़र काफ़ी है।7

तू ख़्वाहिशमंद है नेकी का, जन्नत है तेरे ही लिए,
फ़ुरक़त† की आग है दिल में तो इक चिंगारी ही काफ़ी है।8

नेक ले जाते हैं दुआ अपनी-अपनी दोस्त के पास,
ऐ मोईन रहबरी के लिए इक आह ही काफ़ी है।9

---

* **ख़ुरशीद**=सूरज † **फ़ुरक़त**=जुदाई

(20)

इश्क़ का दर्द दिल की ज़ुबान से बयान नहीं हो सकता। दरअसल इश्क़ की शराब का रिश्ता रूह से है। रूह को फ़ानी देह से निकाल कर रूहानी मंडलों की उड़ान भरने के लिए मन को क़ाबू करना ज़रूरी है। इश्क़ में किसी को छोटा-बड़ा या किसी की सिफ़त या ऐब नहीं देखने चाहिएँ।

तेरे इश्क़ में ज़ख़्मी हुआ है दिल ऐसा,
कि दिल की ज़ुबाँ से हो न बयाँ ग़म ऐसा।1

ख़ज़ाने आलमे-ग़ैब के सब हों उस पे निसार*,
गर खोल दे साक़ी दर उस मयख़ाने का।2

अज़ल† के रोज़, सुबह क्या फ़रमाया था साक़ी ने,
तलछट की मय में है उजाला तेरी सुबह का।3

वो घूँट क्या जो जिस्मे-ख़ाकी पे न चमक पाए,
यह रूह की शराब है, लगाव है जिसके साथ दिल का।4

शहसवार‡ बन गर तू चाहे भरना अर्शों की उड़ान,
तो खींच दिल की लगाम, करके करतब यह दिखा।5

मेरे यार के चेहरे का जमाल है रौशन,
बिना नुमाइश के है ज़ाहिर नूर उसके रुख़ का।6

इश्क़ में मरना है तो ऐब न देख चींटी में भी मोईन,
सुलेमान को भी तो चींटी ने था नज़राना दिया।§ 7

---

* **निसार**=क़ुर्बान † **अज़ल**=सृष्टि की शुरुआत में, अनादि काल से

‡ **शहसवार**=घुड़सवारी में माहिर § **सुलेमान...दिया**=बादशाह सुलेमान के ज़माने में एक बार भारी अकाल पड़ा। बादशाह अपनी प्रजा के साथ ख़ुदा से बारिश की दुआ माँगने गया तो उसने एक चींटी को देखा जो दो पाँव पर खड़ी होकर ख़ुदा से दुआ माँग रही थी कि इनसानों की बदी के कारण हमें यह अकाल की हालत भुगतनी पड़ रही है। वह बारिश के लिए दुआ माँग रही थी। बादशाह क्योंकि सभी जानवरों की बोलियों से वाक़िफ़ था, उसने अपनी प्रजा से कहा कि इस चींटी की दुआ ही काफ़ी है, चलो लौट चलें।

(22)

ख़ुदा का नूर ज़र्रे-ज़र्रे में समाया हुआ है। उसका नूर चाँद-सूरज में ही नहीं, बल्कि नबियों में भी रौशन है। इनसान नेकियाँ भी उसी की मेहर से करता है और हक़ की राह का राज़ भी उसकी रहमत से मिलता है। जो ख़ुदा की रज़ा में नहीं रहता वो शैतान के हाथ पड़ जाता है। ख़्वाजा साहिब कहते हैं कि मैं पापी गुनहगार हूँ, मुझमें इतनी ताक़त नहीं कि यार का दीदार कर सकूँ, पर मैं उसके रहमो-करम पर उम्मीद लगाए बैठा हूँ कि अपनी आँख से उसके हुस्न का दीदार करूँ।

नूर तेरा कुल कायनात में ज़ाहिर हुआ,
नूर से तेरे ज़मीं-आसमाँ पैदा हुआ।1

यह न कह कि सिर्फ़ चाँद सूरज में है तेरा नूर,
नूर से तेरे सभी नबियों को फ़ायदा हुआ।2

नेकियाँ भी हर किसी की तेरी बख़्शिश से हैं,
कुंजी मिली है तेरे दरबान को वक़्ते-दुआ*।3

क़ैद में शैतान की वो हो गया यकसर† क़ैद,
हुक्म को तेरे नज़र-अंदाज़ जिसने भी किया।4

दौड़ती है जिस्म में हिरण की तरह जान ये,
ख़ुशबू से तेरी ज़ुल्फ़ की, सराबोर ये दिल हो गया।5

तू समंदर रहमत का, हूँ पापी गुनहगार मैं,
बख़्श दे ख़ताएँ मेरी ओ गुनहगारों के रहनुमा।6

---

* **वक़्ते-दुआ**=इबादत के वक़्त

† **यकसर**=एक सिरे से दूसरे सिरे तक यानी पूरी तरह।

दीदारे-यार हर आँख को बरदाश्त कहाँ,
उसकी बख़्शी नज़र से ही कर पाए कोई दीदार उसका।7

ऐशपरस्तों को क्या अंदाज़ा रंजो-ग़म का,
दर्द ज़ख़्मे-इश्क़ का दिल में है कसक पैदा करता।8

क्यों करूँ ग़म हर साँस में, कि उम्र को करता है ये कम,
है दिलो-जाँ पे मेहरो-करम हर लम्हा तेरा।9

ख़्वाहिश है हुस्न तेरा देखे आँख से मोईन,
कब तलक गुफ़्तगू से दिल ख़ुश करे ये बंदा तेरा।10

(23)

ख़ुदा की रहमत से ही सारी कायनात क़ायम है। सारे वजूद का मरकज़ ख़ुदा है। हर जिस्मो-जाँ में वही ज़ाहिर है, वही छुपा है, वही जलवा है, वही जलवानुमा है। उसी से शुरुआत है, वही आख़िरी हद है। ख़्वाजा साहिब दुआ करते हैं कि ख़ुदा अपनी रहमत सदा बनाए रखे।

ऐ कायनात के बादशाह, ऐ मालिक दो जहाँ के,
क़ायम है सारा आलम तेरे ही तुफ़ैल* से।1

तू ख़ुद ही है मरकज़† सारे वुजूद का,
क़ायम है जहाँ तेरे ही नूरो-मेहर से।2

हर जिस्मो-जाँ में अव्वल भी तू आख़िर भी तू,
ज़ाहिर भी बातिन भी, है सारे जहाँ में तू ही तू।3

है इब्तिदा‡ कहाँ से वो रास्ता न पूछ,
है इन्तिहा§ जहाँ, जाना वहीं है लौट के।4

अव्वल लिखा है नाम मोहम्मद का अर्श पर,
पैरोकार¶ उनके नेक, अंजाम उनका ख़ुशनुमा।5

गर तेरे हुक्म की करें फ़रिश्ते हुक्म उदूली,
वे भी शैतान की तरह मरदूद** हो जाएँ।6

अगर दिल तेरा जमशीद का पैमाना†† हो जाए,
ज़ाहिर ये राज़ हो कि तू ही जलवा है, तू ही जलवानुमा।7

---

* **तुफ़ैल**=ज़रिया † **मरकज़**=केंद्र ‡ **इब्तिदा**=शुरुआत, आरंभ
§ **इन्तिहा**=आख़िरी हद ¶ **पैरोकार**=अनुयायी
** **मरदूद**=बेइज़्ज़त लोग, जिनका बहिष्कार किया गया हो।
†† **जमशीद का पैमाना**=कहा जाता है कि बादशाह जमशीद के पास एक ऐसा प्याला था जिसमें सारा जहाँ दिखाई देता था।

जाँ का ग़ुबार इश्क़ ने दूर किया,
हो गया रौशन जहाँ सारा तेरे ही नूर से।8

ज़ाहिर हुआ तेरी ही हस्ती से हर वुजूद,
जो था, जो है, जो होगा, छुपा और ज़ाहिर जहाँ में।9

मोईन भेजता है दुरूद* हरदम तुझ पे,
या ख़ुदा हो मेहरबाँ सदा तू मुझ पे।10

---

* **दुरूद**=वो दुआ जो रसूल (मुहम्मद साहिब) से की जाए।

(25)

इस ग़ज़ल के पहले हिस्से में बंदा ख़ुदा से दुआ करता है कि अगर तू दया-मेहर करके अपना दीदार बख़्श दे, तो उसकी बेबसी की हालत बदल जाएगी। दूसरे हिस्से में बंदे को समझाया गया कि ख़ुदा के दीदार के लिए बाहरी आँख की नहीं, दिल की आँख की ज़रूरत होती है। दुनिया की हवस और अपनी अक़्ल, चतुराई से ऊपर उठ कर, भरोसे से ख़ुदा से मोहब्बत करनी चाहिए। ग़ज़ल के आख़िर में ख़ुदा बंदे से कहता है कि अगर तू ख़ुदी को छोड़ कर मेरी ओर एक क़दम भी बढ़ाएगा तो फिर देख क्या होगा।

मेरा फ़ानी लिबास गर जुदा करे तू तो क्या हो,
करे जो अपने राज़ ज़ाहिर मुझ पर तो क्या हो।1

ख़स्ता दिलों की गली में, जान पे है बन आई,
गर इयादत* के तौर पर आ जाए तो क्या हो।2

यह सर है दर पे तेरे, पर खुलता नहीं दर तेरा,
याद में उसकी गुज़ार दे तू रात तो क्या हो।3

देख न इन फ़ानी आँखों से हुस्ने-रब ऐ दिल,
तू चश्मे-दिल से देख इक नज़र तो क्या हो।4

गर करे मोहब्बत भरोसे से तू,
जुदा हवस को करे ख़ुद से तो देख क्या हो।5

अक़्ल से कह दे भटकाएगी कब तक यूँ दर-बदर,
गर तहलका भी मचा दे दुनिया में तू तो क्या हो।6

कहा मोईन ने, ढूँढ़ा उसे बहुत तो वो बोला,
गर बढ़ाए इक क़दम तू ख़ुदी को छोड़कर, देख फिर क्या हो।7

* इयादत=रस्म के तौर पर रोगी का हाल पूछने जाना।

(28)

इस ग़ज़ल में इश्क़ के जुनून का ज़िक्र किया है। कायनात बनाते समय ख़ुदा ने रूह को इश्क़ की डोरी से जोड़ दिया था क्योंकि ख़ुदा ने इस दिल में इश्क़ की कशिश रखी हुई है, आशिक़ों का दिल इसी लिए तिलमिलाता है। जिस तरह साये में अपनी कोई ताक़त नहीं होती, वह तभी हिलता है जब बंदा हिलता है, इसी तरह बंदे में भी अपनी कोई ताक़त नहीं है। इस कायनात में जो कुछ हो रहा है, ख़ुदा की रहमत से हो रहा है। हर रूह यही चाहती है कि आख़िरी साँस तक ख़ुदा की याद बनी रहे।

जुनून है यह कैसा जो सर चढ़ कर बोलता है,
न जाने सिलसिला इसका शुरू कहाँ से होता है।1

अज़ल से इश्क़ की डोरी उसी ने डाली है,
इसीलिए आशिक़ों का दिल तिलमिलाता है।2

कशिश ऐसी है तेरी कि कोहे-दिल* भी हिल जाए,
वरना यह दिल कोई तिनका नहीं जो हवा से हिलता है।3

हिलता है साया जब बंदा हिलता है,
समझ न तू कि यह साया अपने आप ही हिलता है।4

जिधर भी देखूँ झूम रही हैं गुलों की गुलज़ारें,
बादे-सबा† की ताक़त से ही यह नज़ारा मिलता है।5

नहीं चाहता कि छूट जाए हाथ से दामन तेरा,
जब तलक इस जिस्म में तार दिल का हिलता है।6

दिल के चमन में ऐ मोईन तू दरख़्त इश्क़ का लगा,
देख फिर ग़म की तेज़ हवाओं से ये किस तरह हिलता है।7

* कोहे-दिल=भाव ग़म का पहाड़ † बादे-सबा=सुबह की भीनी-भीनी हवा

(29)

इश्क़ की ताक़त बयान करता हुआ आशिक़ कहता है कि मेरे इश्क़ की लपटें आसमान तक पहुँच सकती हैं, इश्क़ का राज़ ज़ाहिर हो जाए तो ज़मीं आसमान एक हो जाए। मेरे दिल में ही क़ुरान और हदीस के राज़ छुपे हैं। ख़ुदा ने यह इश्क़ की शीरीं मेरी रग-रग में भरी है। उसी ने ला-मकाँ से उतर कर मेरी तनहा रूह में बसेरा किया है।

गर आह की आतिश से मेरा शोला जो भड़के,
तो छुपा हुआ ये शोला आसमाँ से जा मिले। 1

राज़ ज़ाहिर हो जाए गर तो सारा आलम एक हो जाए,
दिल डूब जाए उस दरिया में, मौजों* से जिसकी लहू बहे। 2

ऐ दिल तू ही तस्वीर है क़ुरान की और चिराग़ हदीस का,
तू उस ज़ाते-हक़ का आईना है, तेरे सामने कैसे कोई दम भरे। 3

मुसकुराएँ वो गर तो छिड़के नमक ज़ख़्मी दिलो-जाँ पर मेरे,
ख़ंजर अदा का जब चले, तो दिल पे मेरे आकर लगे। 4

या ख़ुदा इश्क़ की शीरीं† वो ऐसे मेरी रगे-जाँ में भरे,
जैसे तीर लैला के सीधे मजनूँ के सीने में लगे। 5

ला-मकाँ से इश्क़ ने लगाया ख़ेमा मेरे बाग़े-रूह में,
मिली है उसे तनहाई तो अपना तख़्त क्यों बाहर करे। 6

ग़रीब को मिले गर मोती, सबकी नज़र से छुपाए,
मोईन मिस्कीं‡ को गर मिले लाल§, वो लाल भी औरों को दे। 7

---

* **मौजों**=लहरों † **शीरीं**=भाव मिठास ‡ **मिस्कीं**=ग़रीब, फ़क़ीर
§ **लाल**=मोती

(30)

आशिक़ के दिल में माशूक़ के सिवा किसी और के लिए कोई जगह नहीं होती। माशूक़ भी इस जहान में कहीं और नहीं, बल्कि आशिक़ के दिल में रहता है। लेकिन शर्त है कि दोनों के बीच बाल जितनी भी दूरी न होनी चाहिए। इस मक़ाम तक पहुँचने के लिए आशिक़ के लिए अपनी ख़ुदी को ख़त्म करना ज़रूरी है। इश्क़ की बड़ाई करते हुए ख़्वाजा साहिब कहते हैं कि इश्क़ का राज़ किताबों में नहीं, बल्कि दिल की तख़्ती पर लिखा जाता है। वैसे तो इश्क़ की दीवानगी को छुपाना आसान नहीं पर इसे छुपाए रखना ही बेहतर है। जो इश्क़ का राज़ खोलता है उसे मंसूर की तरह सूली पर चढ़ने के लिए तैयार रहना चाहिए।

दिल में हमारे, सिवाय रब के कोई ख़्याल न समाए,
जैसे बादशाह की तनहाई में कोई और न जा पाए। 1

दिल के महल में छिपा है बादशाह वो ऐसा,
गर दिल के बाहर ख़ेमा ताने तो जहाँ में न समाए। 2

हर दिल के तख़्त पर वो लगाता नहीं है डेरा,
हिंडोला उस शहंशाह का, हर इक नज़ारे में न समाए। 3

जिस्म हो जाए गर बाल तो भी रहे आशिक़ से परदा,
आशिक़ और माशूक़ के दरम्याँ दूरी बाल की भी न रह पाए। 4

ग़ैबी फ़रिश्ते ने मुर्ग़े-जाँ के कानों में कहा ख़ामोशी से,
गर इश्क़ है तो बुलंदियों पर बेपरों के आशिक़ पहुँच जाए। 5

अपनी ज़ात की नफ़ी, अपने सिफ़ात के इस्बात से बेहतर है*,
वो ताज तेरे किस काम का गर सर ही न उसमें समाए। 6

---

* **अपनी...है**=अपनी सिफ़तों के गुणगान करने से अपनी ख़ुदी को ख़त्म करना बेहतर है।

क़यामत के रोज़ इक लम्हे में होता है हिसाब सैकड़ों अक़्लमंदों का,
मगर हिसाब आशिक़ों के इक लम्हे का, हज़ार क़यामतें भी न कर पाएँ।7

दिल की तख़्ती पढ़ ले गर तू पाना चाहे राज़ इश्क़े-मौला का,
कि राज़े-इश्क़ का इक लफ़्ज़ भी हज़ार पन्ने न बयाँ कर पाए।8

ज़ाहिर किया मंसूर ने बहरे-इश्क़* के इक क़तरे का राज़,
आशिक़ों के हौंसले के प्याले में इससे कम न समाए।9

कैसे छुपाऊँ पीए हैं जो इश्क़ की मय के जाम,
लाती है जोश जब शराबे-इश्क़ तो समंदर में न समाए।10

लाना चाहे गर ज़ुबाँ पर राज़े-इश्क़ को तू ऐ मोईन,
सूली है मक़ाम उसका, बयाँ मिम्बर† पर तू कर न पाए।11

* **बहरे-इश्क़**=इश्क़ का समंदर † **मिम्बर**=मंच, जहाँ से उपदेश दिया जाता है।

(31)

आशिक़ को हर जगह माशूक़ की ख़ुशबू आती है, अश्कों में भी यार का हुस्न नज़र आता है। अगर यार से दूर जाने की कोशिश भी करे तो माशूक़ उसे अपनी ओर खींचता है। ग़ज़ल के आख़िर में आप ख़ुदा की रज़ा में राज़ी रहने की ताकीद करते हैं, क्योंकि दुनिया के रंजो-ग़म भी उसी की तरफ़ से आते हैं।

बड़े नाज़ से सबा* यार के कूचे से आई है,
कि ख़ुशबू यार की ज़मीं-आसमाँ से आई है।1

उसके ग़म में बहाता हूँ मैं अश्क हर रात,
कि उन्हीं अश्कों में हुस्न यार का नज़र आए है।2

गली से यार की आशिक़ जो खींचता है पाँव,
यार की ज़ुल्फ़ के फंदे उसे फँसाए हैं।3

हुआ दीवाना फिर कहाँ होशो-अक़्ल रहे,
गर यार की तरफ़ से हू हक़† के जाम इसी तरह आते रहें।4

आए जो ग़ैब से उसे भला-बुरा न समझ,
यही काफ़ी है कि ये यार की तरफ़ से आए है।5

न रो तू दुनिया के ग़म से, ख़ुशी से वक़्त गुज़ार,
कि ये तीर दोस्त के ही हैं जो तेरी आग़ोश में आए हैं।6

आ मोईन की तक़रीर‡ से तू राज़ इश्क़ के सुन ले,
उसके लफ़्ज़ों से तो ख़ुशबू यार की आए है।7

* **सबा**=ठंडी हवा † **हू हक़**=सिर्फ़ अल्लाह ही है ‡ **तक़रीर**=उपदेश

(32)

इस ग़ज़ल में दिल को आगाह किया गया है कि कुछ पता नहीं कब ख़ुदा का दीदार हो जाए, इसलिए रोज़ी-रोटी का फ़िक्र छोड़ कर, अपने गुनाहों का फ़िक्र छोड़कर उसकी रहमत पर भरोसा रख। फिर ख़्वाजा साहिब ख़ूबसूरत अंदाज़ में इश्क़ के क़ासिद और आशिक़ के बीच की गुफ़्तगू बयान करते हुए कहते हैं कि कैसे अश्कों की शराब, जिगर का कबाब यानी दिलो-जान क़ुर्बान करने से ही यार अपनी आग़ोश में लेता है। आख़िर में आप नसीहत देते हैं कि इश्क़ की राह पर चलने के लिए दोस्त यानी मुर्शिद का हमसफ़र होना ज़रूरी है।

दिले-आगाह* के लिए आती है मौला की मेहर,
होश रखना ऐ दिल, न जाने कब हो उसकी मेहर।1

रोज़ी की फ़िक्र छोड़ पहचान कर ख़ुदा की,
फिर देख ख़्वाहिशे-दिल पाए तू किस क़दर।2

ओ गुनहगार! गुनाहों की वादी में उम्मीद न छोड़,
उसकी रहमत के समंदर से ना जाने कब आए लहर।3

खिलते हैं फूल सैकड़ों उस बाग़े-जाँ में,
जब नाज़ से आए है नसीमे-सहर†।4

आता है मेरे दिल के दर पे सुबह क़ासिदे-इश्क़‡,
शहंशाह के आने की देता है वो ख़बर।5

अंदर मेरे दिल में उठा ऐसा शोरोगुल,
यह शोर है कि ख़ुदा इसी राह आए हैं।6

---

* **दिले-आगाह**=अल्लाह की याद में लगा हुआ दिल
† **नसीमे-सहर**=सुबह की शीतल हवा
‡ **क़ासिदे-इश्क़**=इश्क़ का संदेशा देने वाला

मैंने कहा, क्या पेश करूँ ऐ इश्क़ के क़ासिद,
उसने कहा, ख़ुराक दिले-राह* की तू पेश कर।7

शराब अश्कों की और जिगर का कबाब ला,
साथ में दर्द भी ला जो निकले आह बन कर।8

तोहफ़ा किया जो पेश, उसने आग़ोश में ले लिया,
जैसे कशिश मिक़नातीस की खींचे है अपनी ओर।9

पहुँचा है कोई ज़ाहिद† जहाँ लाख कोशिश के बाद,
मस्ताना शराबे-इश्क़ का, इक आह में वहाँ पहुँच जाए।10

बेदोस्त‡ इस बियाबान§ में क़दम न रख तू ऐ मोईन,
तनहा न जा, ठहर कि वो हमराह बन कर आए हैं।11

---

* **दिले-राह**=जो दिल से निकले † **ज़ाहिद**=जपी-तपी
‡ **बेदोस्त**=बिना दोस्त के § **बियाबान**=जंगल

(34)

इस ग़ज़ल में ख़्वाजा साहिब फ़रमाते हैं कि जब दिल से दुनिया के सारे ख़्याल उठ जाते हैं तो ख़ुदा का नूर ज़ाहिर होता है। जब इश्क़ का नूर फैलता है तो हर ज़र्रा उसी का रूप हो जाता है। आप कहते हैं कि मैं कुछ नहीं कहता, ख़ुदा ख़ुद मेरी ज़ुबान से यह राज़ ज़ाहिर करता है। इसलिए ताकीद करते हैं: इनसान को रूहानी सफ़र में उतार-चढ़ाव की फ़िक्र न करते हुए इश्क़ की मय पर नज़र रखनी चाहिए।

दिखाया ऐसा करिश्मा अदा का साक़ी ने,
कि बज़्मे-इश्क़ में दीवानों का होश जाता रहा।1

न अक़्ले-इश्क़ रही, रहा न ज़ुल्मतो-नूर*,
ग़ैरत† की आग ने सबको जला के ख़ाक किया।2

मोहब्बते-आफ़ताब‡ की रौशनी जब फैली,
हर एक ज़र्रा बराबर आफ़ताब हो गया।3

न जाने चमक कैसी थी शराबे-ख़ास में,
ज़ंग ग़ैर का§ धो कर दिल रौशन कर दिया।4

ज़ंग ग़ैर का जब जामे-दिल से साफ़ हुआ,
हर ज़र्रा ख़ुदा के नूर से पुरनूर हो गया।5

मेरी ज़ुबाँ से हाल अपना बयाँ उसने किया,
कि अहले-बज़्म¶ ने हाल ख़ुद-बख़ुद सुना।6

किए जा काम अपना मोईन तू क़बज़ोबस्त** न देख,
इधर तो आ, देख कि साक़ीए-वहदत ने सुराही का मुँह है खोल दिया।7

---

* **ज़ुल्मतो-नूर**=अँधेरा और रौशनी † **ग़ैरत**=ख़ुद्दारी
‡ **मोहब्बते-आफ़ताब**=इश्क़ का सूरज § **ज़ंग ग़ैर का**=दुनिया की हवस
¶ **अहले-बज़्म**=महफ़िल के लोगों
** **क़बज़ोबस्त**=दिल का ख़ुदा की याद में कभी बढ़ना, कभी रुकना।

(35)

आशिक़ ख़ुदा से फ़रियाद करता है कि सभी परदे दूर करके मुझे अपना दीदार बख़्श। मेरी रूह का पंछी जिस मक़ाम से इस दुनिया में आया है, उसी मक़ाम पर वापस जाना चाहता है। आशिक़ कहता है कि माशूक़ के खेल भी अजीबो ग़रीब हैं, ख़ुद ही कभी पास बुलाता है, कभी दूर कर देता है। वो इस जहाँ में नहीं बल्कि आशिक़ के दिल में रहता है। जो आशिक़ दिल को पाक रखता है और अंदर की आँख खोल लेता है, उसे ही माशूक़ के हुस्न का दीदार होता है।

राहे-दिल खोल कि आस है रिश्ताए-इलाही की,
हटा दे परदा, दिल को है चाह तेरे जलवे की।1

ये बाज़े-दिल* अज़ल के महल से जहाँ में आया है,
फिर से वहीं पहुँचे ये आरज़ू है उसकी।2

दिल मेरा ऐने-अदम† से चला कोहे-अदम‡ की तरफ़,
ख़्वाहिश है इस छोटी-सी चिड़िया की, मिले अनका§ की सोहबत।3

गर मैं ख़ुद न जाऊँ तो वो मुझे खींचे,
सिलसिला साथ मेरे इश्क़ का ऐसा ही रखे।4

ख़ुद ही कभी पास बुलाए, कभी दूर करे,
इस तरह आशिक़े-शैदा¶ पर वो नज़र रखे।5

सैकड़ों परदों से हुस्न उसका हो रहा ज़ाहिर,
क़यामत उस रोज़ होगी जब बेपरदा वो मुखड़ा होगा।6

---

* **बाज़े-दिल**=दिल का बाज़, दिल का पंछी † **ऐने-अदम**=दुनिया
‡ **कोहे-अदम**=परलोक § **अनका**=सीमुर्ग़, एक बहुत बड़ा परिंदा
¶ **आशिक़े-शैदा**=दीवाना आशिक़

क़सम ख़ुदा की नहीं है कोई उसका मकाँ,
रात-दिन फिर भी मेरे दिल में जलवा अपना रखे। 7

आख़िरत में वो दिखाए उसे अपना हुस्न,
जो आईनाए-दिल को पाक और रौशन रखे। 8

हुस्न तेरे चाँद का ख़ुरशीद-सा रौशन है मोईन,
है आगाह दिल वही जो दीदाए-बीना रखे।* 9

* **है...रखे**=वही दिल ख़बरदार है जो आँख खुली रखता है।

(36)

इस ग़ज़ल में ख़्वाजा साहिब फ़रमाते हैं कि ख़ुदा के नाम की शराब पिलाने वाले साक़ी की शराब का एक क़तरा ही दुनिया वालों को इश्क़ के रंग में रँग देता है। एक बार अगर ख़ुदा अपना दीदार बख़्श दे, फिर न तो अक़्लो-होश, न जाँ, और न दिल ही बाक़ी रहता है। आशिक़ ख़ुदा से शिकवा करता है कि वह उसके दीदार के लिए दर-बदर भटक रहा है। उसके वुजूद के टुकड़े-टुकड़े कर दिए गए हैं। जुदाई की तड़प में दिल से आहें निकल रही हैं; और वह कहता है कि अब तो तरस खा। आशिक़ फिर तपसी से कहता है कि माना कि मेरे गुनाह बेहद हैं पर तू इस बात से अनजान है कि आशिक़ की आहों में क्या असर होता है। मुझे जन्नत की भी कोई ख़्वाहिश नहीं। मुझे तो सिर्फ़ माशूक़ की चाह है। आप कहते हैं कि ख़ुदा का राज़ तो उसे ही ज़ाहिर करना चाहिए जो अपना सिर क़लम करवाने को तैयार हो।

मेरे साक़ी कैफ़े-मय* तेरी और ही कुछ असर रखे,
जहाँ वालों को इसका एक क़तरा ही बेख़बर रखे। 1

ख़ुमार ऐसा न सुराही में, न जाम और बादा† में,
लज़्ज़त उसकी वही जाने जो उसे लब पर रखे। 2

रहे न अक़्लो-होश, न जाँ बाक़ी, न दिल बाक़ी,
गर साक़ीए-दिलबर रुख़ से नक़ाब हटा कर रखे। 3

सिवा दिलबर के अक्से-रुख़ के, दिल में कोई और न नज़र आए,
अगर महबूब मेरे आईने-जाँ पर नज़र रखे। 4

नहीं कहता मेरे दरवेश इक लम्हा को तू आ जा,
कि वो दर पे मेरी जाँ हल्क़े की तरह रखे‡। 5

* **कैफ़े-मय**=मस्ती भरी शराब † **बादा**=शराब
‡ **हल्क़े...रखे**=जिस तरह कुंडी हमेशा दरवाज़े के साथ होती है, उसी तरह मेरी रूह हमेशा उसके साथ होती है।

बदन के टुकड़े करके भी वो रहम मुझ पर नहीं करता,
है दिल की फ़रियाद कि बाँसुरी की हूक की तरह इस राह से गुज़रे।6

जला जैसे कोहे-तूर तेरे नूर से, मेरा दिल भी सरगर्दां*
है तेरी मोहब्बत में,
लेकिन आफ़ताब को क्या ग़म गर कोई ज़र्रा ज़ेरो-ज़बर† हो जाए।7

ऐ ज़ाहिद! न देख ऐसी नज़रों से कि मैं मिस्कीं‡ हूँ,
माना गुनाह बेहद हैं मेरे और नेकी बहुत है कम।8

तू क्या जाने ऐ ग़ाफ़िल दिल कि आशिक़े-बेदिल लुटा कर दिल अपना,
सहर§ की हर आह से हासिल विसाले-हक़ करे।9

ऐ वाइज, तू क्या जाने, बुलाएँ सौ जन्नतें मुझको,
कि आशिक़ यार से मिलने के सिवा दिल में और कोई जगह क्यों रखे।10

कहाँ दिखता है मोती सीप में, बैठता सर झुकाए अंदर,
आशिक़ भी यार की तनहाई में यूँ ही अपना सर रखे।11

ऐ मोईन इस राज़े-वहदत को बयाँ हरगिज़ न करना,
लिखे जो राज़ उसका, दुनिया दो सर¶ कर दे।12

---

* **सरगर्दां**=परेशान † **ज़ेरो-ज़बर**=नीचे-ऊपर ‡ **मिस्कीं**=ग़रीब, फ़क़ीर
§ **सहर**=सुबह ¶ **दो सर**=भाव सिर के टुकड़े करना

(37)

इस ग़ज़ल में समंदर में रहने वाली सीपी की मिसाल पेश की गई है। सीपी तब तक प्यासी रहती है जब तक स्वाति बूँद नहीं मिलती। हालाँकि बूँद समंदर का ही हिस्सा होती है पर जब भाप बन कर, पाक होकर बारिश के रूप में गिरती है तब सीपी अपनी प्यास बुझाती है। सीपी के अंदर मोती भी स्वाति बूँद से ही पैदा होता है। बूँद बादल के रूप में आसमान में भी पहुँच जाए फिर भी दरिया में पहुँचकर ही समुद्र बनती है। आख़िर में आप कहते हैं कि ख़ुदा का नूर उसी दिल में ज़ाहिर होता है जो पाक-साफ़ हो।

स्वाति बूँद की ख़ातिर सीपी दरिया के ऊपर आती है,
दरिया की गहराई में रह कर भी किस क़दर वो प्यासी रह जाती है।1

सीपी दरिया में दरिया की हिफ़ाज़त में रहती है,
स्वाति बूँद की ख़ातिर बेताब वो रहती है।2

कहाँ है ताब* सीपी में कि बूँद समंदर की पी ले,
वो इक क़तरे की ख़ातिर समंदर में भटकती है।3

ना बुझती है प्यास सीपी की भरे दरिया में भी रहकर,
स्वाति बूँद ही उसको भरा समंदर लगती है।4

सीपी बारिश के क़तरे से प्यास को देती है तस्कीन†,
कि जब दरिया का पानी बुख़ारात बन कर उड़ता है।5

जुदा होता है दुनिया के समंदर से जब क़तरा,
फ़लक तक सर उठा ले समंदर से वो दूर रहता है।6

---

* **ताब**=बल, शक्ति, ज़ोर † **तस्कीन**=राहत

दरिया से बुख़ारात उठा, बना बादल हुई बारिश,
गिरती जब बूँद दरिया में तो फिर से समंदर बनती है।7

जो अपने आईने में यार को देखे तो बेहतर है,
मगर शर्त है कि वो आईनाए-दिल साफ़ रखता है।8

मोईन बे-लिबास यार का जलवा कैसे नज़र आए,
बेहतर है कि यार अपना जलवा लिबास* में ही दिखाए।9

* लिबास=भाव वुजूद

(38)

आशिक़ की हालत बयान करते हुए ख़्वाजा साहिब कहते हैं कि फ़ानी जिस्म से ऊपर उठ कर ही यार का दीदार मुमकिन है। दरवेशों की सोहबत में ही ख़ुदा के तख़्तो-ताज का वारिस बना जा सकता है। आशिक़ अपने यार की ख़ुशबू से ही दीवाना हुआ फिरता है, दीदार होने पर तो हाल और भी बदतर हो जाता है। कहते हैं कि यार की रहमत से ही यार का दीदार होता है।

गर ये आबो-गिल* का परदा चकनाचूर हो जाए,
तो हर ज़र्रे में यार का दीदार हो जाए।1

तलाशे-हक़ में जो निकले इरादाए-नेक से वो बेहतर है,
लाज़िम है कि वो दिल ग़ैरों से ज़ख़्मी हो जाए।2

करे जो पैरवी दिलो-जाँ से आशिक़ों की,
वो शाही तख़्त का मालिक और हुक्मरान हो जाए।3

गुज़र जाए जो आशिक़ सैर करता आसमानों से,
गुज़र कर दो जहाँ से वो ख़ुदा का दिलदार हो जाए।4

उसकी गली में उसकी बू† से ही दीवाना हुआ फिरता हूँ,
क़यामत के रोज़ देखूँ तो हाल और भी दीवानगी का हो जाए।5

तेरी वहदत की बू ने ही किया ख़ुद से बेगाना,
रहम करना ख़ुदाया जब तेरा दीदार हो जाए।6

पीए जो हद से ज़्यादा, राज़ भी उस पर खुलें ज़्यादा‡,
कि सीने में उसके इसरारे-वहदत न छुपा रहे।7

* **आबो-गिल**=मिट्टी-पानी भाव नश्वर शरीर † **बू**=ख़ुशबू
‡ शम्स बरेलवी ने इस शेअर की पहली पंक्ति का अर्थ इस तरह किया है:
पीए जो रूहानियत की शराब, राज़ उस पर खुल जाता है।

मय वहदत की पीकर मैं हुआ दीवाना उसकी ख़ुशबू का,
गर लैला भी घर आए तो मेरी तरह मजनूँ हो जाए। 8

हूँ उसी साक़ी का दीवाना, हाथ में जिसके जाम और मीना* है,
नज़र जिस रुख़ पे डाले चेहरा वो गुलज़ार हो जाए।† 9

गर मय की तरह गुलगूँ‡ हो रुख़ उसका तो आहो-फ़रियाद बढ़ जाए,
वो मजनूँ बनके ख़ुद ही मस्त और मतवाला हो जाए। 10

गर आशिक़ माशूक़ हो जाए और माशूक़ आशिक़ बन जाए,
तो बड़े नाज़ से यार का दिलदार हो जाए। 11

मोईन कब तक रहेगा ग़म में यूँ बदहाल तू,
सितारा क़िस्मत का गर चमके तो दीदारे-यार हो जाए। 12

---

* मीना=सुराही

† शम्स बरेलवी ने इस शेअर की दूसरी पंक्ति का अर्थ इस तरह किया है:
उस पर नज़र रख रहा हूँ कि कब उसका चेहरा गुलाबी हो जाए।

‡ गुलगूँ=गुलाब जैसे रंग वाला

(39)

आशिक़ कहता है कि अगर माशूक़ अपने इश्क़ की शराब मुझे रोज़ पिलाए तो मैं उसके सारे ज़ुल्म, जफ़ा भूल जाऊँ। मेरे यार ने मेरे दिल की बाँसुरी में इश्क़ के नग़में लिखे हैं। माशूक़ का इश्क़ आशिक़ को इतना दीवाना बना देता है कि उसकी अक़्लो-होश ही ख़त्म हो जाते हैं। आप फ़रमाते हैं कि चाहे कितनी भी किताबें लिख दी जाएँ, लेकिन ख़ुदा के इश्क़ का एक लफ़्ज़ भी इन पन्नों में बयान नहीं किया जा सकता।

जिस रोज़ साक़ी सागर में मय भरे,
आशिक़ वफ़ा के बाद उसकी जफ़ा* याद कब करे। 1

साक़ी हमेशा जाम में मय डालता रहे,
आशिक़ उसके हुस्न के दीदार में यूँ ही बेख़बर रहे। 2

हर शै† पे उसके जलवाए-हुस्न की है चमक,
मुर्दे की ख़ाक भी हो तो फ़िलहाल जी उठे। 3

मेरे दिल की बाँसुरी में इश्क़ के राज़ वही भर रहा है,
नग़मा वो ख़ुद ही गाए, बहाना बाँसुरी का करे। 4

है बेख़ुद, ख़ुदा के इश्क़ में मस्त तो वाजिब है,
मयख़ाना तो मस्त करता नहीं, मय मस्त करे। 5

राहे-इश्क़ में जब अक़्ल रखती है अपना पाँव,
तलवार फ़ना की दस्ते-मौत से टुकड़े उसके करे। 6

गर कोशिश से हज़ार ख़त भी मोईन लिखे,
इक लफ़्ज़ राज़े-इश्क़ का मुश्किल से बयाँ करे। 7

---

* जफ़ा=ज़ुल्म † शै=चीज़

(41)

इस ग़ज़ल में ख़्वाजा साहिब कहते हैं कि इश्क़ की ख़ुशबू दिल की गहराइयों से होती हुई रूह में समा जाती है। लेकिन ऐसा ख़ुदा की रहमत से होता है। हर रूह अपने दिल की तख़्ती पर इश्क़ की तहरीर लिखवा कर लाई है। ख़ुदा के इश्क़ की चिंगारी हर रूह में है जो शोला बन कर ज़ाहिर होती है। इसी लिए बंदे का दिल जुदाई के ग़म में डूब जाता है। कोई भी रूह इश्क़ के दायरे से बाहर नहीं और यह इश्क़ हिंदू-मुसलमान में कोई फ़र्क़ नहीं करता, लेकिन चश्मे-दिल से ही यार का दीदार होता है। इसलिए आप अक़्ल को हवस के फंदे से निकलने की ताकीद करते हैं।

इश्क़ की बू* जो कभी उस जहाँ से आए है,
मग़ज़े-दिल† से होते हुए रूह में समा जाए है।1

ताज़ा हो ऐ मायूस दिल, मिला है तुझे आबे-हयात‡,
ख़ुदा की रहमत का समंदर, मौजे-रवाँ बन कर आया है।2

ऐ अक़्ल निकल अब तू पाँच हवास§ के फंदे से,
मेरा दिलदार इसी राहे-निहाँ¶ से आया है।3

हर रूए-ज़र्रात** हुआ जाता है आफ़ताब की तरह,
आसमाँ से लेकर ज़मीं को गर्दिश में लाने दिलबर आए हैं।4

यार हो दिल के क़रीब फिर क्या करे जाँ उस दम।
जाँ तो ग़ैर की सोहबत में फिर-फिर आ जाए है।5

फूल खिले हैं ख़ूब बाग़े-हुस्न में तेरे,
बुलबुले-दिल आहोज़ारी†† करने आई है।6

---

* **बू**=ख़ुशबू † **मग़ज़े-दिल**=दिल की गहराई
‡ **आबे-हयात**= अमृत जल, सुधा रस § **पाँच हवास**=पाँच इंद्रियाँ
¶ **राहे-निहाँ**=अंदरूनी राह ** **रूए-ज़र्रात**=हर ज़र्रे का चेहरा
†† **आहोज़ारी**=विलाप करना, आह भरना, फ़रियाद करना

आतिशे-इश्क़ है दिलजलों में छुपी,
ज़ाहिर हुई आह फिर आतिश बन जाए है।7

आतिशे-ग़म का तंदूर है दिल में रौशन,
लौ उसी की ज़ुबाँ पे कभी आ जाए है।8

गर हर बाल भी ज़िक्र करे तेरे राज़े-निहाँ* का,
बख़ुदा इक बाल जितना भी न बयाँ कर पाए है।9

इश्क़ की तहरीर† हर इक जिस्म पर है खिंची,
जो अदम‡ से इस फ़ानी जहाँ में आए है।10

हक़ से बाहर नहीं है कोई भी नुक़्ता जहाँ में,
गर वो समझे भी जुदा, घूम के फिर वहीं आए है।11

ग़ैब§ से जैसा बनाया है जिसे ख़ालिक़ ने,
आलमे-ख़ल्क़ में वैसा ही वो आए है।12

फ़र्क़ न करती है असल मक़सद से ये रस्म,
चाहे कोई काबा से, चाहे मंदिर से आए है।13

साज़ ये कैसा परदे में जिसे आशिक़ सुनते हैं,
सुनते ही जिसको दिल झूमने लग जाए है।14

अफ़सोस कि रहेंगे बेख़बर और अंधे क़यामत तक,
जब तक चश्मे-दिल से साहिब नज़र न आए है।15

मेरी गर्म साँसों को देख, कर यक़ीं हो होशियार,
कि इसी आग से ये धुआँ भी आए है।16

आतिशे-इश्क़ जो जलती है मोईन की जाँ में,
बू उसी की तो इस दिलजले से आए है।17

---

* **राज़े-निहाँ**=छुपे हुए राज़ का † **तहरीर**=शाही लेख ‡ **अदम**=परलोक
§ **ग़ैब**=वो रूहानी दुनिया जो आँखों से ओझल है।

(42)

इस ग़ज़ल में आप ताकीद कर रहे हैं कि ग़फ़लत की नींद से बेदार होकर, इश्क़ के ज़रिए मौला के नूर का दीदार हो सकता है। जिसके अंदर यह नूर ज़ाहिर हो जाता है वह बाहरी भेष की मोहताजी से आज़ाद हो जाता है। यह रूहानी राज़ अक़्लमंदों की पहुँच से परे है। इसलिए आप अक़्ल का ग़ुरूर करने वालों से कहते हैं कि गुदड़ी पहनने वाले कामिल दरवेशों से मुँह न मोड़ो।

दिल के झरोखे में दिलदार का नूरी चेहरा चमके है,
उसके हुस्न के आफ़ताब से दरो-दीवार चमके है। 1

बदन से दूर होता है जब अँधेरा तो हर लम्हा
मेरे दिल पे लमआए-अनवार* चमके है। 2

गर जागे ग़फ़लत की नींद से तू तो देखे,
कि ख़ुरशीद† के नूर से दिले-बेदार‡ चमके है। 3

दिल दुनिया से फ़ारिग़ हो तो हुस्ने-यार हो ज़ाहिर,
रूह जब हो जाए बेदार तो रुख़ से जलवा चमके है। 4

इश्क़ ही मज़हब है मेरा, न माने तो देख तू,
कि किस क़दर मेरे ऐतबार का इक़रार चमके है। 5

जमाले-यार गर चाहे तो हर ज़र्रा जहाँ का देख,
कि हर ज़र्रा आईना है जिसमें यार का रुख़सार चमके है। 6

शेर के पंजे की तरह§ अपने नूर की चमक पैदा कर,
कि अक़्ल के दावे से बढ़ कर इश्क़ का नूर चमके है। 7

---

* **लमआए-अनवार**=नूर की किरणें † **ख़ुरशीद**=सूरज भाव ख़ुदा
‡ **दिले-बेदार**=दिल का सचेत होना § **शेर...तरह**=भाव ताक़त

जला दे इश्क़ की आग में सूफ़ी रेशमी ख़िरक़ा*,
कि इसके हर इक तार में सैकड़ों ज़ुन्नार† चमके हैं। 8

चखा ग़म का मज़ा मूसा ने शाने-बेनियाज़ी‡ का,
वरना नूर उसका हरदम हर कोह पे चमके है। 9

हमारे दिलरुबा के हुस्न में जो चाहिए सब है,
फिर भी अपने आशिक़ों को और ज़्यादा तजल्ली§ दे है। 10

कहाँ खुलता है राज़े-इश्क़ होशियारों पर,
इस छुपे राज़ की मस्ती से हर दिले-ख़ुमार चमके है। 11

ऐ दिल ख़ुदा के बंदों के राज़ से न हो जाऊँ मुन्कर¶,
यह ख़ौफ़ है मुझको,
न रहूँ महरूम उस असरार** से जो राज़े-निहाँ†† चमके है। 12

सामने दरवेशों के तू न कर दावा अक़्लमंदों की बुज़ुर्गी का,
ख़िरक़ा और दस्तार में उनकी बुज़ुर्गी चमके है। 13

मोईन बात सुन, ग़म न कर तू दोज़ख़ की आग का,
मूसा ने देखा इसी आग में जमाले-यार चमके है। 14

---

* **ख़िरक़ा**=चोग़ा, लिबास † **ज़ुन्नार**=जनेऊ
‡ **शाने-बेनियाज़ी**=ख़ुदा की बेपरवाही का, इसे ख़ुदा की सिफ़त माना जाता है।
§ **तजल्ली**=रौशनी, नूर ¶ **मुन्कर**=भाव उनकी तरफ़ से मुँह मोड़ना
** **असरार**=भेद, राज़ †† **राज़े-निहाँ**=छुपा हुआ राज़

(43)

इश्क़ में मदहोश आशिक़ को जब अंदर महबूब का दीदार हो जाता है, तब फ़रियाद की जगह लबों पर ख़ामोशी छा जाती है क्योंकि यार से गुफ़्तगू दिल के ज़रिए ही होती है। आप मिसाल देते हैं कि जो तपसी अक़्ल और होशियारी का पल्ला पकड़ कर मुर्शिद की गली में आया था, उसे भी इश्क़ के नशे की बेहोशी में बाहर लाया गया। इस दीवानगी में जब जुदाई की हद पहुँच जाती है तब यार से विसाल होता है।

क्या कहूँ, इस वक़्त कहने का न कुछ होश है,
अक़्ल क़ाबू में नहीं, दिल मेरा बेहोश है।1

शोर था सैलाब* में जब दरिया से था जुदा,
जा गिरा दरिया में जब से वो ख़ामोश है।2

दिल के ज़रिए दोस्त से होती है यूँ गुफ़्तगू,
न ख़बर ज़ुबाँ को है, न कानों को होश है।3

माशूक़े-ग़ैब† ने उठा रखा है रुख़ से नक़ाब,
तू अभी महरम‡ नहीं इसलिए वो हिजाब में है।4

आज रात जानाँ के कूचे से ज़ाहिद चल बसा,
पाँव से चल कर गया था, कंधों पे चढ़ कर लौटा है।5

हिज्र§ की रात जब मेरी जाँ होगी रुख़सत जिस्म से,
होगा तब विसाले-यार आएगी फिर आग़ोश में।6

तल्ख़¶ बातें निकलती हैं जब तेरे लब से कभी,
है ज़हर दुश्मनों को, मेरे लिए मस्तीए-शराब है।7

---

* **सैलाब**=नदी आदि के पानी की बाढ़ † **माशूक़े-ग़ैब**=भाव ख़ुदा
‡ **महरम**=जानकार § **हिज्र**=जुदाई ¶ **तल्ख़**=कड़वी

सीने के अंदर से नायाब मोती बाहर आ रहे हैं,
इलाही राज़ का ये समंदर अब जोश में है।8

जिस किसी को होश है साक़ी उसे दे दे शराब,
मोईन तो अज़ल से ही बेख़ुदी में मदहोश है।9

(44)

आशिक़ कहते हैं कि वे सब परदों से निकल कर माशूक़ का दीदार करते हैं और जब उनके अंदर इश्क़ के नग़में गूँजते हैं तो वे दीवानगी की हालत में नारे लगाते हैं। यह सब ख़ुदा का खेल है, उसी ने इनसान को फ़ानी दुनिया में, इस ख़ाकी जिस्म में भेजा ताकि इश्क़ की बाज़ी लगाकर वह यार का दीदार कर सके।

गरचे सौ परदों में छुपे रहते हैं आशिक़,
होकर हमराह तेरे वो ज़ाहिर हो जाते हैं।1

ग़ैब के नूर से वो करता है रुख़्सार ज़ाहिर,
इसलिए हुस्न के क़ैदी इंतज़ार में नज़र आते हैं।2

इश्क़ का राग छेड़ता है जब रिंदों* का दिल,
वो पैरहन तार-तार करते हुए नारे लगाते आते हैं।3

फ़िदा इस हुस्न पे आज से ही नहीं हैं आशिक़,
जिस तरह भेजा जिसे वैसे यहाँ आते हैं।4

मयपरस्तों के लिए छिड़क रखी है ज़मीं पे मय उसने,
तभी तो आशिक़ पीने को मयख़ाने जाते हैं।5

हुस्न का आफ़ताब चमका है ज़मीं पर आज,
उसके दीदार को ये आशिक़ दुनियाए-फ़ानी में आते हैं।6

जी उठते हैं ये आशिक़ 'कुन फ़यकून'† की तरह,
जब आफ़ताब की तरफ़ वो इन्हें गर्दिश में लाने आते हैं।7

वाह! क्या हैसियत है इस तने-ख़ाकी की,
कि इस बज़्मे-विसाल में लगाने जान की बाज़ी, आशिक़ यहाँ आते हैं।8

---

* **रिंदों**=भाव इश्क़ में मतवाले आशिक़ † **कुन फ़यकून**=क़ुरान शरीफ़ की एक आयत (36:82) के लफ़्ज़ जिनका संबंध सृष्टि की शुरुआत से है। अल्लाह ने फ़रमाया, 'हो जा' (कुन) और 'सृष्टि पैदा हो गई' (फ़यकून)।

(45)

अज़ल के रोज़ से ख़ुदा ने आशिक़ों के दिल में इश्क़ रख दिया था। हालाँकि यह इश्क़ दिल में सदा क़ायम रहता है, लेकिन महबूब के दीदार के लिए दुनिया की दौलत को फ़ना करना होगा, ग़ैरों की मोहब्बत से दिल को ख़ाली करना होगा।

ला-मकाँ से जब ये इश्क़ उतर आता है,
दिल में आशिक़ों के समा जाता है।1

झाड़-पौंछ के दे आज मुझे रूह की शराब,
इस ख़ाक की ढेरी में वो शाहे-जहाँ आता है।2

रूह बन जाता है उस वक़्त सारा ये बदन,
जब जाँ में मेरी, मेरा महबूब नज़र आता है।3

चाहिए कि पहले करें दुनिया की दौलत को फ़ना,
हुस्न महबूब का फिर दिल में नज़र आता है।4

इश्क़ का साज़ बजाया था अज़ल में उसने,
नाम जिस-जिस का था, इस घर में उतर आता है।5

हासिल होता नहीं हर किसी को ये मक़ाम,
मिस्कीं और बेकस दिलों पे ही ये ज़ाहिर होता है।6

निकल जाती है जब ग़ैरों की मोहब्बत दिल से,
तो रहमते-ख़ुदा का समंदर उसमें उतर आता है।7

दिल के छोटे से जहाँ में मेरे, है इक शाही मक़ाम,
उस जहाँ में ही उतरता है गर वो आता है।8

फ़ना हो जाएँगे दो आलम मिट्टी और धूल की तरह,
कि ला-मकाँ में वो हर एक शै* बना देता है।9

---

* **शै**=चीज़

दिल क्या शै है? शाहबाज़ है यह उस आलमे-क़ुद्स* का,
जब हो परवाज़† उसी घर में पहुँच जाता है। 10

मोईन ख़ाक है इस बारगाह के दर का,
तभी तो इस घर में वो उतर आता है। 11

* **आलमे-क़ुद्स**=पाक जहाँ † **परवाज़**=उड़ान

(47)

आशिक़ कहता है कि मैं इश्क़ का दावा इसलिए करता हूँ क्योंकि मुझे हर वक़्त दिल में यार का जलवा दिखाई देता है। ख़ुदा ने मेरी तक़दीर में कायनात के शुरू से ही इश्क़ लिख दिया था और इश्क़ के जो दो लफ़्ज़ मुझे पढ़ाए थे, उसके हमेशा नए मायने नज़र आते हैं।

हर घड़ी इस तूरे-दिल* पर जलवा दिखाई देता है,
तालिबे-दीद† को हर कोने में मूसा दिखाई देता है। 1

अज़ल के उस्ताद से पढ़े थे जो इक दो हरफ़‡,
अख़ीर तक हर घड़ी दिल पे इक नए मायने दिखाई देते हैं। 2

बार-बार कहता हूँ कि छोड़ दे दुनिया और बहिश्त,
कि जन्नत से भी आगे मुझे और जहाँ दिखाई देता है। 3

अज़ल से ही इश्क़ के क़ाज़ी ने जब लिख दी मेरे हक़ में बक़ा§,
मोईन का क्या क़ुसूर गर दुनिया में वो इसका दावा करता है। 5

* **तूरे-दिल**=दिल का पहाड़
† **तालिबे-दीद**=दीदार की ख़्वाहिश करने वाला
‡ **दो हरफ़**=भाव कुन फ़यकून, क़ुरान शरीफ़ की आयत (36:82) जिसमें अल्लाह ने फ़रमाया, 'हो जा' (कुन), और 'सृष्टि पैदा हो गई' (फ़यकून)।
§ **बक़ा**=सदा रहने वाला, अनश्वर, शाश्वत

(48)

जो ख़ुदा के आगे सज्दा करते हैं, ख़ुदा उन पर मेहरबान होता है। आशिक़ ख़ुदा से कहता है कि मरते दम तक जो कुछ भी तेरी तरफ़ से आएगा मैं उसे ख़ुशी-ख़ुशी क़बूल करूँगा। हालाँकि आशिक़ तपसी को नसीहत किया करता था कि किसी बुत के आगे सज्दा न कर, लेकिन जब माशूक़ सामने आया तो उसका सिर ख़ुद-बख़ुद झुक गया। जिनके दिल में जुदाई का तीर चुभ जाता है उसकी रात रोते-तड़पते बीतती है।

वाह क़दमों पर सनोबर* के रखे शमशाद† सर,
देखा ज़ुल्फ़े-यार तो रख दिया मैंने ग़मगीन सर।‡ 1

ज़ुल्म तेरा सहता रहूँगा जब तक सर पर कफ़न न बाँध लूँ,
हरगिज़ तेरे ज़ुल्म से तब तक नहीं उठाऊँगा अपना सर। 2

मना करता था ज़ाहिद को सज्दा न कर बुत को,
यार को देखा तो शरमा कर झुका दिया यह सर। 3

मीठे ख़्वाबों में डूबी है शीरीं§ ख़ुशी से नींद में,
हिज्र में ग़म के टाट पर इधर रखे हुए है फ़रहाद सर। 4

तेरे इश्क़ का तीर मोईन की जान पर कारगर हो गया,
वो मिस्कीं रोता रहा सुबह तक आख़िर झुका दिया सर। 5

* **सनोबर**=सरू का पेड़ † **शमशाद**=लंबा सुंदर चीड़ का पेड़

‡ इस शेअर का अर्थ शम्स बरेलवी ने इस तरह किया है:
मेरे यार की ज़ुल्फ़ ने उसके जड़ पर सर रख दिया।

§ **शीरीं और फ़रहाद**=कुर्दिस्तान के प्रेमी, जिसमें शीरीं शहज़ादी थी और फ़रहाद पत्थर तराशने का काम करता था। शीरीं के वालिद बादशाह को जब अपनी बेटी की मोहब्बत का पता चला तो उसने इम्तिहान के तौर पर फ़रहाद को चट्टानी पहाड़ी खोद कर नहर बनाने के लिए कहा। फ़रहाद रात-दिन चट्टानी नहर बनाने का काम करता और वहीं पत्थरों पर सो जाता। जब फ़रहाद इस काम को पूरा करने ही वाला था तो बादशाह ने उसे शीरीं के मरने की झूठी ख़बर भिजवाई, जिसे सुन कर फ़रहाद ने तेशे से अपनी जान ले ली। शीरीं जब उस जगह पहुँची तो फ़रहाद की हालत देख कर उसने भी उसी तेशे से अपनी जान ले ली।

(49)

ख़ुदा इनसान से कह रहा है कि अभी तो इश्क़ का राज़ ज़रा भी ज़ाहिर नहीं हुआ, अभी तो हमारी दोस्ती का इज़हार भी नहीं हुआ। जो दिल दुनिया में डूबा हो वो ख़ुदा का नूर नहीं देख सकता। इनसान तो दुनिया देख कर हैरान है लेकिन जब उसके बनाने वाले का दीदार होगा तो न जाने क्या होगा। हालाँकि ख़ुदा दूर नज़र आता है पर वो छिपी नज़रों से अपने आशिक़ को देखता है। ख़्वाजा साहिब कहते हैं कि इश्क़ का यह हाल है कि हालाँकि मैं तेरी जुदाई में गर्द बन कर रह गया हूँ, मैंने दोनों आलम छोड़ दिए हैं, फिर भी मुझसे मेरी जान की क़ीमत माँगी जा रही है।

राज़े-उल्फ़त न हुआ ज़र्रा भर ज़ाहिर अभी,
देखी है क्या हमारी दोस्ती, कर और इंतज़ार अभी। 1

मेरे अल्लाह का साया है आसमाँ का आफ़ताब,
कहाँ चमगादड़ देख पाए*, दिल जो है ज़ंगार† अभी। 2

देख कर नक़्श‡ इस फ़ानी दुनिया का, हो गया है हैरान तू,
ठहर ज़रा, नक़्क़ाशी करने वाला होगा ज़ाहिर अभी। 3

लगा ग़ोता दरिया में तू, पर सीप-सा आ जा प्यासा,
प्यास में मेरी तरह हो उस क़तरे का ख़्वाहिशमंद अभी। 4

नाज़ से है वो अलग फिर भी ये दिल कहता है,
देखता है मुझे छुपी नज़रों से वो यार अभी। 5

तेरी जुदाई के ग़म में मैं ख़ाके-गर्द हुआ,
ख़ुदा न ख़्वास्ता हवा तेरे कूचे से उड़ा न ले जाए कहीं। 6

तेरे ग़म में दो आलम छोड़ बैठा मोईन,
फिर भी मुझ जैसे मिस्कीं से नक़्दे-जाँ की तलबी§ है। 7

* **कहाँ..पाए**=भाव मेरी चमगादड़ जैसी पैनी नज़र † **ज़ंगार**=ज़ंग लगा हुआ

‡ **नक़्श**=तस्वीर § **नक़्दे..तलबी**=जान की क़ीमत माँगी जा रही है।

(50)

जिसके दिल में यार के दीदार की सच्ची तड़प होती है उसके लिए ही ख़ुदा का दर खुलता है। अलबेला माशूक़ कभी दीदार देकर दिल लूट लेता है तो कभी जुदाई देकर नए ज़ख़्म दे देता है। जुदाई के ग़म में दिल बरबाद हो जाता है, अक़्ल दलदल में फँसे गधे की तरह दम तोड़ देती है, लेकिन उसकी रहमत से इस ख़ाकी जिस्म से आज़ाद होकर यह दिल आबाद हो सकता है। आशिक़ कहता है कि मेरी रूह को जिस्म के पिंजरे में तूने ही क़ैद किया है, तेरा नूर ही इसकी ख़ुराक है। ग़ज़ल के आख़िर में कहा गया है कि हमेशा फ़क़ीरों और दरवेशों की सोहबत में रहना चाहिए। हमेशा शागिर्दी की राह अपनानी चाहिए। उस्ताद के सामने दम नहीं भरना चाहिए।

दीद के तालिब* के लिए हुस्ने-यार का दर फिर खुल गया,
अपनी शोहरत से वो तौबा इस जहाँ में कर गया।1

चेहरा दिखा कर, दिल चुरा कर छुप गया परदे में वो,
जिगर के पुराने दाग़ पर इक और दाग़ दे गया।2

जल गई यह ख़ाके-हस्ती जुदाई की आग में,
उम्र की पूँजी मेरी वो ग़म के हवाले कर गया।3

इश्क़ ने हमला किया दायें से भी बायें से भी,
अक़्ल का गधा मेरा कीचड़ में आख़िर फँस गया।4

मैंने कहा रुख़ दिखा, उसने कहा जलना है क्या,
मैंने कहा जल जाऊँ या रह जाऊँ अब चाहे जो हो मेरा।5

भरा हुआ मेरा शहरे-दिल† जुदाई के ग़म से बरबाद है,
शायद वस्ल से, ये शहरे-दिल हो जाए आबाद मेरा।6

* **तालिब**=चाहवान † **शहरे-दिल**=दिल का शहर

बाज़ मेरी रूह का फँसा है आबो-गिल* के जाल में,
गर बुलाए ख़ुद इसे आज़ाद हो जाए तन मेरा।7

मैंने कहा नूर से अपने तू बख़्शता है ये वुजूद,
ज़िंदगी है जब तलक, ख़ुराक यही तू रूह को देना।8

जब से तेरे नूर का जलवा दिल पर है छाया,
मेरी तूरे-हस्ती† की बुनियाद को बेजाँ कर दिया।9

बोला वो कि मेरे नाम पे क्यों शेख़ियाँ बघारता है,
सामने उस्ताद की ऊँची दुकाँ के है कब रवा।‡ 10

राहे-ख़ुदा की गर आरज़ू है तो आशिक़ों के साथ बैठ,
ऐ मोईन राहे-फ़क़ीरी में उस्ताद बनने का न रख इरादा अपना।11

* **आबो-गिल**=भाव मिट्टी-पानी का बना नश्वर शरीर।
† **तूरे-हस्ती**=पहाड़ जैसी हस्ती
‡ **सामने...रवा**=मुर्शिद के सामने मुरीद की कोई हस्ती नहीं होती।

(51)

आशिक़ कहता है मेरे महबूब तेरे विसाल का तो क्या कहना, तेरे विसाल का ख़्याल ही बहुत है। हर तरह के ज़ख़्म सह कर भी मैं तेरे इश्क़ में ख़ुश हूँ। मैं नकारा हूँ पर मेरा यार ही मुझे बाकमाल करेगा। तेरी इनायतों का शुक्रिया मुमकिन नहीं, तेरी बंदगी ही मेरे लिए हुक्म है।

मेरे लिए दौलत दो जहाँ की है विसाल तेरा,
विसाल भी क्या चीज़ है, गर दिल में हो ख़्याल तेरा। 1

तख़्ते-शाही पर विसाल नामुमकिन है उसका,
फ़क़ीर को काफ़ी है ढाल तेरे इक नाल* का। 2

सितार-सी ज़ख़्म† सह कर भी तेरे इश्क़ में ख़ुश हूँ मैं,
रहमत है मेरे लिए यह झिड़कना तेरा। 3

साग़रे-दिल पर पड़ा जब तेरे हुस्न का अक्स,
निगाह औ दिल‡ मेरा बन गया आईनाए-जमाल तेरा। 4

कमाले-यार है ऐसा कि नाक़िस§ को करे बा कमाल,
तू नाक़िस है, यही नुक़्स है तेरे कमाल की वजह। 5

है नामुमकिन शुक्रिया तेरी इनायतों का,
बंदगी तेरी है फ़रमान तेरा। 6

मोईन ख़ुदा से हमेशा क्या तलब करता है,
गुनहगार हूँ मैं, मुझे काफ़ी है जमाले-हुस्न तेरा। 7

---

* **नाल**=बैल या घोड़े के ख़ुर में सुरक्षा के लिए लगाया जाने वाला एक लोहे का छल्ला।
† **सितार-सी ज़ख़्म**=सितार को बजाने के लिए उसकी तार पर मिज़राब से चोट करना।
‡ **निगाह औ दिल**=नज़र और दिल
§ **नाक़िस**=नाकारा

(52)

बंदा ख़ुदा से कहता है कि ऐ मौला! मैं हमेशा तेरी रज़ा में राज़ी रहना चाहता हूँ। अगर दु:ख भेजता है तो मैं उसमें भी ख़ुश हूँ। हर हालत में मैं दिल का सब्र माँगता हूँ। लोग जन्नत-बहिश्त की ख़्वाहिश करते हैं, लेकिन मैं तो तुझसे तुझे ही माँगता हूँ। मोईन की यही दुआ है कि वह फ़ना होकर यार से विसाल कर ले।

मैं नहीं कहता कि नियामत* चाहता हूँ या बला†,
चाहता हूँ हक़्क़-तआला‡ की रज़ा मैं तो सदा। 1

गर रज़ाए-हक़ है कि आएँ बला मुझ पर,
तो रहना चाहूँ मश्ग़ूल बला में सदा। 2

चाहती है दुनिया ख़ुदा से रहमतें और नेमतें,
मैं चाहता हूँ बला में सब्र दिल का बेइन्तिहा। 3

ज़ाहिद करते हैं इबादत जन्नत और बहिश्त की ख़्वाहिश से,
मैं चाहूँ इस जहाँ में ख़ुदा से बस ख़ुदा। 4

हर कोई दिल के मुआफ़िक़ माँगते हैं मुराद,
मैं तुझे ही चाहता हूँ, है यही दिली मक़सद मेरा। 5

ज़िंदा रहना चाहता है इस जहाँ में हर कोई,
फ़ना-दर-फ़ना हो जाऊँ है मोईन की ये दुआ। 6

---

* **नियामत**=सुख, ख़ुशियाँ † **बला**=मुसीबतें ‡ **हक़्क़-तआला**=ख़ुदा

(53)

जैसे सोना आग में तप कर खरा हो जाता है, उसी तरह आशिक़ों का दिल इश्क़ की आग में जल कर पाक होता है। इसी लिए वे रात भर जुदाई में आहें भरते हैं। ख़्वाजा साहिब मुर्शिद की सिफ़त करते हुए फ़रमाते हैं कि जैसे मीठा मेवा छाया में तैयार होता है, वैसे ही मेरा दिल मुर्शिद की पनाह में परवरिश पाता है। ख़ुशक़िस्मत है वो दिल जिसकी परवरिश प्यार के हाथों होती है। वहदत की हालत में पहुँचा हुआ आशिक़ मंसूर की तरह नारे लगाता है। आख़िर में आप कहते हैं कि जैसे गुल काँटों में पलते हैं उसी तरह सच्चे आशिक़ दुनिया के ग़म और दुःखों की परवाह नहीं करते।

परवरिश पाता है ये दिल इश्क़े-यार के हिज्र और तपिश में,
कि जैसे होता है सोना ख़ालिस जल कर आग में।1

फ़लक तक आह पहुँचाता रहूँ हर रात, ये ख़्वाहिश है मेरी,
सुबह के दम जैसे हवा परवरिश करती है गुलज़ार की।2

यार की पनाह में फलता-फूलता है ये दिल,
मेवा मीठा होता है वही पकता है जो पाल* में।3

इश्क़ की अंगुलियों का क़ब्ज़ा है इस दिल पे,
ख़ूब है वो दिल जो रहे दिलदार की मुट्ठी में।4

राज़ ये ज़ाहिर हो जहाँ में, ऐसा वो कब चाहे,
इश्क़ तो परवरिश पाता है परदाए-असरार† में।5

हस्ती में जिसकी सिवाय हक़ के कोई ग़ैर बाक़ी न हो,
आशिक़े-मंसूर‡ ऐसा झूलता है सूली पर उसके गुलज़ार में।6

---

* **पाल**=फलों आदि को ढक कर पकाने का एक तरीक़ा।
† **परदाए-असरार**=परदे में छिपा हुआ
‡ **आशिक़े-मंसूर**=मंसूर की तरह इश्क़ करने वाला।

जलवागर* है वहदत इस कसरत† में ऐसे,
जैसे नुक़्ता रहता है सदा गर्दिशे परकार‡ में।7

गुलशने-हक़ीक़त में वो है बेमिसाल गुल की तरह,
परवरिश पाता है जैसे गुल हज़ारों ख़ार§ में।8

ऐ मोईन हासिदों¶ की फटकार का तू ग़म न कर,
आशिक़े-दिल तो पाते हैं ख़ुशी सदा आज़ार** में।9

---

* **जलवागर**=ज़ाहिर होना † **कसरत**=द्वैत ‡ **गर्दिशे परकार**=परकार का दायरे में घूमना
§ **ख़ार**=काँटे ¶ **हासिदों**=हसद करने वाले, दुश्मन ** **आज़ार**=ग़म, दुःख

(54)

कायनात के ज़र्रे-ज़र्रे में ख़ुदा का नूर झलक रहा है। ख़ुदा अपनी सिफ़तों से ही अपने को ज़ाहिर करता है। लोग उसे मंदिरों-मस्जिदों में ढूँढ़ते हैं, पर आशिक़ों को मुर्शिद की महफ़िल में उसका दीदार हो जाता है। जिस रूहानियत के लिए लोग लंबे-लंबे सफ़र तय करते हैं, आशिक़ों को रूहानियत की वो दौलत इश्क़ की राह पर आसानी से मिल जाती है।

जो ताबे-दीद न हो यारे-हुस्न तो अक्से-ज़ात में देख,*
जमाले-यार† को आईनाए-ज़र्रात‡ में देख।1

जमाले-हक़§ है ज़ाहिर उसकी सिफ़तों में,
सिफ़तें हैं आईना, यह अमल की आयतों में देख।2

जिस्म करता है जाँ को ज़ाहिर और जाँ है वही,
वो है नाम में ज़ाहिर उसकी ज़ात में देख।3

तजल्ली¶ से उसकी कोहे-तूर के सौ टुकड़े हुए,
जमाले-हक़ है ज़ाहिर, तूर के हर ज़र्रे में देख।4

मैं ढूँढ़ता था जिसे दुआओं में बरसों से,
मिला वो मुझको यहीं मयख़ाने में देख।5

दो इक जाम ऐसे मेरे हाथ आए इधर,
न तय कर पाया सौ सालों में कोई सालिक**, इन मक़ामों को देख।6

मोईन को इश्क़ ने अक़्लो-होश से है दूर किया,
तमाम वक़्त ज़ाया किया बेहासिल को हासिल करने में देख।7

---

* **जो...में देख**=अगर तुझ में यार के हुस्न की परछाईं देखने की ताक़त नहीं।
† **जमाले-यार**=यार का नूर ‡ **आईनाए-ज़र्रात**=कण-कण में
§ **जमाले-हक़**=ख़ुदा का हुस्न ¶ **तजल्ली**=रौशनी, नूर
** **सालिक**=जो रूहानी राह पर क़दम बढ़ाता है।

(55)

इस ग़ज़ल में इनसान को ताकीद की गई है कि इस मैं-तू को दिल से हटा कर ख़ुदा के हुक्म में रह। दुनिया की हवस को छोड़ कर ख़ुदा की सोहबत की ख़्वाहिश कर।

जब साक़ी आशिक़ को इश्क़ का जाम पिलाता है, तो आशिक़ अपने दिल की हालत का इज़हार करता हुआ कहता है कि तू मुझे गेंद बना कर अपने हुक्म की छड़ी से हर तरफ़ दौड़ाता है, अपना जलवा दिखा कर कहता है कि ज़ुबाँ न हिला। दरअसल तू शमा है, मैं परवाना हूँ। अगर तू अपना राज़ ज़ाहिर करना चाहता है तो तू मुझे मजनूँ की तरह दीवाना बना देता है ताकि मैं सरे-बाज़ार तेरी चर्चा करूँ।

सर पे रख फ़रमाने-हक़*, दुनिया को दिल से कर जुदा,
दिल की तख़्ती धो, मैं और तू को दिल से अपने दे मिटा।1

छोड़ इस हवस को, कर उसकी सोहबत की ख़्वाहिश,
नौ फ़लक† तय कर ला-मकाँ को तू अपना बना।2

हक़ के शहबाज़ों को ऐ जन्नत की हूर, तू अपने बाग़ में न बुला,
जा हवस के ग़ुलाम को अपने जाल में फँसा।3

ले जाकर मयख़ाने में उसने कहा ऐ अलमस्त दीवाने,
थाम अब ये जाम रह तू मेरी याद में सदा।4

क्या वजह थी कि सुलेमान ने कहा बेजान चींटी से,
दरिया में जा घड़ियालों को अपना लुक़्मा‡ बना।5

देकर मंसूर का भरा प्याला तूने, मुझे शोरो शर में डाल दिया,
मालूम है कि मैं मजबूर हूँ, फिर भी कहता है ज़ुबाँ न हिला।6

---

* **फ़रमाने-हक़**=ख़ुदा का फ़रमान † **नौ फ़लक**=नौ आसमान
‡ **लुक़्मा**=ग्रास

मैं गेंद हूँ तू चौगान*, मैं सवारी हूँ तू बादशाह,
हर तरफ़ दौड़ाता है फिर कहता है ज़ुबाँ न हिला।7

क़ुर्बान जाऊँ मैं तुझ पर परवानों की तरह,
ऐ शमा की रौशनी! मुझे भी अपने में दे पनाह।8

गर तू चाहे हुस्न अपना दुनिया को दिखाना,
मजनूँ की तरह मुझे बाज़ारे-दुनिया में घुमा।9

जिस दिन दिखाए तू आशिक़ों को अपना जमाल,
मोईन को सुरमा बनाना आशिक़ों की आँख का।10

* **चौगान**=एक खेल जिसमें घोड़ों पर बैठ कर गेंद खेला जाता है।

(56)

जब तक इनसान अपनी पहचान नहीं करता, तब तक रूहानियत का मोती हासिल नहीं होता। ख़ुदा के दर पर सज्दा करने से ही बुलंदी का फ़ख़्र हासिल होता है। आप इनसानी जामें की सिफ़त बताते हैं कि यह मिट्टी-पानी का पुतला ही नहीं, इसमें ख़ुद ख़ुदा रहता है। इसलिए इनसानी जामा बेशक़ीमती है, इसे ग़फ़लत में बरबाद नहीं करना चाहिए। ख़्वाजा साहिब कहते हैं कि दुनिया की चाहे जितनी नियामतें मिल जाएँ, पर मेरा मक़सद तो ख़ुदा ही है।

जब तक यह दिल ख़ुदशनासी* के दरिया में ग़र्क नहीं होता,
तब तक सीपी को मारफ़त का मोती नहीं मिलता।1

जो उसके दर पे सज्दा करता है आफ़ताब की तरह,
बुलंदी पर पहुँचने का फ़ख़्र हासिल उसे होता है।2

ग़िज़ा† मिलती है रूहों को गुलो-रैहाँ‡ के गुलशन से जब,
बदने-शोरा§ में दाख़िल कब वो माशूक़ होता है?3

मूसा ग़म क्यों करता अजगरे-नफ़्स¶ की शैतानी का,
कि पैग़ाम आया था रब से क्यों तू ख़ौफ़ करता है।4

यह इनसाँ आबो-गिल का पुतला ही नहीं कुछ और भी है इसमें,
कभी रेशम के डोरे में भी कोई ठीकरी पिरोता है।5

हज़ारों क़तरों में बादल के कोई इक बूँद स्वाति की,
शिकम** में सीप के मोती नायाब बनती है।6

* **ख़ुदशनासी**=अपनी पहचान † **ग़िज़ा**=ख़ुराक
‡ **गुलो-रैहाँ**=गुल यानी गुलाब का फूल, रैहाँ यानी ख़ुशबूदार पौधा
§ **बदने-शोरा**=शोरे जैसा शरीर यानी बंजर ¶ **अजगरे-नफ़्स**=भाव मनरूपी साँप
** **शिकम**=पेट

यह पूँजी ज़िंदगानी की बड़ी ही बेशक़ीमती है,
रहा ग़ाफ़िल जो भी इससे, ज़िंदगी बरबाद करता है।7

'मैं उससे मोहब्बत करता हूँ,
वो मुझसे मोहब्बत करता है' इसका शोर क्यूँ?
गर उसकी तरफ़ से मोहब्बत की इब्तदा ही नहीं है।8

ख़ुदा का नूर तेरी पेशवाई* के इंतज़ार में है,
कि जैसे रौशन कुंगुरों की हज़ारों क़तारें हैं।9

हज़ारों तोहफ़े हर लम्हा पहुँचें तो भी ऐ मौला,
हमारी आरज़ुओं में तू ही मक़सूद† होता है।10

मोईन के दिल से हरदम तीर आहों के निकलते हैं,
पर चारा क्या गर निशाने पर तीर नहीं लगता है।11

* **पेशवाई**=स्वागत † **मक़सूद**=उद्देश्य, लक्ष्य

(57)

ख़ुदा की तारीफ़ कुल कायनात में हो रही है। कायनात में जो है, जो हो रहा है और जो होगा, इसका हिसाब-किताब पहले ही लिखा जा चुका है जिसे कोई मिटा नहीं सकता। जो ख़ुदा के हुक्म के बरख़िलाफ़ चलता है उसे सज़ा भुगतनी पड़ती है। ख़ुदा ने अपनी ताक़त से ज़मीं-आसमान पैदा किए हैं, उसी का नूर अलग-अलग सूरतों में ज़ाहिर हो रहा है।

ख़ुदा ने अज़ल के रोज़ से इनसान के अंदर इश्क़ का बीज रख दिया। ख़्वाजा साहिब फ़रियाद करते हैं कि मैं हूँ तो निकम्मा, पर तेरे दर का कुत्ता हूँ जिसका दिल तेरी मेहर की डोरी से बँधा है। मेरे पास कोई अमल नहीं, मैं तो तेरी रहमत के भरोसे हूँ।

फ़लक के फ़र्श पे हो रही है सिफ़त मौला की,
हर शै पर है तहरीर* उसकी,
यह अज़मत† उसी बादशाह को है ज़ेबा‡।1

अपनी तारीफ़ में ख़ुदा ने तख़्ती§ पर लिखा अज़ल से,
कोई मिटा नहीं सकता, इस पे जो है लिखा।2

यह वो सिफ़त है, दिखाती है जो सीधी राह,
हलाक¶ हो जाए जो पकड़े इसके बरख़िलाफ़ राह।3

गर जौहरी करे यक़ीं तेरी सिफ़तों का,
क़यामत के रोज़ इम्तिहान की कसौटी पर कसा जाए।4

* **तहरीर**=फ़रमान, मोहर † **अज़मत**=बड़ाई, महिमा ‡ **ज़ेबा**=शोभनीय
§ **तख़्ती**=तख़्ती से यहाँ संकेत लोहे-महफ़ूज़ की तरफ़ है। अर्श पर एक ऐसी जगह जहाँ सृष्टि में होने वाली सारी घटनाएँ अंकित हैं। सृष्टि के आरंभ में ख़ुदा की ओर से भविष्यवाणियाँ लिखी गईं जिसे कोई पढ़ नहीं सकता और न ही इसमें कोई रद्दो-बदल हो सकता है। ¶ **हलाक**=मारे जाना

दोनों जहाँ के लायक़ है ख़ुदा की ज़ात ही,
वही दुआओं के दस्तावेज़ पे देता है अपनी मोहर लगा।5

हर ज़र्रा कायनात का करता है तेरी सिफ़त बयाँ,
सिफ़त में उस वहदत की लगे हैं सुबहो-मसा*।6

तेरी ज़ात है आयतें† कुन फ़यकून की दलील,
आकाश से पाताल तक सब उसी ने पैदा किया।7

नेकी बदी का मामला सब तुझसे है,
बख़्शता है नेमतें तू बिन माँगे भी।8

अक्स तेरे नूर का है आईनाए-हवास में,
वो रंग एक है पर रंगे-हुस्न सब का जुदा।9

अज़ल के रोज़ किया इश्क़ को इनसाँ के हवाले,‡
रख मुझे मोहब्बत की क़ैद में न करना कभी जुदा ।10

इश्क़ का नग़मा जो सुने आसमाँ कभी,
उतार दे ख़िरक़ा अपना झूम उठे वो भी।11

न माने इश्क़ को जो मुफ़्ती§, बता दे वो यह ज़रा,
मरा जो कुत्ता नमक की खान में, हो गया कैसे नमक ही।12

वो अब कुत्ता न रहा कि हो गया नमक,
बता कि राज़ है क्या, गर सबको नहीं यक़ीं।13

---

* **सुबहो-मसा**=सुबह और शाम † **आयत**=निशानी, ईश्वरीय वाणी (क़ुरान की आयत)

‡ **अज़ल...हवाले**=ऐसा माना जाता है कि कायनात की रचना के वक़्त ख़ुदा ने पेड़-पौधों, पत्थर-पहाड़, जानवर, आदम, फ़रिश्तों सभी को बुला कर उन्हें ज़िम्मेदारियाँ बताईं और पूछा कि इश्क़ की ज़िम्मेदारी कौन लेगा। जब किसी ने हामी नहीं भरी तो आदम इश्क़ की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर लेने को राज़ी हो गया।

§ **मुफ़्ती**=इस्लामी शरीअत के अनुसार फ़ैसला सुनाने वाला जज।

पीर ख़ानक़ाह का हो कोई या फिर मदरसे का,
ना समझे कोई इस बात को, यह राज़ ही रहा।14

ख़ुदा पे यक़ीं के नूर से रौशन जब ये दिल हुआ,
आईनाए-दिल पर पड़ा ग़ुबार शक का साफ़ हुआ।15

नाक़िस* हूँ मैं, हर तरह से कुत्ता हूँ तेरे दर का,
मगर तेरे मेहर की डोरी से वास्ता है दिल का।16

या ख़ुदा मोईन के पास नहीं है कोई अमल,
रहमत तेरी पर ही लाखों उम्मीदें हैं मेरी।17

---

* **नाक़िस**=निकम्मा, बुरा

(58)

इस ग़ज़ल में रूह की तश्बीह मोती से की गई है जो जिस्म रूपी सीपी में छिपा है। जब तक इश्क़ के दरिया में ग़ोता न लगाएँ, यह ज़ाहिर नहीं होता। ख़्वाजा साहिब कहते हैं कि अगर मेरे वुजूद के टुकड़े-टुकड़े भी कर दे तो मेरी हस्ती को कोई नुक़सान नहीं होगा, क्योंकि उसकी बुनियाद तो मोहब्बत है। जब ख़ुदा ने मुझसे विसाल का इक़रार किया है तो मुझे किस बात का डर है। ख़ुदा के आशिक़ ख़ुदा से सिर्फ़ उसका विसाल माँगते हैं। आख़िर में आप कहते हैं कि इश्क़ का यह राज़ ग़ज़ल में बयान नहीं हो सकता।

समंदरे-बक़ा* की गहराई में मैं मोती की तरह था छुपा,
इश्क़ ने ग़ोता लगा कर मुझको ज़ाहिर कर दिया।1

सीप में कब तक छुपूँ, मोती दरियाए-इश्क़ का हूँ,
ख़ुदा का आईना हूँ, क्यों रहूँ अंदर छुपा।2

सीप से बाहर निकल कर ताज की ज़ीनत† बना,
रौशनी पाते हैं मुझसे चाँद और सूरज बेगुमाँ‡।3

चाँद हूँ पर रूए-यार§ का हूँ ग़ुलाम,
शाह हूँ पर हूँ फ़क़ीर इश्क़ की गली का।4

गर दस्ते-मौत टुकड़े-टुकड़े कर दे इस वुजूदे-महल¶ के,
असल बुनियादे-मोहब्बत को ख़लल पहुँचे कहाँ।5

दिल मेरा लेकर कहा, दूँगा एवज़ में वस्ल मैं,
जब दिल ख़रीदा है तो सिला क्यों न देता जाने-जहाँ।6

---

* **समंदरे-बक़ा**=अमरता का समुद्र † **ज़ीनत**=ख़ूबसूरती
‡ **बेगुमाँ**=निःसंदेह, बेशुबहा § **रूए-यार**=यार का मुखड़ा
¶ **वुजूदे-महल**=भाव इस हस्ती को

अहले-दिल* हूँ मौत कर सकती नहीं मुझको फ़ना,
वस्ल का पैग़ाम मिले जब, क्यों हो मुझको ख़ौफ़े-जाँ।7

अपनी ही मर्ज़ी मुताबिक़ माँगते हैं सब मुराद,
ज़ाहिद चाहें अमल नेक, दीदार चाहें आशिक़ाँ।8

अर्श-कुर्सी† से नहीं जब हल हुआ यह राज़े-इश्क़,
ऐ मोईन फिर इक ग़ज़ल में किस तरह हो यह बयाँ।9

---

* **अहले-दिल**=दिल वाला † **अर्श-कुर्सी**=आठवाँ आसमान

(60)

इस ग़ज़ल में ख़ुदा के नूर का, उसके जलवे का ज़िक्र किया गया है। दरअसल रूह वह आईना है जिसमें ख़ुदा का अक्स दिखाई देता है। जब यार के नूरानी चेहरे का दीदार होता है तो अक़्ल की आँख चुँधिया जाती है, होश क़ाबू में रखना मुश्किल हो जाता है। विसाल की उम्मीद में जुदाई के दर्द को सहते हुए आशिक़ का अपना वुजूद ख़त्म हो जाता है, सिर्फ़ ख़ुदा ही रह जाता है।

आईनाए-रूह में ख़ुदा का अक्स देखा,
आफ़ताब की तरह उसे पानी में उतरते देखा। 1

अक़्ल की आँख हुई चकाचौंध जब यार का नूरानी चेहरा देखा,
बावजूद इसके कि सौ बार उसे ख़्यालों के परदे पर देखा। 2

आईनाए-जाँ पे हुआ ज़ाहिर वो नूर ऐसा,
रूबरू था वो ख़ुदा फिर भी मैंने वो मिसाली देखा*। 3

होश गर गुम हों मेरे तो जानो मुझे मजबूर,
कि अजब आईने में मैंने हुस्ने-जमाली देखा। 4

मस्त आशिक़ हूँ मैं, अज़ल से ही मस्ती में आया हूँ यहाँ,
क़ायम रखना होश को, काम यह मुश्किल देखा। 5

मिट गई हस्ती मेरी रह गई हस्ती ख़ुदा की,
उम्मीदे-वस्ल में दर्दे-हिज्र† को सहते देखा। 6

महफ़िले-वहदत मुझे छोटी से छोटी नज़र आई,
मगर राह की तंगी से जो गुज़रा तो न पूछो क्या क्या देखा। 7

* **मिसाली देखा**=ऐसा माना जाता है कि पैग़ंबर मुहम्मद साहिब ने दो कमान की दूरी पर ख़ुदा के नूर को देखा था। † **हिज्र**=जुदाई

तेरे दीदार के बियाबान में फ़रिश्तों का वुजूद,
बिन परों के छोटे मच्छरों-सा देखा। 8

अज़ल से नूर के पीछे मोईन ज़र्रे-सा चलता गया,
इसका चढ़ना-उतरना, घटना-बढ़ना कुछ न देखा। 9

(61)

ख़ुदा इनसान की हौसला अफ़ज़ाई करते हुए कहता है कि मैं तेरा वफ़ादार यार हूँ, तू मेरी ओर ध्यान तो दे। अपने गुनाहों की फ़िक्र न कर, तेरे बीमार दिल का हकीम मैं ही हूँ। मैं कहीं इबादतख़ाने में नहीं छिपा, मेरा जलवा हर जगह ज़ाहिर है। साक़ी भी मैं हूँ, मय की मस्ती भी मैं हूँ, तेरी तनहाई में हमराज़ भी मैं हूँ।

मेरी ओर क़दम तो बढ़ा तेरा यार वफ़ादार हूँ मैं,
जो भी तेरे पास है ला, सबका ख़रीदार हूँ मैं।1

दिल तेरा गर ठान ले देखने को तमाशा मेरा,
तो आ मेरी तरफ़ कि बरसरे-बाज़ार* हूँ मैं।2

गुनाहों के ग़म से गर तू रहता है उदास,
आ इधर कि तबीब† हूँ दिले-बीमार का मैं।3

सज्जादों‡ की तरह तनहाई में नहीं मेरा मुक़ाम,
साक़ी हूँ मयख़ाने का, मुतरबा भी मैं हूँ ख़ुमार भी मैं§।4

इबादतगाहों में तू करता है मेरी तलाश,
इन परदों से निकल, आ सरे-बाज़ार हूँ मैं।5

ताज शाही की हवस हो तुझे या चाह ख़िरक़ाए-फ़क़ीरों¶ की,
बाँध ले सर कि तेरा ख़िरक़ा और दस्तार हूँ मैं।6

---

* **बरसरे-बाज़ार**=ख़ुला हुआ, ज़ाहिर, सामने † **तबीब**=हकीम

‡ **सज्जादों**=बहुत ज़्यादा सज्दे करने वाले

§ **मुतरबा...मैं**=नग़मा गाने वाला भी मैं हूँ और उस नग़मे से पैदा होने वाली मस्ती भी मैं हूँ।

¶ **ख़िरक़ाए-फ़क़ीरों**=फ़क़ीरों का लिबास, फ़कीरों की गुदड़ी

बेदिली भूल जा, अपनी ग़रीबी पे न रो,
ऐ दिलबर हर जगह तेरे लिए दिलदार हूँ मैं।7

राज़े-दिल न कहना किसी से तू हरगिज़,
रूह की तनहाई में तेरे राज़ का राज़दार हूँ मैं।8

दायरे में नुक़्ते की तरह तू कब तक काटेगा चक्कर,
बैठ मरकज़* पर तेरे गिर्द परकार हूँ मैं।9

मोती की खान की तरह है तेरी ख़ाके-हस्ती,
हक़ीक़त के समंदर की तह में मोती नायाब हूँ मैं।10

आतिशे-इश्क़ ने लकड़ी-सा जलाया है मोईन,
बन के चिंगारी कहता हूँ कि अब आग हूँ मैं।11

---

* **मरकज़**=धुरी, केंद्र

(62)

आशिक़ ख़ुदा से दीदार की तलब रखते हुए कहता है कि मेरी रूह जिस्म की क़ैद से आज़ाद होकर वापस शाही महल की ओर उड़ान भरना चाहती है। शराब की मस्ती में आशिक़ वाइज से भी कह उठता है कि तू मुझे जन्नत की ओर न बुला, तुझे इल्म ही नहीं कि मैं कहाँ जा रहा हूँ। अपने ख़िज़्र से भी कहता है कि मैं अपनी हस्ती को ख़त्म करके इश्क़ के समंदर में ग़रक़ हो चुका हूँ। ख़ुदा का नूर ज़ाहिर होने पर अब मेरा दिल पाक हो चुका है।

चेहरा दिखा कि सूली पर अब चढ़ गया हूँ मैं,
मेरी मस्ती बढ़ा कि हुस्न का दीवाना हुआ हूँ मैं।1

पाक बुलंदियों के परवाज़* से महरूम† हुआ हूँ मैं,
कि जिस्म में जब से रूह को बाँधे हुए हूँ मैं।2

आशियाना शहबाज़ का था कभी बुलंदियों पर,
ख़ाके-जिस्म की वजह से दलदल में फँसा हूँ मैं।3

ऐ वाइज, यार के कूचे से जन्नत में न बुला,
ज़रा देख तू, कहाँ से कहाँ जा रहा हूँ मैं।4

मय की मस्ती से मतवाला हूँ न आज से मैं,
बेख़ुद और मस्त रोज़े-अज़ल‡ से ही हूँ मैं।5

देखा है मैंने बुत में भी बुतगर के हुस्न को,
वहदत असल है यही, इसी को पूजता हूँ मैं।6

* **परवाज़**=उड़ान † **महरूम**=ख़ाली रहना, वंचित रहना
‡ **रोज़े-अज़ल**=अनादि काल से

मैं ग़रक़ हो चुका हूँ मोहब्बत के समंदर में,
ऐ ख़िज़्र*, अपनी हस्ती की कश्ती को फ़ना कर चुका हूँ मैं।7

नूरे-तजल्ली† से हो चुका है दिल ज़र्रा-ज़र्रा,
दिल की दुनिया को फिर भी दुरुस्त पा रहा हूँ मैं।8

जब हुआ ज़ाहिर साक़ीए-बाक़ी‡ का नूर,
अब जामे-दिल को ज़ंग से साफ़ पा रहा हूँ मैं।9

छोड़ दूँ आस दुनिया की ताकि आस्तीन झाड़ कर रुख़सत हो जाऊँ,
अपने अश्कों से तो पहले ही दुनिया से हाथ धो चुका हूँ मैं।10

ऐशपरस्ती हुई रुख़सत अब मोईन के दिल से,
जब से सीने में ग़म को बिठाए हुए हूँ मैं।11

* **ख़िज़्र**=एक पैग़ंबर † **नूरे-तजल्ली**=नूर की रौशनी
‡ **साक़ीए-बाक़ी**=लाफ़ानी साक़ी भाव ख़ुदा

(63)

दिलबर के दीदार का आशिक़ न तो दुनियावी दौलत की तमन्ना करता है और न ही दुनिया की दोस्ती चाहता है। उसे सिवाय यार के न तो इस जहान की ऐशपरस्ती चाहिए और न जन्नत का गुलज़ार। उसके दिल में सिर्फ़ माशूक़ की जुदाई की कसक और चुभन है। वह तो बस महबूब की ख़्वाहिश ही दिल में रखता है।

जब यार तू मेरा है, मैं कोई ग़ैर न चाहूँ,
ग़ैर जो दिल मेरा ले ले ऐसा कोई दिलदार न चाहूँ। 1

तेरी मोहब्बत की कसक का काँटा है जो मेरे दिल में,
उसकी ही चुभन चाहूँ, मैं गुलज़ार न चाहूँ। 2

गर जलवा दिखा दे, छोड़ दूँ दौलत दो जहाँ की,
दीदार का आशिक़ हूँ दीनार न चाहूँ। 3

राज़ तेरे किसी ग़ैर पे क्यूँ खोलूँ,
तू जो जाने मैं जानूँ, इज़हार न चाहूँ। 4

ग़ैरों का मेरे दिल में मुश्किल है गुज़र होना,
इक तेरे सिवा मैं कोई यार न चाहूँ। 5

ख़ून पीता हूँ हाथों से तेरे, मगर ख़ुश हूँ,
तेरे लिए ऐ दिलबर मैं कोई आज़ार* न चाहूँ। 6

मैं मय नहीं पीता कि तू है मेरा साक़ी,
मगर जिस्म की इक रग भी मैं होश में न चाहूँ। 7

* आज़ार=दुःख, ग़म

आशिक़ तेरा ग़ैरों से कैसे यारी कर सकता है,
मैं तो कौसरे-जन्नत* का गुलज़ार भी न चाहूँ। 8

ग़ाफ़िल तलब रखे दुनिया की, आक़िल† चाहे आक़बत‡,
मैं आशिक़ बेदिल हूँ, सिवाय यार के कुछ और न चाहूँ। 9

हस्ती को छोड़ अपनी, छोड़ मोईन ये रुतबे,
जिसमें न समाए सर वो दस्तार न चाहूँ। 10

* **कौसरे-जन्नत**=जन्नत का एक चश्मा † **आक़िल**=अक़्लमंद
‡ **आक़बत**=परलोक

(64)

आशिक़ अपने दिल की बेसब्री और बेताबी का इज़हार करते हुए ख़ुदा को अपना जलवा दिखाने के लिए कहता है। मूसा की तरह इसका हश्र क्या होगा, इसकी उसे फ़िक्र नहीं। यार के दीदार के लिए दर-बदर भटकने के बाद ख़ुदा का नूर उसके दिल पर लहराने लगा है। इश्क़ का नूर इस क़दर चमक रहा है कि दिल रौशन है और उस पर रब्बी राज़ ज़ाहिर हो गया है।

इश्क़ का नूर चमका मेरे दिल पर, दिल रौशन हो गया,
नूरे-दिल से मेरा ज़ाहिरो-बातिन* रौशन हो गया।1

जिस्मो-जाँ पर आग-सा वो नूरे-रब ज़ाहिर हुआ,
तूरे-दिल की तरह सब राज़े-दिल कहने लगा।2

नूरे-हुस्न यार का जब चमका आसमाँ की बुलंदी पर,
मेरे दिल के ज़र्रे-ज़र्रे पे नूर वहदत का छा गया।3

दिल हुआ बेताब मेरा, ढूँढ़ता था यार को,
मूसा की तरह रब्बि-अरिनी† ये दिल कहने लगा।4

लनतरानी‡ के सबब§ मूसा को ज़ख़्म खाना पड़ा,
बेधड़क दिल ने मेरे भी वही आवाज़ लगा दी, है इसे मरहबा¶।5

उसके दर पर जो गया जिगर उसका छलनी हुआ,
दिल ढूँढ़े वो मेरी तरह उसकी तरफ़ जो भी बढ़ा।6

उस चाँद से मुखड़े के लिए दिल यह दर-बदर फिरे,
कि ज़ुल्फ़ की ज़ंजीर में गिरफ़्तार दिल उसने किया।7

---

* **ज़ाहिरो-बातिन**=अंदर और बाहर † **रब्बि-अरिनी**=रब्ब मुझे अपना जलवा दिखा
‡ **लनतरानी**='तू मेरा जलवा नहीं देख सकता' यह उस भविष्यवाणी के शब्द हैं जब हज़रत मूसा ने ख़ुदा का नूर देखने के लिए प्रार्थना की थी।
§ **सबब**=वजह से ¶ **मरहबा**=शाबाश

सुबह हुई तो नूरे-तजल्ली* दिल पे लहराने लगी,
नूर जब हद से बढ़ा तो सहरे-दिल† पर छा गया।8

जब बढ़ा उसकी तरफ़ तो परदों को चाक‡ कर दिया,
शुक्र है अल्लाह का, पूरा हुआ मक़सद मेरा।9

मैं कहता हूँ पता उसका मिले तो पाऊँ सुकूँ,
देखा जब उसको तो दिल आहोज़ारी करने लगा।10

इक घड़ी मजलिसे-मोईन में आकर बैठ और देख,
वो देते हैं दिल के समंदर से नायाब मोती बेबहा§॥11

---

* **नूरे-तजल्ली**=नूर की रौशनी † **सहरे-दिल**=दिल के रेगिस्तान
‡ **चाक**=फाड़ना § **बेबहा**=बहुत क़ीमती

(65)

इस ग़ज़ल में समझाया गया है कि जो कुछ है, अल्लाह ही अल्लाह है। उसकी सिफ़तें ही उसके सबूत हैं। अपनी ख़ुदी को खोकर ही उसे पाया जा सकता है। रब का आशिक़ इश्क़ की ख़ातिर कोई भी मुसीबत झेलने से घबराता नहीं। वह पल-पल उसकी रहमत का शुक्रगुज़ार होता है।

ख़ुदा की सिफ़त को ख़ुदा से जुदा नहीं देखा,
जो देखा सिवाय ख़ुदा के कुछ न देखा।1

न कह कि जलवाए-ख़ुदा फ़ानी आँख क्या देखे,
यही है ख़ूब कि ख़ुद का पता नहीं देखा।2

आँख तेरी हो गर धुँधले आईने की तरह,
न खा ग़म कि उसका नूर नहीं देखा।3

न पूछ मुझ से कि उस चाँद को कहाँ देखा,
गया हूँ जिस जगह सिवा उसके नहीं देखा।4

बला जो चाहे जाँ पे मेरी भेज दे अल्लाह,
कि मैंने तेरे दीदार में बला को बला नहीं देखा।5

किसी तरह तू मुझे याद कर मैं राज़ी हूँ,
मिला तुझसे सिवाय रहमत के कुछ और नहीं देखा।6

किसी भी तरफ़ मुझे ले चल, है हज़ार शुक्र तेरा,
कि ख़ुद को तुझसे दम भर भी जुदा नहीं देखा।7

मोईन की जाँ के लिए बुलंदी है औ अदना*,
सिवाय मुस्तफ़ा† के उसका कोई फ़र्मांबरदार‡ नहीं देखा।8

---

* **औ अदना**=ख़ुदा की और नज़दीकी † **मुस्तफ़ा**=पैग़ंबर मुहम्मद साहिब
‡ **फ़र्मांबरदार**=ताबेदार, आज्ञाकारी

(66)

इश्क़ में डूबे हुए आशिक़ को न तो इस जहान की चाहत है और न ही ग़ैरों का फ़िक्र। उसे न जन्नत की हूरों और फ़रिश्तों की ख़्वाहिश होती है और न ही दोज़ख़ का ख़ौफ़ रहता है। दिल सिर्फ़ माशूक़ के लिए पुकार करता है। जिस तरह परकार मरकज़ या नुक़्ते के चारों ओर घूमती है, इसी तरह आशिक़ का मरकज़ उसका माशूक़ होता है।

जब उससे मैं पैवस्ता* हूँ ग़ैरों से हूँ हरदम जुदा,
अक़्लो-फ़हम को बाँध कर एक कर दिया।1

दोज़ख़† का क्या डर मुझे, क्या ख़ौफ़ बर्ज़ख़‡ का,
उम्मीद और ख़ौफ़ सिर्फ़ उसी का है, ग़ैरों का मुझे फ़िक्र क्या।2

मालिके-दोज़ख़ से कह मुझसे न रखे कोई उम्मीद,
जलता हूँ उसके इश्क़ में सर से पाँव तक हर लम्हा।3

ऐ जन्नत के हूर और फ़रिश्तो, परदे में ये क्या शोर है,
मैंने तो अज़ल के रोज़ से ही हुस्न उसका है देखा।4

फ़रिश्तों की न हूरों की, न ख़्वाहिश अर्श की मुझे,
ये सब न चाहूँ, कि इश्क़ में हूँ मैं मुब्तिला§।5

ज़मीन पर शहबाज़ हूँ इश्क़ का, दाना चुगने वाला मुर्ग़ नहीं,
शिकार इश्क़ का करने बादशाह के हाथ से उड़ा हूँ।6

मैं बुलबुल, गुल तलब हूँ इस गुलिस्ताँ में,
मगर उस गुल के लिए दिल फिर भी करता है आहो-बक़ा¶।7

---

* **पैवस्ता**=जुड़ा होना † **दोज़ख़**=नरक
‡ **बर्ज़ख़**=मौत और क़यामत के दिन के बीच की अवस्था।
§ **मुब्तिला**=डूबा हुआ ¶ **आहो-बक़ा**=चीख़-पुकार, फ़रियाद

उस हसीन चेहरे वाली लैला ने हँस कर कहा,
ऐ मजनूँ मेरे, मैं तनहाई में बैठ गई हूँ।8

यक़ीन न कर पाए ये ज़मीं, ये आसमाँ,
कि ऐसी बुलंदी को मैं दिल में समोए हुए हूँ यहाँ।9

कभी दरम्याँ मरकज़ के हूँ, कभी नुक़्ता हूँ मैं बेनिशाँ,
चारों ओर तेरे घूमूँ मैं परकार की तरह।10

ऐसी पिलाई जामे-मय* कि मयख़ाना ख़ाली कर दिया,
पर ख़ौफ़ से ग़ैरों के, मैं होठों पे मिट्टी मल गया।11

बाँसुरी यह कह रही है, ऐ मोईन उठ और ज़रा नज़दीक आ,
मुँह सूँघ मेरा, तू देख मैं दरअसल पीए हूँ क्या।12

* **जामे-मय**=प्याले से शराब

(67)

इस ग़ज़ल में ख़्वाजा साहिब कह रहे हैं कि जब एक बार ख़ुदा का जलवा ज़ाहिर हो जाता है तो आशिक़ों को जन्नत के फ़रिश्तों की चाहत नहीं रहती। ख़ुदा का दीदार ही उनकी ख़ुराक होती है। ख़ुदा की रहमत ही उन्हें पालती है। उन्हें जुदाई का दर्द नहीं रहता। ख़ुदा के दीदार में शक-सबूत, कुफ़्र-ईमान, ग़ुरूर-गुमराही, धमकी-ख़ौफ़, बुराई-अच्छाई, इश्क़ो-अक़्ल, दोस्ती-दुश्मनी सभी तरह की कसरत, सारे फ़र्क़ ख़त्म हो जाते हैं।

ख़ुदा की आरज़ू में हूँ, हूरों-ग़िल्माँ* से फ़ारिग़ हूँ,
दो आलम की हर इक नेमत से फ़ारिग़ हूँ।1

मिली है ख़ुराक मुझे ख़ुदा के ही दस्तरख़ान से,
ऐसी है ख़ुराक कि आबो-नान† से फ़ारिग़ हूँ।2

दायाए-रहमत‡ पालती है जाँ के बालक को,
इसी लिए शीरो-शहद, हिंडोले, माँ के दूध से फ़ारिग़ हूँ।3

फूल की तरह मैंने खाए हैं दिल पर दाग़,
तभी तो चमने-वस्ल में हिज्र§ के दाग़े-दिल से फ़ारिग़ हूँ।4

उसके लबों से पाई मैंने लाफ़ानी¶ ज़िंदगी,
कि ख़िज़्र** और चश्माए-हैवाँ†† से फ़ारिग़ हूँ।5

ऐ वाइज, आशिक़ों को जन्नत का लालच न दे तू,
कि उसकी दीद में जन्नतो-बहिश्त से फ़ारिग़ हूँ।6

इश्क़ पे फ़िदा बुलबुल हूँ, मगर क़ैदे-हस्ती से आज़ाद हूँ,
निकल कर तन के फंदे से, जाँ की कशमकश से फ़ारिग़ हूँ।7

* **हूरों-ग़िल्माँ**=परियाँ और वे सुंदर बालक जो बहिश्त में धर्मात्माओं की सेवा के लिए रहते हैं। † **आबो-नान**=पानी-रोटी ‡ **दायाए-रहमत**=रहमत की आया यानी रहमत की ख़ुराक § **हिज्र**=जुदाई ¶ **लाफ़ानी**=सदा रहने वाली, शाश्वत
** **ख़िज़्र**=पैग़ंबर †† **चश्माए-हैवाँ**=अमृत का चश्मा

मैं कुन फ़यकून* की तंग राह से आ चुका बाहर,
पहुँच कर फ़िज़ाए-ला-मकाँ† में आलमे-इमकाँ‡ से फ़ारिग़ हूँ। 8

नज़र आरिफ़ों की टिक जाती है ज़ाहिर और मशहूर पर,
कि मैं नूरे-इर्फ़ान§ की ज़ाहिरनुमाई से फ़ारिग़ हूँ। 9

मैंने ऐनुल यक़ीन¶ और हक़्क़ुल यक़ीन** को देखा है,
इसी लिए दलीलों, शक और सबूतों से फ़ारिग़ हूँ। 10

नहीं है आलमे-लाहूत†† में किसी ग़ैर पर भरोसा
सिवाय अल्लाह तआला के,
कि ख़ुद को देखने‡‡ और नाम के ऐलान§§ से फ़ारिग़ हूँ। 11

उसे देखा है या तो परदों में या वो है रूबरू मेरे,
कि अब इश्क़ो-अक़्ल, कुफ़्र और ईमान से फ़ारिग़ हूँ। 12

पीठ पर अपनी बोझ अमानत का उठाए हुए हूँ मैं,
कि इनसाँ के ज़ुल्म, ग़ुरूर, गुमराही से फ़ारिग़ हूँ। 13

वक़्ते-जहाँ के सब बादशाह मेरे हुक्म में हैं,
कि हर धमकी और दरबान के ख़ौफ़ से फ़ारिग़ हूँ। 14

नहीं परदा कोई अब आशिक़ औ माशूक़ के दरम्याँ,
कि विसाले-यार होकर हर इक दुश्मन से फ़ारिग़ हूँ। 15

बुरा कहती है दुनिया मोईन को तो कहने दो उसे,
कि बुराई और अच्छाई की हर चुभन से फ़ारिग़ हूँ। 16

---

* **कुन फ़यकून**=ख़ुदा ने कहा 'हो जा' (कुन) और 'सृष्टि पैदा हो गई' (फ़यकून)।
† **ला-मकाँ**=समय और स्थान की सीमा से परे ‡ **आलमे-इमकाँ**=इस दुनिया से
§ **नूरे-इर्फ़ान**=अपने आप की पहचान ¶ **ऐनुल यक़ीन**=आँख से देख कर यक़ीन करना
** **हक़्क़ुल यक़ीन**=हक़ पर यक़ीन करना †† **आलमे-लाहूत**=मुक़ामे फ़ना
‡‡ **ख़ुद को देखने**=भाव आत्म ज्ञान §§ **नाम के ऐलान**=नाम की पहचान

(68)

आशिक़ कहता है: मैं इश्क़ के समंदर का मगरमच्छ हूँ, जिस्म की क़ैद में कैसे रहूँ? ऐ साक़ी तू मुझे विसाल की शराब पिला कर हिज्र के दुःखों से बचा ले। मेरी आँखें और सब्र नहीं कर सकतीं, इसलिए जल्दी दीदार का सुरमा डाल।

ख़्वाजा साहिब कहते हैं कि अगर इनसान अपने फ़ानी जिस्म से ऊपर उठ जाए, हवस से अपना हाथ खींच ले तो रूहानी बुलंदी पर पहुँच सकता है, उसे ईसा जैसी अवस्था हासिल हो सकती है। इस अवस्था में पहुँच कर अक़्ल, चतुराई का कोई काम नहीं रहता, इनसान केवल ख़ुदा के फ़रमान में रहता है। वह तो दुनिया में रहते हुए जुदाई के ग़म में डूबा रहता है।

मगरमच्छ हूँ बहरे-इश्क़* का, दम कब तक मैं खींचे रखूँ,
तोड़ कर ये तन की कश्ती दोनों आलम को समेटे हुए हूँ। 1

साक़ीया साग़रे-जाँ† को ज़रा मय वस्ल की चखा,
हर घड़ी ख़ूने-दिल कब तक मैं पीता रहूँ। 2

ख़ाक हुई मेरी आँखें, सबा‡ ला गर्द अपनी राह की,
कि इन आँखों में सुरमा इस गर्द का भरूँ। 3

उसके हुस्ने-नाज़ के आगे सज्दा करे क़ुद्सी§ भी,
गर नक़ाब आबो-गिल¶ का इनसाँ के रुख़ से खींच लूँ। 4

तन के महल में तख़्ते-दिल पर बना लूँ अपना मुक़ाम,
शामियाना अर्श** तक ताने हुए आसमाँ पे हूँ। 5

---

* **बहरे-इश्क़**=इश्क़ के समुद्र का † **साग़रे-जाँ**=जाँ के सागर को
‡ **सबा**=सुबह की हवा § **क़ुद्सी**=पाक रूह
¶ **आबो-गिल**=मिट्टी, पानी ** **अर्श**=नौवाँ आसमान

हाथ लालच का गर दो जहाँ से मैं खींच लूँ,
तो सातवें आसमाँ की बुलंदी पे क़दम अपना रखूँ।6

फ़ना की क़ैंची से अगर मैं जिस्म की गुदड़ी काट दूँ,
तो ईसा की सूई में डोरा भी डाल सकता हूँ।7

इस ख़ुशी में झूमता हुआ जा रहा हूँ आसमाँ की तरफ़,
कि ग़मज़दों* के कंधों से नीली चादर खींच लूँ।8

अक़्ल ने पूछा कहाँ तक इश्क़ में पहुँचा है तू,
बोला कि अल्लाह जाने मैं तो उसके फ़रमान में रहता हूँ।9

साक़ी आ अपने चाहने वालों को दे ख़ुशी का जाम तू,
दरम्याँ हूँ पीने वालों के, मगर ग़म की तलछट† पीता हूँ।10

इश्क़ की लहरें मोईन में दम ब दम हैं उठ रहीं,
कि फ़ानी दुनिया में उसके राज़ बयाँ करूँ।11

* ग़मज़दों=ग़मगीन लोगों
† तलछट=किसी भी तरल पदार्थ में नीचे बैठने वाला अंश; यहाँ भाव ग़म की गहराई, उसकी तीव्रता से है।

(69)

इस ग़ज़ल में कहा गया है कि आशिक़ का मक़सद एक ही होता है और वह है यार के हुस्न का दीदार। उसे दिल के आईने में, शराब के प्याले में, हर जगह यार का अक्स ही नज़र आता है। क़यामत तक का सब्र न रखते हुए आशिक़ महबूब से विसाल की ही तलब रखता है।

ऐ यार! दीदारे-हुस्न का तलबगार हूँ मैं,
मक़सद मेरा है तू, तुझे ही देखता हूँ मैं।1

आँखें मेरी हैं तेरे ही दीदार के लिए,
गर रुख़ न दिखाए तू, दर तेरा देखता हूँ मैं।2

मेरे साक़ी के जमाल का ही अक्स नज़र आता है,
जाम* औ शराब के आईने में जब देखता हूँ मैं।3

चश्मे-दिल से तुझे देखा है कुछ इस तरह,
कि ज़ाहिरी† आँख से न तुझे पहचानता हूँ मैं।4

हज़ारों दर खुले हैं दिल में दीदारे-यार के लिए,
जिस दर से चाहता हूँ तुझे देखता हूँ मैं।5

देखूँ जो तुझको राह में मर जाऊँ वहीं,
मौत से तो ख़ूब है कि तुझे देखता रहूँ मैं।6

तेरा विसाल चाहता है आज ही मोईन,
क़यामत तक इंतज़ार का सब्र नहीं रखता मैं।7

* जाम=प्याला † ज़ाहिरी=बाहर की

(70)

आशिक़ कहता है कि ऐ मौला, जब मेरे जिस्म का रोम-रोम तेरे दीदार के लिए बेक़रार हुआ तब कहीं तेरे जलवों की मस्ती का एहसास हुआ फिर मैं तेरे नूर में मिल कर नूर हो गया। जब इश्क़ में दिल पाक हुआ तब रब्बी राज़ मुझ पर ज़ाहिर हुए। दुनिया कहती है हालाँकि इश्क़ की राह बड़ी मुश्किल है लेकिन यह राह ख़ुदा की रहमत से भरी है।

ऐ मेरे मौला मैं तेरे नूर में फ़ानी* हुआ,
मौला के नूर से मैं ज़ाते-सुबहानी† हुआ।1

मेरे जिस्म का ज़र्रा-ज़र्रा तेरे दीदार को बेक़रार हुआ,
तेरे जलवों से मैं मस्ते-रब्बानी‡ हुआ।2

ज़ुल्मते-हस्ती से जब हुआ बेनियाज़§,
नूरे-हस्ती से नूर मौला का हुआ।3

इश्क़ ने आईनाए-दिल को जब ग़ैरियत के ज़ंग से धोया,
फिर छुपे राज़ों से मैं वाक़िफ़ हुआ।4

नफ़्स की ज़ुल्मत मिटी जल कर मैं रौशन हुआ,
कि जल कर तेरे आतिशे-इश्क़ में मैं नूरानी हुआ।5

ख़ल्क़ कहती है कि यह रास्ता है बहुत दुश्वार,
मैं गया जिस राह पर फ़ज़्ले-रब्बानी¶ हुआ।6

पाक रूह के नूर से रौशन हुआ हरदम मोईन,
कुछ ख़बर नहीं मुझको कैसे मैं ईसा का सानी** हुआ।7

---

* **फ़ानी**=ख़त्म होना, फ़ना होना † **ज़ाते-सुबहानी**=ख़ुदा जैसा
‡ **मस्ते-रब्बानी**=ख़ुदा में मस्त यानी ख़ुदा का दीवाना
§ **ज़ुल्मते...बेनियाज़**=जब अपनी हस्ती के अँधेरे से बाहर निकला
¶ **फ़ज़्ले-रब्बानी**=ख़ुदा की रहमत से भरा हुआ ** **ईसा का सानी**=ईसा के जैसा

(71)

ख़्वाजा साहिब कहते हैं कि जब माशूक़ के हुस्न का जादू आशिक़ पर छा जाता है तो वह पुकार उठता है कि अब तो मेरा एक क़दम कई परदे तो क्या, सात आसमानों, हज़ारों मंज़िलों को चीर कर तुझ तक पहुँच सकता है। आख़िर में आप कहते हैं कि ऐ ख़ुदा, मैंने तो तेरे दीदार की उम्मीद में ही सारी उम्र गुज़ार दी है।

तेरे शराबे-इश्क़ की ख़ुमारी में मैं बेख़बर और मस्त हूँ,
जब से हुस्न तेरा देखा, उसी का है ये फ़ुसूँ*।1

छुपा रहे तू चाहे जितने भी परदों में,
लगाऊँ इक नारा तो सारे परदे फाड़ दूँ।2

परदा न हो दरम्याँ तो फिर रुकावट क्या,
फैला दूँ जो पंख अपने तो सात आसमाँ पे जा पहुँचूँ।3

सात आसमाँ तो क्या, जाऊँ इससे भी ऊँचे अर्श पर,
हज़ार मंज़िलें तय करूँ गर इक क़दम बढ़ाऊँ।4

सात आसमाँ और आठ जन्नतें भी सस्ती हैं,
वाजिब यही है कि आधे जौ में भी दो आलम न ख़रीदूँ।5

तेरे दीद की उम्मीद पे गुज़ार दी है उम्र,
न देख पाऊँ गर तुझे तो ये उम्र न चाहूँ।6

सिवा ख़ुदा के और कोई न मोईन की नज़रों में,
मेरी इस नज़र को सह न सके आसमाँ तू।7

---

* **फ़ुसूँ**=जादू

(72)

इस ग़ज़ल में ख़ुदा की रहमत और बंदे की फ़रियाद का ज़िक्र है। ख़ुदा बंदे से कहता है: तू मुझे अपनी ज़िंदगी का मक़सद और मक़सूद बना ले। तू मेरी ओर एक क़दम तो बढ़ा, मैं तेरी तरफ़ सौ क़दम बढ़ाऊँगा। अगर तेरा दिल पाक है, उसमें ग़ैरत का ज़ंग नहीं है तो तू अपने दिल में मेरा जलवा देख सकता है।

फिर बंदा ख़ुदा से कहता है: बेशक तू वहदत का सागर है और मैं दुनिया की छोटी-सी शबनम हूँ, लेकिन जब से इस फ़ानी हस्ती से जुदा हुआ हूँ वहदत में पहुँच गया हूँ जहाँ न कोई अपना है, न पराया है।

तू मेरा ख़ास बन जा कि मैं ख़ास तेरा हूँ,
दो जहाँ में मैं ही तेरा मक़सद, मैं ही तेरा मक़सूद* हूँ। 1

गर इक क़दम मोहब्बत का जो बढ़ाए तू मेरी तरफ़,
मैं सौ क़दम बढ़ा कर तेरी तरफ़ आऊँ। 2

मैं छुपा ख़ज़ाना हूँ तू कुंजी है इसकी,
मैं तुझ पर तेरे लिए ही इस ख़ज़ाने का दर खोल दूँ। 3

मैंने अपनी सिफ़तों से तुझे जलवा दिखाया,
ताकि तेरी आईनाए-ज़ात में मैं ख़ुद को तुझे दिखाऊँ। 4

तू आईना साफ़ है तो मैं हूँ आफ़ताब की तरह,
तू आईना तो देख कि मैं तपिश में छिपा हूँ। 5

गर तू ज़ंगे-सियाह† को आईनाए-दिल से करे साफ़,
रूह नारा लगा उठे कि मैं नूरे-ख़ुदा हूँ। 6

* **मक़सूद**=ख़्वाहिश † **ज़ंगे-सियाह**=धूल-मिट्टी

उस वक़्त जब तू आईने से गर्द उड़ाए,
सिवाय नूर के मेरे आईनाए-दिल में कुछ न चमके। 7

गर तू समंदर लाफ़ानी है तो मैं हूँ शबनम इस दुनिया की,
तेरे साथ हूँ ऐसे कि जैसे सबमें समाया हूँ। 8

वहदत की दुनिया में न कोई मेरा यार न ग़ैर,
हस्ती के लबादे को जब से अलग किए हुए हूँ। 9

दुनिया की छः दिशाओं में मोईन घूम रहा है,
जब अपनी जगह पर नहीं तो क्या बोलूँ कि मैं कहाँ हूँ। 10

(73)

आशिक़ की रूह कहती है कि मैं तो इश्क़ के बाग़ की बुलबुल हूँ। मैं उसी बाग़ की तलाश में हूँ और वहीं जाना चाहती हूँ लेकिन इस जिस्म की क़ैद में हूँ। एक बार ये बेड़ियाँ कट जाएँ फिर चाहे सैकड़ों रुकावटों से गुज़रना पड़े फिर भी मैं अपने बादशाह के सामने पेश होना चाहती हूँ।

ग़ज़ल के आख़िर में ख़ुदा कहता है कि अपने आशिक़ों का हाल पूछने मैं ख़ुद रात को जाता हूँ। मैं ख़ुद आशिक़ों को इश्क़ की मय देकर अपनी ओर खींचता हूँ, अगर वे नहीं आते तो मैं उन्हें ख़ुद तलाश करने जाता हूँ।

इश्क़े-बुलबुल हूँ मैं गुलिस्ताँ की तरफ़ जाता हूँ,
पाई थी जिस गुल की ख़ुशबू, उसकी जुस्तजू में जाता हूँ।1

बेमतलब पानी की तरह बाग़े-जाँ में बहता हूँ,
हाथ में है जामे-मय, मस्त और ग़ल्ताँ हुआ जाता हूँ।2

बुलबुले-बेख़ुद हूँ, उस गुल के लिए फ़रियाद में मश्ग़ूल,
नहीं, नहीं! मैं वो हुदहुद हूँ कि सुलेमान की तरफ़ जाता हूँ।3*

जंग का जाँबाज़ मैं, था जिस्म की क़ैद में,
पाँव की बेड़ी कटी अब मैदाँ की तरफ़ जाता हूँ।4

सैकड़ों बंधन काट कर दुश्मन से बचता हुआ,
लश्करे-शाही† से मिल कर पेश बादशाह के होता हूँ।5

राहे-दिलबर में मैंने देख ली है बरबादी इश्क़ की,
इसी लिए तो सर पर चादर रखे तनहा जाता हूँ।6

---

* **हुदहुद**=बादशाह सुलेमान की फ़ौज का मुख्य क़ासिद (संदेशवाहक) पंछी जो हमेशा उसके लिए दूर-दराज़ के इलाक़ों से ख़बर लाता था।

† **लश्करे-शाही**=शाही फ़ौज

उससे पूछा कि क्या आधी रात को ही सुबह हो गई,
बोले पूछने हाल बीमार का मैं रात को जाता हूँ।7

आशिक़ों को मय पिला कर खींचता हूँ अपनी ओर,
वो नहीं आते तो मैं परेशाँ होकर ख़ुद जाता हूँ।8

काश! मोईन जिस्मो-जाँ की क़ैद से आज़ाद हो जाए,
बोझ हल्का हो मेरा और मेरा रास्ता आसाँ हो जाए।9

(74)

इस ग़ज़ल में आशिक़ को हिदायत दी गई है कि यार का दीदार कैसे हो सकता है। इश्क़ का दलाल कहता है: दीदार की क़ीमत है और वो है आशिक़ की जान। ये फ़ानी आँखें उसे देख नहीं सकतीं, इसलिए दिल के आइने में उसका दीदार करना होगा। आशिक़ और दिलदार के बीच सैकड़ों परदे पड़े हैं, इसलिए आशिक़ को बेदार होकर यार का दीदार करना चाहिए। ग़ज़ल के आख़िर में मोईन सब कुछ ख़ुदा को सुपुर्द करते हुए सिर्फ़ ख़ुदा के रहमो-करम के लिए फ़रियाद करता है।

उठ रहा है परदा, यार का रुख़्सार देख,
नूर की किरणें ज़ाहिर होने वाली हैं देख।1

आँख शायद न खोले तू हूरों और महल की ओर,
मगर चश्मे-दिल से उसका दीदार देख।2

कहता है दलाले-इश्क़ कि उसके दीदार का मोल है जाँ,
बिक जा गर जाँ पास है तेरे, कि इश्क़ का बाज़ार देख।3

गर बेवसीला* आँखें तेरी देख न पाएँ हुस्न का जलवा,
तो दिल के आईने में उसके हुस्न के निशाँ देख।4

उस चमन से कोई चुन न सका इक फूल भी काँटे के ज़ख़्म बिना,
फूल की गर है तमन्ना तो काँटे के ज़ख़्म का दर्द न देख।5

ख़्वाबगाह† में बादशाह की तैनात रहते हैं पहरेदार,
शुक्राने के लिए तू बेदार‡ आँख से देख।6

* **बेवसीला**=बिना किसी सहारे या ज़रिए के
† **ख़्वाबगाह**=सोने का कमरा
‡ **बेदार**=सचेत होकर

सैकड़ों परदे पड़े हैं सामने दिलदार के, हर परदे के लिए
चश्मे-नज़ारा चाहिए,
परदों को उठाने के लिए बेदार आँखों से देख।7

वो न थी मंसूर की आवाज़ तख़्ताए-दार* पर,
ख़ाक के उस जिस्म में अल्लाह की आवाज़ देख।8

हश्र में ज़ाहिद तमन्ना रखता है क्या दीद की,
खोले अगर आँखों से पट्टी आज ही दीदार देख।9

कारोबार अपना सब मोईन कर चुका तेरे सुपुर्द,
इक नज़र मेहरो-करम की उस पर ऐ दिलदार देख।10

* **तख़्ताए-दार**=सूली का तख़्ता

(75)

इस ग़ज़ल में ख़्वाजा साहिब कहते हैं कि आशिक़ अपने माशूक़ की रज़ा में कैसे राज़ी रहता है, वो हर शौक़, हर तमन्ना, हर तरह की तफ़्सील, जन्नत और बहिश्त के वादे, सभी हादसों से ऊपर उठ जाता है। अपनी मंज़िले-मक़सूद पर पहुँचकर ये सब उसके लिए बेमायने हो जाते हैं।

मैं तेरे वस्ल के लिए दिलो-जाँ से गुज़र गया,
गर तू न चाहे वस्ल तो मैं इससे भी गुज़र गया।1

तेरी रज़ा में फ़ना के समंदर में ग़र्क हूँ कुछ इस तरह,
कि जहाँ के हर शौक़, हर आरज़ू से गुज़र गया।2

पीछे तेरे नामो-निशाँ के दौड़ा सारी उम्र,
कि अब नामो-निशाँ की सारी ख़्वाहिशों से गुज़र गया।3

जाम ऐसा दिया कि दिलो-जाँ एक हुए,
जाम जब दूसरा दिया, मैं जाँ से भी गुज़र गया।4

पहुँचा अचानक उस जगह जिसे ढूँढ़ता था मैं,
जब वो मिला तो नामोनिशाँ से गुज़र गया।5

रुख़े-मंसूर का हुआ कुछ इस तरह से दीदार,
हर तफ़्सील* और नुत्क़ो-बयाँ† से गुज़र गया।6

कोई फ़र्क़ नहीं आशिक़ो-माशूक़ में,
कहना तो इतना है कि इधर से और उधर से भी गुज़र गया।7

ये अजब है कि ख़ुद ही नुक़्ता हूँ ख़ुद ही दायरा,
मगर ज़माने की गर्दिश के दायरे से गुज़र गया।8

* **तफ़्सील**=हर तरह की व्याख्या, विवरण
† **नुत्क़ो-बयाँ**=बोलने और बात करने की ताक़त

पहुँच कर बारगाहे-क़ुद्स* में जो है मेरी मंज़िले-मक़सूद,
मैं दोनों जहाँ के हादसों से गुज़र गया।9

देखा मोईन ने आज खुली आँखों से तेरा हुस्न,
कि जन्नत औ बहिश्त के वादों से भी गुज़र गया।10

* **बारगाहे-क़ुद्स**=शाही महल

(76)

इस ग़ज़ल में ज़िक्र किया गया है कि यार का दीदार रूह की आँख से होता है। इसलिए आशिक़ चाहता है कि उसका रोम-रोम आँख बन जाए। आशिक़ में इतना सब्र नहीं कि यार के दीदार के लिए क़यामत का इंतज़ार करे। फिर एक ऐसा दौर आता है जब आशिक़ की दौड़ ख़त्म हो जाती है और फिर माशूक़ आशिक़ पर नज़र रखता है।

आँखें हैं ग़ैर तो परदा-निहाँ* में उसे कैसे देखूँ,
ख़ूब यह है कि उसे दीदाए-जाँ† से देखूँ।1

जब कि बेदीदा नज़र से वो मुझे देखे है,
मुझको लाज़िम है उसे चश्मे-निहाँ‡ से देखूँ।2

बेनिशानी है मंज़िले-इश्क़ का निशाँ,
बेनिशाँ§ हो के, निशाँ चश्मे-अयाँ¶ से देखूँ।3

वक़्त वो ख़त्म हुआ जब दीद का मुश्ताक़** था मैं,
अब वक़्त यह है कि उसको ख़ुद पर निगराँ†† देखूँ।4

आज ही हसीन रुख़ से नक़ाब हटा दे तू,
सब्र बाक़ी नहीं कि कल उसे जन्नत में देखूँ।5

चाहता हूँ कि सर से पैर तक जाँ ही जाँ बन जाऊँ,
ताकि उसके ज़ाहिर बातिन‡‡ को दीदाए-जाँ से देखूँ।6

हुस्न उसका झलकता है तेरी हस्ती में मोईन,
परदा गर ये उठे उसे चश्मे-अयाँ से देखूँ।7

---

* **परदा-निहाँ**=परदे में छुपे हुए को † **दीदाए-जाँ**=जाँ की नज़र से, अंदर की आँख से
‡ **चश्मे-निहाँ**=अंदर की आँख § **बेनिशाँ**=भाव अपनी ख़ुदी ख़त्म करके
¶ **चश्मे-अयाँ**=खुली आँख से देखना ** **मुश्ताक़**=चाहवान
†† **निगराँ**=नज़र रखने वाला ‡‡ **ज़ाहिर बातिन**=प्रकट हुआ, छुपा हुआ

(77)

ख़्वाजा साहिब कहते हैं कि इश्क़ की राह में जब आशिक़ अपने को फ़ना करता है, तभी यार की ओर क़दम उठाता है। जब मन से ग़ैरत के परदे उठ जाते हैं और अक़्ल-चतुराई कोई काम नहीं आती, तब रूह पाक होकर चमकती है।

जब राहे-इश्क़ में ख़ुद को किया फ़ना मैंने,
कि इक क़दम में दो जहाँ को तय किया मैंने।1

क़दम उठाया मैंने इस सराए-फ़ानी से,
इरादा जब किया उसकी ख़ुदाई की तरफ़ मैंने।2

नफ़्स से जल गए सात आसमाँ के परदे,
आबे-तरीक़त* से जब नहा लिया मैंने।3

अक़्ल ने दिल में जो बात डाली थी,
शराबे-इश्क़ से सब क़ै† कर दिया मैंने।4

राज़े-इश्क़ की फिर बाँसुरी बजी इस दिल में,
दिलो-जाँ से नाता तेरी बाँसुरी से जोड़ा मैंने।5

मसीहा की तरह वो पाक-रूह चमके मोईन में,
देख कि हज़ारों मुर्दा दिलों को ज़िंदा कर दिया मैंने।6

---

* **आबे-तरीक़त**=तरीक़त का पानी यानी तरीक़त की राह को अपनाना।
† **क़ै**=सब निकाल दिया, उल्टी कर दी

(78)

ख़्वाजा साहिब फ़रमाते हैं कि बेख़ुदी की हालत में आशिक़ माशूक़ का रूप हो जाता है। साक़ी के हाथों इश्क़ की शराब पीकर आशिक़ चाहता है कि वह भी मंसूर की तरह अनलहक़ का नारा लगा कर छुपे हुए सारे राज़ ज़ाहिर कर दे।

ग़ज़ल के आख़िर में आप फ़रमाते हैं, हालाँकि ख़ुदा का नूर ज़र्रे-ज़र्रे में झलक रहा है पर हर किसी में ताक़त नहीं कि उस नूर को देख सके।

कभी मस्ती में अपनी हस्ती से दूर चला जाता हूँ,
उस वक़्त ख़ुद ही मैं जलवा, ख़ुद ही जलवानुमा* होता हूँ। 1

साक़ी, जामो-शराब जब मौजूद होते हैं,
शराबे-नूर की मस्ती में मैं मख़्मूर† होता हूँ। 2

मये-वहदत का इक प्याला तो इनायत कर मेरे साक़ी,
कि मैं भी इस जहाँ में सूरते-मंसूर‡ हो जाऊँ। 3

अज़ल से पी वो मय, राज़ अनलहक़ का था छिपा जिसमें,
ज़ुबाँ से जब निकलता है तो मैं बेबस हो जाता हूँ। 4

हक़ीक़त के आफ़ताब का नूर झलक रहा है ज़र्रों में,
कि नूर का अक्स बन कर ज़र्रे की तरह मैं रहता हूँ। 5

झेल नहीं सकती नूर मेरी चमगादड़ जैसी नज़र,
इस वजह मैं अपनी ज़ात में ही छुपा रहता हूँ। 6

मोईन आया है शहरे-इश्क़ से,
कुछ अजब नहीं कि मैं मशहूर हो जाऊँ। 7

---

* **जलवानुमा**=अपने आप को दिखाने के लिए सामने आना।
† **मख़्मूर**=बेख़ुद ‡ **सूरते-मंसूर**=मंसूर की हालत में

(79)

इस ग़ज़ल में इश्क़ की ख़ुमारी बयान की गई है। आशिक़ कहता है: तू हरदम मेरे साथ है फिर भी तेरी तलाश में भटक रहा हूँ। तू मेरी जाँ की रग से भी क़रीब है फिर भी मुझे दूर मालूम होता है। मूसा की तरह मेरा दिल भी कहता है कि तू जलवा दिखा, बक़ा का जाम पिला। जब मैं अपने दिल के आईने में देखता हूँ तो मुझे लगता है कि मैं ही जलवा हूँ, मैं ही जलवानुमा हूँ। इसी लिए इश्क़ की ख़ुमारी में मंसूर ने अनलहक़ का दावा किया था और नारे लगाए थे।

ख़ुदा के दीदार के जाम से मख़्मूर* हूँ मैं,
जन्नत की हूरों के ख़ुमार से बहुत दूर हूँ मैं। 1

जो मस्त नारा लगाए वो नशा शराब का है न कि उसका,
अंगूर की मय से नहीं, मस्त मये-नूर से हूँ मैं। 2

मेरे जले दिल की जो आहें फ़लक पे जाती हैं,
जलें उनसे परो-बाल† फ़रिश्तों के तो बेबस हूँ मैं। 3

हरदम मेरे साथ है वो पर भटकता हूँ उसकी तलाश में,
हैरत है, वस्ल‡ भी है फिर भी उससे दूर हूँ मैं। 4

सौ बार वो जाँ की रग के क़रीब मालूम हुआ,
मगर अफ़सोस कि उससे सौ गुना दूर हूँ मैं। 5

इनसाँ की शक्ल में क़ैद हूँ मगर पाक रूह हूँ,
हूँ आफ़ताब मगर इक मुट्ठी ख़ाक में छुपा हूँ मैं। 6

बदन के साये में सिफ़त का ज़र्रा हूँ लेकिन गुम हूँ,
हूँ आफ़ताब कि फ़लके-जाँ§ में मशहूर हूँ मैं। 7

---

* **मख़्मूर**=बेख़ुद † **परो-बाल**=पंख और बाल ‡ **वस्ल**=विसाल
§ **फ़लके-जाँ**=जाँ के आसमाँ में

हटा के परदा यह कह सकता हूँ कि देख कौन हूँ मैं,
मगर ख़ौफ़ है कि जल न जाएँ दो जहाँ, कि नूर हूँ मैं।8

मेरा तख़्ते-हुकूमत बिछा है आसमाँ पे,
ताकि सुल्ताने-अज़ल* मेरे फ़रमान पर कुछ लिख दे।9

मेरे तूरे-बदन पर दिल का मूसा कह रहा है ख़ुदा तू जलवा दिखा,
बक़ा† का जाम दे कि इसी शौक़ में बेख़ुद हूँ मैं।10

शराबे-वहदत का इक ऐसा जाम दिया मुझे,
मेरे दिल के मूसा को सुध न रही, होश से दूर हूँ मैं।11

कर चुका हूँ अनलहक़ का दावा इस दुनिया में,
कि इश्क़ ने फ़ना की सूली पर मंसूर को मय है पिलाई।12

तेरे नूर की तख़्ती का इक लफ़्ज़ भी जो बयाँ करूँ,
फिर मालूम होगा कि लोहे-महफ़ूज़‡ पर लिखा हूँ मैं।13

डालता हूँ निगाह जब भी आईनाए-दिल पर,
फिर मालूम होता है कि नाज़िरो-मंजूर§ हूँ मैं।14

ग़म का यह बोझ सब्र के मुताबिक़ है मोईन,
ज़ाहिर है कि बरदाश्त की ताक़त रहेगी कब तक मुझमें।15

---

* **सुल्ताने-अज़ल**=ख़ुदा † **बक़ा**=लाफ़ानी, अनश्वर

‡ **लोहे-महफ़ूज़**=अर्श पर एक ऐसी जगह जहाँ सृष्टि में होने वाली सारी घटनाएँ अंकित हैं। सृष्टि के आरंभ में ख़ुदा की ओर से भविष्यवाणियाँ लिखी गईं जिसे कोई पढ़ नहीं सकता और न ही इसमें कोई रद्दो-बदल हो सकता है।

§ **नाज़िरो-मंजूर**=ख़ुद ही जलवा हूँ, ख़ुद ही जलवानुमा

(80)

इस ग़ज़ल में ख़्वाजा साहिब ने अपने रूहानी तजरबे को बयान किया है कि वो भी पैग़ंबर साहिब की तरह बुराक़ पर चढ़कर मंज़िल दर मंज़िल अंदर के मक़ामों की सैर करते हैं।

अहमद* की तरह वस्ल के लिए मेराज† की रात को,
मस्जिद अल-हराम‡ से मस्जिदे-अक़सा§ तक जाऊँ मैं।1

ज़मीं से सिद्रा¶ तक, सिद्रा से आगे अर्श** तक,
बिजली की तरह बुराक़†† पर जाऊँ मैं।2

आसमानों से गुज़र कर इस कायनात और इससे परे जाऊँ मैं,
फिर दना से आगे तदल्ला‡‡ की तरफ़ जाऊँ मैं।3

क़ाब क़ौसैन§§ और औ अदना¶¶ भी हैं इक परदा,
इन परदों के बग़ैर उस बारगाहे-हुस्न में जाऊँ मैं।4

यह नहीं मालूम कि इस गहरे समंदर में,
जा रहा हूँ, या खड़ा हूँ या यहाँ बैठा हूँ मैं।5

---

* **अहमद**=मुहम्मद साहिब

† **मेराज**=मुहम्मद साहिब का आसमान को पार करके अल्लाह का दीदार करना।

‡ **मस्जिद अल-हराम**=काबा

§ **मस्जिदे-अक़सा**=वो मस्जिद जो सबसे दूर है।

¶ **सिद्रा**=बेरी का पेड़ जो सातवें आसमान पर है।

** **अर्श**=नौवाँ आसमान जो सबसे ऊँचा रूहानी मंडल है।

†† **बुराक़**=काल्पनिक घोड़ा जिस पर चढ़ कर मुहम्मद साहिब ने आंतरिक मंडलों की यात्रा की थी।

‡‡ **दना...तदल्ला**=अंदरूनी रूहानी मंज़िलें

§§ **क़ाब क़ौसैन**=ऐसा माना जाता है कि पैग़ंबर मुहम्मद साहिब ने दो कमान की दूरी पर ख़ुदा के नूर को देखा था।

¶¶ **औ अदना**=ख़ुदा से और नज़दीकी

(81)

इस ग़ज़ल में ख़्वाजा साहिब फ़रमाते हैं कि ख़ुदा की तारीफ़ लाबयान है। उसकी रहमत से ही रूह अर्श की बुलंदी तक पहुँच जाती है। ख़ुदा की तारीफ़ हुमा पंछी की तरह है जो इनसान को शहंशाह बना देती है। हालाँकि इनसान मानता है कि ख़ुदा जहान में भी मौजूद है और उसके अंदर भी, फिर उसे कैसे ढूँढ़ा जाए? ये जाँ ख़ुदा की मौजूदगी की वजह से ज़िंदा है। ख़्वाजा साहिब कहते हैं कि ख़ुदा को अपनी जाँ में ढूँढ़ने के लिए मैं अपनी जाँ भी निसार करने को तैयार हूँ।

तारीफ़ ख़ुदा की ऐसी कि मोती से पुरजान* नज़र आए,
वो मीठी ऐसी कि ज़ुबाने-जाँ मिठास से भर जाए।1

तारीफ़ उसकी बयाँ करूँ दिलो-जाँ से हरदम,
सौ-सौ शुक्र गर दिलो-जाँ से वो बयाँ हो जाए।2

तारीफ़ उसकी ऐसी जो पिरो दे इनाम की मालाएँ,
समंदर के उस मोती की तरह जो जाँ की खान से निकल आए।3

तारीफ़ उसकी ऐसी जो पाक मकाँ के गुलिस्ताँ में ले जाए,
जान की छत से अर्श की छत तक ले जाए।4

तारीफ़ उसकी ऐसी जैसे इज़्ज़त का साया हुमा का वो कर दे,
जाँ के आशियाने से बारगाहे-अल्लाह की बुलंदी तक ले जाए।5

अल्लाह की उल्फ़त पर हो जा तू क़ुर्बान ऐ दिल,
शायद तेरी तारीफ़ को मक़बूल† वो फ़रमाए।6

जहाँ में आफ़ताब-सा रौशन है उसका नूर,
असर उसकी हुकूमत का हर जाँ पे नज़र आए।7

* पुरजान=भरपूर † मक़बूल=पसंद

है वो मेरी जाँ, जहाँ भी वो, फिर भी ढूँढूँ मैं उसे किस तरह,
दुनिया में न मिले वो, मगर जाँ में मिल जाए।8

दुनिया की निशानी है इनसाँ, इनसाँ की निशानी रब है,
जिस्म की निशानी दिल है, दिल की निशानी है जाँ।9

जिस्म ज़िंदा है जाँ से और जाँ ज़िंदा है रब से,
जिस्म पहचाने जाँ को और इस जाँ में नज़र वो आए।10

इस शोरा बदन में सैकड़ों गुल खिल जाएँ,
जब ख़ुदाए-रहमत आसमाँ से उतर आए।11

गर मोईन वस्ल चाहे, जाँ कर दे निसार उस पर,
है फ़ायदा आशिक़ का गर जाँ से भी गुज़र जाए।12

(83)

आशिक़ ख़ुदा से कहता है कि मैं तेरे हुस्न का आईना हूँ, इसलिए मुझे अपने हुस्न में तेरा ही जलवा दिखाई देता है और अगर तू मेरी आँख से अपना हुस्न देख ले तो उस पर क़ायल हो जाए। आशिक़ हमेशा ऐसी मय की ख़्वाहिश करता है जो उसे हर चीज़ से जुदा करके माशूक़ से विसाल करा दे। इश्क़ की मय वह हुमा है जो चींटियों की तरह रूहों को भी अपनी ताक़त से उड़ा कर रब के महल में पहुँचा देती है। ग़ज़ल के आख़िर में ख़्वाजा साहिब कहते हैं कि इस चमन में अपनी मीठी ज़ुबान और ख़ुदा की याद में लिखे मिठास भरे शेअर ही छोड़ कर जा रहा हूँ।

गर आशिक़ों की आँख से हुस्न अपना वो देख ले,
तो होकर परेशाँ मेरी तरह फिरता रहे।1

हुमा उड़े लेकर चींटियाँ उसके महल के पास,
कि उड़ नहीं पाता मैं इस दुनिया में पर रखते हुए।2

हूँ मैं आईना उसके जमाले-हुस्न का,
आता नहीं नज़र ख़ुद में सिवाय उसके हुस्न के।3

आईना मग़रूर* अपने हुस्न पर हरगिज़ नहीं,
हुस्न में अपने देखता है वो सौ जलवे तेरे।4

ऐ साक़ी इस वक़्त तू जामे-मय के मस्तों को एक जाम दे दे,
मैं तो अपने कैफ़े-ग़म† में हूँ अभी साक़ी मेरे।5

चाहता हूँ ऐसी मय जो कर दे हर शै से जुदा,
ताकि मंसूर जैसा वस्ल मिल जाए मुझे।6

* **मग़रूर**=घमंडी † **कैफ़े-ग़म**=ग़म की मस्ती

इस मय के इक क़तरे से कोहे-तूर सौ टुकड़े हुआ,
फिर होश में अपने कैसे ये दीवाना आशिक़ रहे।7

छोड़ कर जाता हूँ इस चमन से बुलबुलों के लिए,
अपनी यह मीठी ज़ुबाँ और शकरपारे शेअरों के।8

गुल जो सुबह के वक़्त मेरे दिल के गुलिस्ताँ में खिला था,
मोईन था बुलबुल तबीअत का, गुल के जैसा कर दिया।9

(84)

जिस दिल में ख़ुदा से विसाल का इरादा होता है, उसके लिए आसमान की बुलंदी को छूना कोई बड़ी बात नहीं। इश्क़ का मिक़नातीस रूह को ख़ुद-बख़ुद अपनी ओर खींच लेता है। लेकिन जिस तरह चाँद और सूरज के बीच में धरती के आ जाने से चाँद को ग्रहण लग जाता है, उसी तरह जिस्म भी रूह और रब के बीच आकर उस नूर को ढक देता है। ख़्वाजा साहिब कहते हैं कि इस हालत में दिल की जलन अगर कुछ बयान भी करना चाहे तो सिवाय धुएँ के कुछ नहीं निकलता।

दिल मेरा जब अल्लाह की बारगाह का इरादा करता है,
अर्श की बुलंदी मेरी अदनातरीन* मंज़िल होती है।1

उसके इश्क़ का जज़्बा ख़ुद ही खींच लेता है,
वो ही दस्ते-मोहब्बत† मेरे दिल पर रखता है।2

पूछा मैंने, तेरा वस्ल किसको होता है,
कहा, जुदा हुआ हो जो ख़ुद से उसको होता है।3

मैं चाँद हूँ, कभी हो जाता हूँ स्याहजामा‡,
चेहरा तो आफ़ताब का भी ढलता है।4

ग्रहण है मुझपे तो यह क़ुसूर आफ़ताब का नहीं है,
कि ये जिस्मे-ख़ाकी मेरा दरम्याँ होता है।5

दो आलम से जौ भर भी न हो हासिल तो क्या,
दिल में मेरे बीज मोहब्बत का ही काफ़ी है।6

मोईन दिल की जलन गर चाहे कुछ लिखना,
क़लम से मेरी दिल की आग का धुआँ ही निकलता है।7

---

* **अदनातरीन**=सबसे छोटी † **दस्ते-मोहब्बत**=मोहब्बत का हाथ
‡ **स्याहजामा**=भाव धुँधला

(85)

ख़ुदा का नूर देखने के लिए, उसके बोल सुनने के लिए अंदर की आँख, अंदर के कान की ज़रूरत है। उससे विसाल हासिल करने के लिए फ़ानी जिस्म के पिंजरे से आज़ाद होने की ज़रूरत है। इश्क़ में डूबा आशिक़ दोस्त की तरफ़ से आए हुए हर दर्द को झेलता है। ख़्वाजा साहिब कहते हैं कि इसके दर्द, इसके ग़म की दवा इश्क़ के हकीम के पास है इसलिए आशिक़ उम्मीद करता है कि हकीम आकर हाल ज़रूर पूछेगा।

देखने को हुस्न उसका आँख दूजी* चाहिए,
सुनने को बोल उसके कान दूजा चाहिए।1

वस्ल की आरज़ू है गर रगो-जाँ† को तेरी,
तो जिस्म के ख़िरक़े को फाड़ देना चाहिए।2

मुर्ग़े-जाँ को जब सदा‡ आई कि आ तू लौट आ,
तो उसे पिंजरे को तोड़ परवाज़ करना चाहिए।3

बिस्मिल§ की गर्दन पर जो तेग़¶ चाहे तू फेरना,
तो मुर्ग़े-बिस्मिल की तरह ख़ून में तड़पना चाहिए।4

इस उम्मीद पर कि दोस्त का दामन मेरे हाथ थाम लें,
लाश अपनी क़ब्र में छुपानी चाहिए।5

गुलिस्ताने-हुस्न में तेरे खिलते हैं हर वक़्त फूल नए,
या ख़ुदा मेरे लिए इक फूल तुझे भी गुलज़ार से चुनना चाहिए।6

हर हाल में ग़म में तेरे डूबा रहता है मोईन,
हाल पूछने ऐ हकीमे-इश्क़ तुझे आना चाहिए।7

---

* **आँख दूजी**=अंदर की आँख † **रगो-जाँ**=जाँ की रग-रग ‡ **सदा**=आवाज़
§ **बिस्मिल**=घायल, ज़ख़्मी ¶ **तेग़**=तलवार

(86)

ख़ुद को माशूक़ के हुस्न का परवाना बताते हुए बेख़ुद आशिक़ क़बूल करता है कि माशूक़ के इश्क़ का ऐसा असर हुआ कि दिल उसके सिवाय किसी और को पहचानता ही नहीं। ख़ुदा के फ़ज़ल और वफ़ा का ज़िक्र करते हुए ख़्वाजा साहिब कहते हैं कि जब साक़ी ने मुझे वहदत की मय पिलाई तो मौत का दाग़ मिट गया। दिल में जब उसका जलवा ज़ाहिर हुआ तो रोम-रोम में उसकी ख़ुशबू का एहसास हो गया।

तेरे इश्क़ ने मेरे दिलो-जाँ को कर डाला मुझसे जुदा,
दिल नहीं पहचानता किसी और को तेरे सिवा।1

तेरे हुस्न की किरणों का परवाना हूँ, मँडराता हूँ तुझ पे,
शोला हुआ ऐसा ज़ाहिर कि दीवाना बेख़ुद हो गया।2

आशिक़ बन कर रहता हूँ तेरे घर में रात से सुबह तक,
दिन होते ही तू चेहरे को मुझसे क्यों लेता है छुपा।3

क़ुर्ब* उससे जितना हुआ, फ़ज़ल इस क़दर उसका हुआ,
कि मेरी जफ़ा† को देख कर उसने वफ़ा और किया।4

साक़ी के हाथों मैंने जब इक जाम बक़ा का पीया,
था मौत का जो ज़ंग, मये-वहदत से वो धुल गया।5

मंसूर की तरह गर हो फ़ानी दुनिया से विदा,
दिल मेरा हो जाए रौशन, बन जाए वो दारे-बक़ा‡।6

देखना हो गर उसको तो मेरा चेहरा देख ले,
मैं हूँ उसी का आईना, हरगिज़ नहीं वो मुझसे जुदा।7

* **क़ुर्ब**=नज़दीकी † **जफ़ा**=ज़्यादती ‡ **दारे-बक़ा**=सदा रहने वाली दुनिया

दिल में मेरे अवैस क़रनी* का जलवा ज़ाहिर हुआ,
ले सुन, जाँ के रोम-रोम से सूँघ ले ख़ुशबू-ए-ख़ुदा।8

उसने कहा चेहरे से जब परदा उठाऊँगा मैं,
फिर देखना कि सुरूर ये तेरा है या मेरे हुस्न का।9

मैंने कहा अगर मोईन की तरह मैं भी सौ जाम पी लूँ,
दम खींच लूँगा, फिर पहाड़ की तरह मेरी आवाज़ नहीं आएगी।10

* **अवैस क़रनी**=क़रन निवासी अवैस, हज़रत मुहम्मद साहिब को सच्चे दिल से इश्क़ करता था। उसकी मुहम्मद साहिब से कभी मुलाक़ात नहीं हुई थी।

(87)

इस ग़ज़ल में इनसान ख़ुदा से अर्ज़ करता है: मैं तेरी नज़दीकी चाहता हूँ, क्योंकि मैं तेरे हुस्न का आईना हूँ। तेरे विसाल के ख़्याल से मुझे जो ख़ुशी मिलती है उसका कोई मुक़ाबला नहीं। अपनी कोशिश से नहीं, बल्कि तेरी रहमत से ही मेरा काम बन सकता है। मैं जानता हूँ कि मेरी जान बुरी तरह दुनिया के दलदल में फँसी हुई है। मेरी अक़्ल, चतुराई और ग़ुरूर हमारे बीच का परदा है, फिर भी मैं तेरी रहमत के सहारे क़दम आगे बढ़ा रहा हूँ।

मैं तेरे पास आता हूँ कि तू वसीला* मेरा है,
आईना हूँ मैं तेरा, हुस्न तेरा ही मेरा हुस्न है।1

उस घड़ी जब दोस्तों से अपने मैं हूँगा जुदा,
मेरे जहाँ के दोस्तों से होगा बेहतर तेरा क़ुर्ब†।2

काम बंदों के तेरी तदबीर‡ से बनते हैं ख़ूब,
मुश्किलें होती हैं हल अपनी तदबीर§ से कहाँ ।3

तू कहाँ है ऐ इश्क़! आकर हटा दे अपना हिजाब¶,
राह को रोके यह अक़्ल जो है दरम्याँ।4

आबो-गिल का जिस्म फँसा है कीचड़ में गधे की तरह,
जब कि तबेले में मेरे बँधा है बुराक़े-इश्क़।5

तेरे ख़्याले-वस्ल से जो ख़ुशी मिलती है मुझे,
हूरे-जन्नत से निकाह करने में भी वो ख़ुशी है कहाँ।6

* **वसीला**=ज़रिया † **क़ुर्ब**=नज़दीकी ‡ **तदबीर**=तरक़ीब
§ **तदबीर**=कोशिश ¶ **हिजाब**=परदा

चिराग़े-दिल में तू डाल दे रौग़ने-इर्फ़ान*,
कर मेरी बाती से ही रौशन चिराग़ तेरा।7

ख़ाली हाथ जा रहा है दोस्त की बारगाह में मोईन,
शायद उसकी ही रहमत बन जाए वसीला मेरा।8

* **रौग़ने-इर्फ़ान**=बुद्धिमानी का तेल

(88)

इस ग़ज़ल में इनसान को सलाह दी गई है कि ख़ुदा की सिफ़तें कायनात की हर शै में ज़ाहिर हैं, वही इस जाँ में छुपा है। इसलिए उसके इश्क़ की बातें सुन, उसका जमाल देख। जब इनसान ख़ामोशी इख़्तियार करके रूह के कानों को खोलेगा तो ख़ुदा से उसकी गुफ़्तगू होगी। फिर इनसान तो उसकी तलब से फ़ारिग़ हो जाएगा, पर ख़ुदा इनसान की तलाश करेगा।

ऐ दिल चश्मे-हक़ीक़त से तू जमाले-यार देख,
हर शै में ज़ाहिर उसकी सिफ़त का इज़हार देख।1

तूने ऐ दिल देखा उसको रोज़े-अव्वल, तू ग़लती न कर,
हुस्न में अल्लाह के हर शै है, तू जलवा देख।2

होशियार ओ देखने वाले, मैं साक़ी के दीदार का दीवाना हूँ,
जाम, बादा या ख़ुम* से न पाई है ये मस्ती देख।3

ज़ाहिरो-बातिन के कानों से सुन इश्क़ की बातें,
ज़ाहिरो-बातिन की आँख से जमाले-यार देख।4

बंद कर लबों को तू, कान रूह के खोल ले,
फिर परदाए-दिल में होती है क्या गुफ़्तगू देख।5

शाबाश है गर तू इश्क़ का दावा करता है,
अब फ़ारिग़ है तू तलब और जुस्तजू† से,
वो तेरी तलाश में है देख।6

ऐ मोईन इस जाँ के अंदर कोई है छिपा,
जैसे जिस्म के अंदर जाँ छुपी है देख।7

---

* **जाम, बादा या ख़ुम**=जाम, शराब या मटका † **जुस्तजू**=तलाश

(89)

हिज्र में आशिक़ अपना हाल बयान करते हुए कहता है कि जुदाई की आग से मेरी जान, मेरा जिगर सब जल गए हैं। हर रात जुदाई की आग मेरे सीने में लगती है और मुझे सिर से पैर तक जला कर ख़त्म कर देती है। यह माशूक़ ख़ुद ही जिगर पर ज़ख़्म लगाता है और फिर ख़ुद ही उन पर नमक छिड़कता है। इस हालत में फ़रियाद और आहें ही आशिक़ का साथी होती हैं। इस जुदाई की आग की गहराई बयान करते हुए ख़्वाजा साहिब कहते हैं कि इसके शोले के सामने दोज़ख़ की आग एक चिंगारी की तरह है।

जुदाई में तेरी जले है जानो-जिगर* दिलजलों के,
कैसा वक़्त है कि दिल पे आ पड़ी आफ़त दिलजलों के।1

सर से पैर तक जल गया जुदाई की आतिश में,
हाल कोई बताओ मोहम्मद को हम दिलजलों के।2

आँख में ख़ून है रवाँ, ख़ुश्क हो गया है जिगर,
आग वो आई जले समंदर ज़मीं सब दिलजलों के।3

दिल में लगती है नई आग हर इक रात मेरे,
कि सुबह की आहों से कहीं जल न जाएँ जिगर दिलजलों के।4

इक तरफ़ तो देता है ज़ख़्म जिगर पर आशिक़ों के,
फिर छिड़कता है जिगर पर नमक हँस कर दिलजलों के।5

साथ अपने हैं सिर्फ़ फ़रियाद और आहें सुबह की,
भागते हैं देख कर सब हाले-जिगर दिलजलों के।6

आतिशे-इश्क़ बनती है शोला दिल पर मोईन कुछ इस तरह,
कि जलता हुआ दोज़ख़ तो है चिंगारी दिलजलों की।7

---

* **जानो-जिगर**=जान और जिगर

(90)

इस ग़ज़ल में आशिक़ आगाह करता है कि इश्क़ के दर्द का राज़ हर किसी से नहीं कहना चाहिए क्योंकि लोगों की बात तो एक तरफ़, मेरा दिल भी मेरा ग़म सुनने को तैयार नहीं। इसी लिए मैं ख़ामोशी इख़्तियार कर लेता हूँ। असल में दु:ख-दर्द ही आशिक़ का बिछौना होता है।

दरदे-दिल हर शख़्स से अपना छिपाना चाहिए,
आशिक़ को सोज़े-दिल* घास फ़ूस से न कहना चाहिए।1

मैं कभी कभी दिल से ख़ुद ही ग़म का फ़साना कहता हूँ,
गर दिल भी फिर जाए तो ख़ामोश रहना चाहिए।2

हालाँकि मेरा बदन तेरे दर पे है मगर हर एक से कमतर हूँ,
जब तेरा जाँबाज़ हूँ तो वापस न आना चाहिए।3

जिस्म से दिल को अलग कर फिर जाँ का शिकार कर,
ख़ुश क़िस्मत शहबाज़ को गिद्ध न कहना चाहिए।4

तेरे लबे-लाली का बीमार, ख़ून के बिस्तर पर सोता है,
आशिक़ों के तकिए को रेशम न समझना चाहिए।5

यूँ तो तेरे आगे रखता हूँ गुनाह मैं बेहिसाब,
गर कहे तू, रूबरू होकर सुनाना चाहिए।6

ऐ मोईन लोगों से न कह राज़ उसके ग़मे-इश्क़ का,
हर किसी से हाल शाहों का न कहना चाहिए।7

* सोज़े-दिल=दिल का दर्द

(91)

इस ग़ज़ल में अनोखे ढंग से वहदत की सिफ़त की गई है। हर शेअर में सवाल पूछा गया है और सवाल में ही उसका जवाब है। कौन है? वह कौन है? से ख़ुद ही जवाब मिल जाता है। ख़ुदा अपने को जुदा-जुदा सूरतों और लिबासों में ज़ाहिर करता है, लेकिन हम अनजानों को एक के दो दिखाई देते हैं यानी इस वहदत में कसरत दिखाई देती है।

दिखाए परदे के पीछे हसीं चेहरा, वो कौन है,
हटाए रुख़ से हर वक़्त इक परदा, वो कौन है।1

कब तक देखेगा तू भैंगों की तरह उसको मुख़्तलिफ़ लिबास में,
जुदा-जुदा सूरत और लिबास में आए जो, वो कौन है।2

जाम हथेली पर रख कर देखे वो उसमें हुस्न अपना,
बढ़ाए जो मस्ती और सुरूर मय की, वो कौन है।3

यक़ीं है कि यार मेरा छ: दिशाओं से है परे,
आए जो दूसरी राहों से हरदम, वो कौन है।4

इश्क़ के मक़बरे* में है जो, दोनों जहाँ की दौलत है जो,
देखता है दिल में फिर दिल से मिट जाए, वो कौन है।5

पास कुछ नहीं है मेरे, मगर आशिक़ मैं उस दिलबर का हूँ,
आशिक़ों के नाज़ नख़रे जो उठाए, वो कौन है।6

शामे-जुदाई में दिल के आँगन पर छा जाता है ग़म का अँधेरा,
फिर जाँ के गुंबद पर जो चाँद-सा चेहरा दिखाए, वो कौन है।7

* मक़बरा=क़ब्र की इमारत

शाख़े-गुल* के तख़्त पर गुल झूलता है नाज़ से,
दर्द भरे नग़मे जो बुलबुल गुनगुनाए, वो कौन है†।8

बुलबुल की तरह मोईन अपने यार का दीवाना हुआ,
चहचहाता है जाँ के गुलशन में जो, वो कौन है।9

* **शाख़े-गुल**=फूल की शाखा
† शम्स बरेलवी ने इस शेअर का अर्थ इस तरह किया है:
गुल, इज़्ज़त और नाज़ के तख़्त से नुक्ताचीनी करता है,
जवाब में उसके बुलबुल ज़ुबाँ न खोले, वो कौन है।

(92)

अपने यार के नूर पर फ़िदा रूह, इश्क़ की ख़ुशबू पाकर जिस्म की क़ैद से आज़ाद हो जाती है। दिल पर चलाए गए माशूक़ के नश्तर आशिक़ के लिए असरदार दवा साबित होती है। उसी आशिक़ को यार का विसाल हासिल होता है जो ख़ुदा का दर नहीं छोड़ता।

आ रही बू* कहाँ से कि रूह और दिल सरशार† है,
इश्क़ की बू है या ख़ुशबू ज़ुल्फ़े-यार है।1

बू उसकी पाकर रूह चाक‡ करती है पैरहन§,
पाक है वो रूह और जिस्म तेरा तार है।2

ज़र्रे की तरह गर्दिश में है ये जाँ उसके नूर पर,
नूर ऐसा नहीं आफ़ताब का जैसा नूरे-यार है।3

यह वही जाँ है जिसे दिल ढूँढ़ता है हर तरफ़,
लब पे लब रखे इस वक़्त रूबरू वो दिलदार है।4

आशिक़ों के दिल पे वो चलाता है नश्तर¶ सदा,
ज़ख़्म नश्तर का न देख, देख कि दवा ये कितनी असरदार है।5

कौन से दिल को नसीब है दावत वस्ले-यार की,
माना दिल मेरा बद है लेकिन कुत्ता कूचाए-दिलदार** का है।6

छिड़की है जब से वहदत की शराब मोईन की जान पर,
या ख़ुदा तेरे नाम के नारे की अर्श तक झनकार है।7

* **बू**=ख़ुशबू † **सरशार**=मस्त, नशे में चूर ‡ **चाक**=फाड़ना
§ **पैरहन**=लिबास ¶ **नश्तर**=चीरफाड़ करने वाला औज़ार
** **कूचाए-दिलदार**=दिलबर की गली

(93)

ख़्वाजा साहिब फ़रमाते हैं: यह सच है कि जिस्म दुनिया से जुड़ा है और रूह उस अल्लाह के साथ। इस जिस्म से निकल कर ही रूह अपने असल में समा सकती है। ख़ुदा ख़ुद ही आशिक़ रूहों को इस दुनिया में भेजता है, फिर माशूक़ बन कर आशिक़ों के नाम पर अपने साथ ही इश्क़ करता है और ख़ुद उन्हें लेने आता है।

ख़लक़ के साथ है तन, अल्लाह के साथ जाँ,
तन गिरफ़्तार ज़मीं पे और रूह है सातवें आसमाँ। 1

तन है निशाना तीरों का, इस जहाँ के हादसों का,
रूह ख़ास तनहाई में है मालिके-कौनो-मकाँ* । 2

अँगूठी के ऊपर जड़ा था मोती चमकता हुआ,
होकर जुदा वो अँगूठी से हुआ अपने असल में निहाँ। 3

बुख़ारात बन कर उठा पानी दरिया से, बादल बना,
क़तरा बन कर फिर गिरा दरिया में हुआ बहरे-रवाँ† । 4

गर हवा न गिराती बादल से क़तरा दरिया में,
वो अनमोल मोती हसीनों के पास फिर होते कहाँ। 5

मोती इक लाकर बाज़ारे-दुनिया में बेच दिया,
ख़ुद बना है दलाल वो और ख़ुद ही ख़रीदार निहाँ‡ । 6

ऐ मोईन परदे के पीछे देख उस सुलताने-ग़ैब को,
ख़ुद से ही इश्क़ वो करता बनामे-आशिक़ाँ§ । 7

---

* **मालिके-कौनो-मकाँ**=कुल कायनात का मालिक
† **बहरे...रवाँ**=बहता दरिया ‡ **निहाँ**=छुपा हुआ
§ **बनामे-आशिक़ाँ**=आशिक़ों के नाम पर

(94)

अपनी जाँ में इश्क़ की आग लगने पर आशिक़ का चैन-क़रार सब छिन जाता है। इस ज़ुल्म के दर्द से बेचैन होकर वो रहमत के लिए फ़रियाद करने पर मजबूर हो जाता है। लेकिन सब्र रखने के सिवा उसके पास कोई चारा नहीं होता। आशिक़ कहता है: लोग समझते हैं कि इश्क़ ने मुझे दुनिया से वीरान कर दिया, पर इश्क़ ने नक़ाब हटा कर मुझे ज़िंदगी की क़ैद से आज़ाद कर दिया।

तेरे इश्क़ की आग लगी है जब से जाँ में मेरे,
मेरे आरामो-क़रार* मुझ से सभी दूर हुए। 1

ज़ख़्मी है मेरी रगे-जाँ तेरी निगाह से चंग† की तरह,
कुछ ताज्जुब नहीं गर दिल ज़ुल्म से फ़रियाद करे। 2

यह दिल तेरी जफ़ा‡ के मैदाँ में है पड़ा,
सब्र बिना चारा कहाँ जब आफ़त ऐसी आ पड़े। 3

उस शाहे-इश्क़ ने वीरान किया इस शहरे-दिल को,
लेकिन अंबार§ ख़ज़ानों के हैं हर तरफ़ लगे हुए। 4

ख़लक़¶ कहती है कि यह शहर क्यों वीरान हुआ,
यह वीरान न हुआ बल्कि वो आबाद हुए। 5

एक अरसे से बँधा था ज़िंदगी की क़ैद में,
दस्ते-ग़ैब** ने आकर बंध सारे खोल दिए। 6

साक़ीए-बज़्मे ख़ुदाई ने खोला दर मयख़ाने का,
कि हज़ारों जाम शराबे-वहदत के मुझको दिए। 7

---

* **आरामो-क़रार**=सुख-चैन † **चंग**=एक तरह का साज़
‡ **जफ़ा**=ज़ुल्म § **अंबार**=ढेर ¶ **ख़लक़**=दुनिया
** **दस्ते-ग़ैब**=छुपा हुआ हाथ भाव ख़ुदा

जब से साक़ी ने हटाया रौशन रुख़ से नक़ाब,
तूर मेरी हस्ती का हर तरह से बेबुनियाद किया।8

वो सभी जामे-मय जो मोईन ने थे पीए,
प्यास फिर भी मेरी अब तक वो कम न किये।9

(95)

इस ग़ज़ल में आशिक़ कहता है कि मैं शराब से मस्त होने वाला नहीं, मुझे तो यार का विसाल ही मस्त कर सकता है। हो सकता है कि यार से मिल कर उसके लिए तड़प और बढ़ जाए, उसके सामने जाकर मैं बेज़ुबाँ हो जाऊँ। यार की तलाश करते-करते जब आशिक़ की हस्ती ख़त्म हो गई तो फिर वह पूछता है: कब तक तेरी तलाश करता रहूँ? ख़ुदा कहता है: मुझे दुनिया में कहाँ ढूँढ़ता फिरता है। मैं तो तेरे जिस्म में, तेरी जाँ बन कर रह रहा हूँ। अपनी हस्ती के आईने को साफ़ कर।

आशिक़ जवाब देता है कि मैं तेरे इश्क़ में इस जहान से रुसवा होना चाहता हूँ। इस फ़ानी दुनिया से ऊपर उठना चाहता हूँ। दो जहान की दौलत मेरे लिए मिट्टी है, क्योंकि मेरी रूह तेरी ख़ुशबू से सराबोर है।

मैं नहीं वो रिंद कि हो जाऊँ पीकर सरगराँ*,
गर लब पे लब रख दे वो, हो जाए मस्त मेरी दिलो-जाँ।1

बाँसुरी की तरह उसके हिज्र† में मैंने खींचा है दम,
बढ़ गई आहोज़ारी जब लबों को उसके चूमाँ।2

मस्त हूँ इस वक़्त, न पूछ तू साक़ी की अदा,
होश जब होगा तो करूँगा अपना अफ़साना बयाँ।3

कहता था देखूँगा जब उसे, हाले-दिल करूँगा बयाँ,
यह न था मालूम उसके सामने हो जाऊँगा बेज़ुबाँ।4

दोस्ती है दरिया से मुश्किल, मेरी तो कश्ती ही डूब गई,
पार कर देना मुझे हैरत के भँवर से ऐ ख़ुदा।5

बेनिशाँ मैं हो गया उस बेनिशाँ की तलाश में,
काश आख़िरत में भी रहूँ उस बेनिशाँ में बेनिशाँ।6

---

* सरगराँ=मतवाला † हिज्र=जुदाई

पूछा उससे कब तक ख़ाक छानता फिरूँ जहाँ की तेरे लिए,
तेरी जुस्तजू में कब तक फँसा रहूँ मैं उलझनों के दरम्याँ। 7

बोले वो क्या ढूँढ़ता फिरता है जहाँ में, ख़ुद में देख,
जाँ बन कर जिस्म में, तेरे हूँ ज़ाहिर और निहाँ*। 8

आईनाए-हस्ती को अपनी माँज कर चमका दे तू,
कि छुपा हूँ बेशक लेकिन ज़ाहिर रहता हूँ हर लम्हा। 9

आक़बत† के सिलसिले में दे न ज़ाहिद‡ मश्वरा,
चाहता हूँ इश्क़ में हो जाऊँ मैं रुस्वाए-जहाँ§। 10

जन्नत में दीदारे-यार की उम्मीद के ख़ातिर,
ख़ुदा की क़सम! रहना चाहता हूँ हरदम खुल्दे-जिना¶। 11

तू ही जाने फ़ानी दुनिया की तंगी से पार कब जाऊँगा,
चाहता हूँ रहूँ अंदर मैं फ़िज़ाए-ला-मकाँ**। 12

दो जहाँ की दौलत मेरी जान के दामन पर एक मुट्ठी गर्द है,
चाहता है दिल कि हो आज़ाद क़ैदे-ख़ाकदाँ†† से। 13

ख़ाक का ज़र्रा हूँ पर है दोस्ती आफ़ताब से,
अपने क़दमों को उठा कर जाऊँ मैं ऊँचे आसमाँ। 14

मोईन की रूह सराबोर है तेरी ख़ुशबू से,
चाहता हूँ सर से पाँव तक हो पाके-रूह मेरी जाँ। 15

---

* **निहाँ**=छुपा होना † **आक़बत**=परलोक ‡ **ज़ाहिद**=जप-तप करने वाला
§ **रुस्वाए-जहाँ**=दुनिया में बदनाम ¶ **खुल्दे-जिना**=स्वर्ग, जन्नत
** **ला-मकाँ**=समय और स्थान की सीमा से परे
†† **क़ैदे-ख़ाकदाँ**=जिस्म की क़ैद से

(96)

ख़ुदा का साया हमेशा आशिक़ के सिर पर होता है। ज़िंदगी के हादसों में उसकी रहमत ही आशिक़ को निजात दिलाती है। ख़ुदा की ख़िदमत से आशिक़ को रूहानी बुलंदी पर पहुँचने की नेमत मिलती है। इसी लिए वो अपने शाह के सामने अयाज़ जैसा बन कर रहना चाहता है।

आप कहते हैं कि बंदा जब तक हस्ती की क़ैद में है और उसमें सब्र से ज़्यादा हवस है तो कुछ भी हासिल नहीं होता। जब ख़ुदा अपना जलवा दिखाता है तो यह जिस्म ग़ैरत के ज़ंग से साफ़ हो जाता है और हक़ीक़त सामने आ जाती है।

ग़ज़ल के आख़िर में आप कहते हैं कि इश्क़ की राह पर क़दम बढ़ाते हुए रास्ते की दूरी और ढलती उम्र आशिक़ को बेचैन कर देती है। इश्क़ की आग में उसकी जाँ और जहान जल चुके हैं; वह ख़ुदा से फ़रियाद करता है, कभी तो तू मुझ पर रहमो-करम करेगा!

इक निगाहे-नाज़ जो डाली शाहे-दिल-नवाज़ ने मुझ पर,
कि सरवे-नाज़* का साया हमारे सिर पे हुआ। 1

है तू वो हुमा जिसके साये में थे हम सब पहले,
हज़ार शुक्र है कि फिर साया तूने मुझपे डाल दिया। 2

दिल मेरा जब कभी ज़माने के हादसों से दुखी हुआ,
तेरी रहमत का सौ बार फिर हक़दार हुआ। 3

बुलन्द मुक़ाम पर पहुँचने की मिली है नेमत मुझे,
क्या ख़ूब है कि तेरी ख़िदमत से ही यह फ़ायदा हुआ। 4

---

* **सरवे-नाज़**=ऊँचे क़द वाला पेड़ भाव ऊँचा रुतबा

मिल जाए दौलत मुझको भी कुछ ऐ आख़िरत के शाह,
दे रुतबा मुझे भी जो हो अयाज़* के जैसा। 5

इस जहाँ से ग़ैब की तरफ़ जब से रुख़ मैंने किया,
दुल्हनें आसमाँ की आती हैं पेशवाई के लिए। 6

कैसे बनी यह कायनात, राज़ मैं सुनाता हूँ तुझे,
कि अहले-राज़ ने है मुझसे ये राज़े-इश्क़ कहा। 7

जहाँ में जब तक तू क़ैदे-हस्ती में है गिरफ़्तार,
तू मेरे दीदार का उसी तरह तालिब है जैसे मेरा नाज़ करना। 8

फ़ायदा किस तरह उसकी दुकाँ से हासिल हो,
हवस ज़्यादा हो सब्र से तो फिर फ़ायदा क्या। 9

बैठा हूँ इतंज़ार में कि कब परदाए-जलाल† उठे,
खोल दे ग़ैब के हाथों से वो दर रसाई‡ का। 10

जाँ जब जलवा दिखाए, धुल जाए ज़ंग बदन का,
इस ख़ाकी जिस्म में हक़ीक़त तेरी हो जाए जलवानुमा। 11

वफ़ा क्या उम्र में ढूँढ़ूँ कि जो साँस लेता हूँ,
वो लौट कर नहीं आती, ऐसी है उम्रे-वफ़ा। 12

हर इक साँस से क़दम बढ़ाता हूँ मैं,
क्या करूँ उम्र कम हुई जाती है, दूर है अभी रास्ता। 13

हैरत है कि जाँ और जहाँ की दौलत लुटी जाती है,
मिटता है ग़म इक तो हो जाता है दूजा पैदा। 14

---

* **अयाज़**=महमूद ग़ज़नवी का चहेता ग़ुलाम जिसकी वफ़ादारी से बादशाह बहुत ख़ुश था।
† **परदाए-जलाल**=उसके सौंदर्य का परदा
‡ **दर रसाई**=पहुँच तक का दरवाज़ा

सुना है मैंने कि जले हुए को भी तू सँवार देता है,
गर ये सच है तो मैं जल चुका हूँ, मुझको बना। 15

नेकी जो ख़त्म हुई तो हुआ करम वाजिब*,
जैसे हर नमाज़ में फ़ातिहा† से फ़ायदा मिलता है। 16

गर आसमाँ न दे साथ तो रुख़ कर मोईन ख़ुदा की तरफ़,
कभी तो मुहब्बत की नज़र वो कारसाज़‡ मुझ पर इनायत करे। 17

---

* **करम वाजिब**=भाव और ज़्यादा रहमत होना
† **फ़ातिहा**=क़ुरान की पहली सूरत जो नमाज़ के शुरू करने से पहले भी और बाद में भी पढ़ी जाती है।
‡ **कारसाज़**=बिगड़े हुए कामों को बनाने वाला यानी ख़ुदा।

(97)

कायनात की शुरुआत में ख़ुदा ने हर रूह में इश्क़ का जो जादू फूँका था, उसका फ़साना क़यामत तक क़ायम रहेगा। इनसान अगर अपनी रूह की आँख से उस नूर को देखे तो उसका नूर किसी से छुपा नहीं। माशूक़ शमा है तो आशिक़ परवाना। उसके बिना आशिक़ का इस वीराने दिल में रहना मुश्किल हो जाता है। ख़्वाजा साहिब कहते हैं कि जब से मैं यार का दोस्त बना हूँ मैं दुनिया से बेगाना हो गया हूँ।

आशिक़ों में शराबे-इश्क़ का पैमाना हूँ,
उस परी को देख कर मैं दीवाना हूँ। 1

अज़ल के रोज़ कहा जो कान में जादुई लफ़्ज़ों से,
क़यामत तक सबकी ज़ुबाँ पर वही अफ़साना हूँ। 2

बोला मैं चेहरा दिखा, उसने कहा देखना है क्या हुस्न मेरा,
गर देखने की आँख है तो मैं छुपा नहीं हूँ। 3

जब से देखा है बुत में हुस्ने-बुतगर को मैंने,
दर पे बुतख़ाने के रखे हुए सर ख़ुद से बेगाना हूँ। 4

हुस्न उसका खींचता है मुझको ख़ुद अपनी तरफ़,
जैसे वो रौशन शमा हो और मैं परवाना हूँ। 5

इस वीराने दिल में ठहरना कब तक है मुमकिन,
कि जब शाहे-दो-जहाँ का मैं हमख़ाना हूँ। 6

टूटे दिल को कहा मैंने तू कहाँ और वो कहाँ,
बोला वो ख़ज़ाना है मेरा और मैं वीराना हूँ। 7

जिस्म दरिया, दिल सीपी और दिलबर को मोती समझा था मैं,
पर नहीं, वो है दरिया, मैं तो इक दाना हूँ। 8

जिस्म हुआ दिल, दिल हुआ जाँ और तू है दिलबरे-रूह,
न दिल, न बदन, न जाने-जाँ हूँ, मैं तो सिर्फ़ आशिक़ हूँ। 9

दरम्याँ मेरे और मेरे साक़ी के पड़े हैं परदे सौ हज़ार,
चाक हो जाते हैं इक नारे से मेरे, मैं वो मस्ताना हूँ। 10

जब से मोईन अपने दोस्त का आश्ना* हुआ,
दूसरों के दरम्याँ अब मैं बेगाना हुआ। 11

---

* आश्ना=यार

(98)

इस ग़ज़ल में नसीहत दी गई है कि ख़ाकी जिस्म की हद ख़ाक है, और आसमानी रूह की हद आसमान। नौवें आसमान की बुलंदी को छूने के लिए तुझे इश्क़ की आग में जलकर पाक होने की ज़रूरत है, इश्क़ की घाटियों को पार करने के लिए ग़फ़लत छोड़कर सचेत होना लाज़िमी है।

जिस्म गर है मिट्टी, इसको ख़ाक होना चाहिए,
रूह है आसमानी तो उसे आसमाँ में रहना चाहिए।1

चाहता है इश्क़ की आग में तू जलना अगर,
खोटे सोने की तरह जल कर पाक होना चाहिए।2

इश्क़ की राह में पड़ी वादियों को तू कर ले पार,
कब तक रहेगा सुस्त, तुझे चुस्त रहना चाहिए।3

मौत के इस तीर से कब तक बचेगा तू ऐ दिल,
मुर्दे की मिसाल पिंजरे में क़ैद रहना चाहिए।4

ऐ मोईन गर चाहे कि फ़लक के पार जाँ पहुँचे,
रब की रकाब में तुझे फिर ख़ुद ही बँधना चाहिए।5

(99)

इस ग़ज़ल में आशिक़ को ताकीद की गई है कि उसके जिस्म की चट्टान में ही आबे-हयात छुपा है, उसकी हस्ती में ही यह अमृत छुपा है फिर भी वह ऐसे तड़प रहा है जैसे मछली समंदर में। यह रूह जिस्म में क़ैद होकर तड़पती है, अपने वतन की याद में रात-दिन रोती है। इश्क़ की आग के कारण आशिक़ मछली की तरह तवे पर भुना जाता है। ग़ज़ल के आख़िर में आशिक़ के लिए पैग़ाम है कि उसका दिल ही ख़ुदा का आईना है जो ख़ुदा के नूर से रौशन होगा।

जिस्म की चट्टान में यह चश्माए-दिल है छुपा,
तोड़ दे इस पत्थर की चट्टान को तेशा* उठा।1

है छुपा आबे-हयात तेरी हस्ती के अँधेरे में,
बन के मछली आबे-हयात में ख़ुद को दे बहा।2

ग़म यह कैसा है कि मछली तड़प रही है समंदर में,
बावजूद इसके कि दिल दरिया की तह में है डूबा।3

भुना जा रहा हूँ तवे पर मछली की तरह,
वजह आतिशे-इश्क़ है जो दिल में है छुपा।4

जल रहा है दिल मेरा सीने के अंदर रात-दिन,
जैसे हिज्रे-यार में शमा जलती रहती है लगन से।5

जले चिराग़ मद्धम-सा जैसे बीमारों के सिरहाने,
ना कि जैसे शमा अंजुमन† में देती है ज़िया‡।6

बुलबुले-जाँ रो रही है क़ैद में इस जिस्म की,
जैसे गा रही हो नग़में दर्दभरे, चमन के परिंदों के लिए।7

---

* **तेशा**=धरती खोदने का औज़ार † **अंजुमन**=महफ़िल ‡ **ज़िया**=रौशनी

जब से बाग़े-वस्ल से आई है क़ैदे-जुदाई में,
रोती है वो अपने वतन की याद में सुबहो-मसा*।8

ऐ बुलबुल! महफ़िले-दुनिया में कब तक रोती रहेगी,
तोड़ कर हक़ की मदद से, हो इस पिंजरे से जुदा।9

चाक दामन से यूसुफ़ की जुदाई का पाया दुख याक़ूब ने,
अख़ीर में पैग़ाम वस्ल का उसके पैरहन से ही याक़ूब को मिला।† 10

जब ख़ुदा का आईना है तू, फिर नफ़ा नुक़्सान न देख,
देख उसका हुस्न आईनाए-दिल में और हैरत में आ।11

या ख़ुदा जब मोईन मिस्कीं का दिल आईना है तेरा,
ख़ुद के आईने को कर रौशन तू अपने नूर से।12

* **सुबहो-मसा**=सुबह और शाम

† **चाक...मिला**=हज़रत यूसुफ़ के भाई उसे कुएँ में फेंक कर उसके कपड़े लहू के साथ सान कर पिता याक़ूब के पास ले गए और बोले कि यूसुफ़ को भेड़िया खा गया है। इस तरह यूसुफ़ का लिबास पिता के लिए जुदाई की पीड़ा का कारण बन गया। कई वर्षों बाद जब हज़रत यूसुफ़ मिस्र के बादशाह बन गए तो आपके भाई मिस्र में अनाज ख़रीदने गए। यूसुफ़ ने उन्हें पहचान लिया और एक लिबास पिता के पास भेजा। वह लिबास पिता के लिए ख़ुशख़बरी बन गया। आपका भाव है कि शरीर का जो कपड़ा प्रियतम की जुदाई का कारण है, वही उसके साथ मिलाप का साधन भी बन सकता है।

(100)

इस ग़ज़ल में ख़्वाजा साहिब फ़रमा रहे हैं कि कायनात का ज़र्रा-ज़र्रा ख़ुदा की सिफ़त कर रहा है। इस कायनात में आने से पहले ही हर एक की क़िस्मत तय हो जाती है। ख़ुदा की नेमतों का शुक्राना मुश्किल है। उसकी तारीफ़ चाहे कितनी भी की जाए लेकिन उसकी शान और रुतबा लाबयान है।

तारीफ़ तेरी बार-बार कर रही चमन में बुलबुले-जाँ,
गीत तेरे गा रहा है बाग़े-दिल में मुर्ग़े-जाँ।1

आफ़ताब बन नूर तेरा जब से हुआ ज़ाहिर जहाँ में,
ज़ाहिरो-बातिन के ज़र्रे-ज़र्रे करते हैं सिफ़त तेरी बयाँ।2

मेरी क़िस्मत का क़ुर्रा* जब अज़ल के दिन डाला गया,
राज़ खुला तो मिली नियामत तेरी तारीफ़ की अपने जिस्मो-जाँ में।3

तेरी इन नेमतों का शुक्राना मुश्किल है,
ज़ुबाँ क़ाबिल नहीं इतनी फिर भी करे तेरी सिफ़त बयाँ।4

तेरी क़ुर्बत† के महल में गर तेरी तारीफ़ को इतना ऊँचा मक़ाम न मिलता,
तो क़ुरान के अल्फ़ाज़ की शुरुआत तेरी तारीफ़ से कैसे होती? 5

तेरी तारीफ़ करने वाले अगर आसमाँ और ज़मीं एक कर दें,
तो भी तेरी शान और रुतबा न कर पाएँ बयाँ।6

मोईन मिस्कीं गूँगा हुआ, तारीफ़ करने से रहा,
है यही बेहतर करूँ तारीफ़ तेरी बेज़ुबाँ।7

* **क़ुर्रा**=परची डालना, पाँसा डालना † **क़ुर्बत**=नज़दीकी

(101)

ख़ुदा का खेल कितना अजीब है, कभी कहता है कि राज़ ज़ाहिर न कर और कभी कहता है कि बेख़ौफ़ होकर सारे राज़ बता दे और अगर कोई सुनने को तैयार न भी हो, तो भी दरो-दीवार से कह दे।

मैं नहीं कहता अनलहक़, यार कहता है कि कह,
जब नहीं कहता हूँ मैं, दिलदार कहता है कि कह।1

पहले तो कहता था वो, ताकीद करता था ना कह,
फिर ना जाने किस लिए इस बार कहता है कि कह।2

जो ना कहना चाहिए था इबादत गुज़ारों के सामने,
बेतहाशा बर सरे-बाज़ार कहता है कि कह।3

हिम्मत नहीं कि राज़ मंसूर का छुपाऊँ मैं,
क्या करूँ जब फाँसी का फंदा कहता है कि कह।4

मैंने पूछा इस जहाँ में राज़े-दिल किससे कहूँ,
महरमे-दिल ही नहीं जब, दरो-दीवार कहते हैं कि कह।5

दिल पर झंडा गाड़ दिया आतिशे-इश्क़ ने ऐसा,
कि मूसा ने कहा था यार कहता है कि कह।6

मैंने पूछा मैं नहीं वैसा तो मेरी ख़ाक में है क्यों चमक,
चाहता हूँ ना कहूँ यह राज़, यार कहता है कि कह।7

ऐ सबा, तुझसे वो पूछे क्या मोईन कुछ कहता भी था,
दूर करने को दुई, ग़म ख़्वार कहता है कि कह।8

(102)

इस ग़ज़ल में ख़्वाजा साहिब फ़रमाते हैं कि ख़ुदा का नूर ज़ाहिर होने पर रूह जिस्म का पिंजरा तोड़ कर आज़ाद हो गई। दिलबर के इश्क़ ने आशिक़ की लोकलाज ख़त्म कर दी। आशिक़ ख़ुदा से फ़रियाद करता है कि तू मेरा सहारा बन, मैंने दुनिया के सारे आसरों को छोड़ दिया है।

नूर की आई रौशनी तूरे-दिल पारा-पारा* हुआ,
तोड़ कर मिट्टी का पिंजरा मुर्ग़े-जाँ† आज़ाद हुआ।1

रब ने रखी आबो-गिल पर तेरी बुनियादे-वुजूद,
ख़ाके-जिस्म की हद से गुज़र, हैराँ उस गुलकारा‡ पे हो।2

ये सात सितारे दुनिया के आसमाँ पर चमक रहे हैं,
नूरे-जाँ गर चाहे तू, इन तारों के ऊपर तारा हो।3

गर चाहे हो कम ख़ुमारी तो जामे-शराब की तलब न कर,
तोड़ दे जामो-मीना§ मयख़ाने से बाहर हो।4

बदनाम गली में दिलबर से हुई है मोहब्बत मेरी,
गर मेरा ख़िरक़ाए-इज़्ज़त¶ हज़ार पारा हो तो हो।5

तू कहे कि बेसहारा हो तो सहारा मैं बनूँ,
या ख़ुदा अब मैं बेसहारा हूँ, तू मेरा चारा** हो।6

ऐ मोईन दुनिया के झूले में कब तक बच्चों की तरह रहेगा,
बिस्तर ये ख़ाकी लपेट, हिंडोले-यार में तू सवारा हो।7

---

* **पारा-पारा**=टुकड़े-टुकड़े † **मुर्ग़े-जाँ**=रूह
‡ **गुलकारा**=नक़्क़ाशी करने वाला यानी ख़ुदा § **जामो-मीना**=प्याला और सुराही
¶ **ख़िरक़ाए-इज़्ज़त**=इज़्ज़त की पोशाक यानी लोकलाज ** **चारा**=सहारा

(103)

इस ग़ज़ल में ख़्वाजा साहिब ने ख़ुदा की मेहर का ज़िक्र किया है कि मैं तो नकारा था, तेरी रहमत की निगाह ने मुझे क़ाबिल बना दिया। जिस तरह सूरज की रौशनी अँधेरे को दूर करती है, वैसे ही तूने मेरे लोहे के आईने में अपना नूर रख कर इसे रौशन कर दिया। मेरे जिस्म के रोम-रोम में तेरा ही नूर ज़ाहिर है। आख़िर में ख़्वाजा साहिब कहते हैं कि अपनी पहचान पाने के लिए कसरत से वहदत में आना लाज़िमी है।

जिस्म मेरा आईना बन कर तेरा जलवा हुआ,
गर न था क़ाबिल मैं, नज़रों ने तेरी क़ाबिल किया।1

तू है ख़ुरशीद और मैं आईना लोहे का हूँ,
रूबरू होकर तेरे, चाँद की तरह रौशन हुआ।2

रुख़ पे अपने तेरा ही हुस्न लिए फिरता हूँ मैं,
ज़र्रे-ज़र्रे में जिस्म के तू है ज़ाहिर हुआ।3

पूछा मैंने अपना पता बता, कहा उसने ख़ुद को मिटा,
फिर देख कि दर पे कौन है तेरे खड़ा।4

छोड़ कसरत* ऐ मोईन, वहदत में कर अपना मक़ाम,
कि ख़ुदा ने सिर पे तेरे ताजे-इज़्ज़त रख दिया।5

* कसरत=द्वैत

(104)

इस ग़ज़ल में ख़ुदा ख़ुद रब्बी राज़ बयान कर रहा है। आशिक़ को अँधेरे से बाहर निकल कर ख़ुदा के नूर को देखने की ताकीद कर रहा है। यह राज़ ख़ामोश होकर दिल की गहराइयों में सुना जा सकता है। जब आशिक़ शिकायत करता है कि मैं दर्दे-दिल से फ़रियाद कर रहा हूँ, तो मुझे हमेशा यही जवाब मिलता है कि पहले मेरी बात सुन, फिर तेरा दर्द भी सुनूँगा। ग़ज़ल के आख़िर में ख़्वाजा साहिब कहते हैं कि वहदत की मय पीकर ही मैं अपना हाले-दिल बयान कर सकता हूँ।

इधर आ, बात औ अदना* की मेरी ज़ुबाँ से सुन,
राज़ है तू ख़ुद ख़ुदा का, मेरी ज़ुबाँ से यह राज़ सुन।1

बयाँ करता हूँ वहदत का राज़, यक़ीं गर तू नहीं करता,
खोल कान अपने और दिल की गहराई से सुन।2

उठा दे नूर से ज़ुल्मत†, हटा दे राह से कसरत,
फिर छुपा वहदत का राज़ अपनी जाँ से सुन।3

क्या पूछे तू मोहब्बत आशिक़ों की और नाज़ माशूक़ों के,
ज़ुबाँ को कर दे ख़ामोश सौसन‡ की तरह, फिर अपनी मुर्ग़े-जाँ से सुन।4

दर्दे-दिल से जब फ़रियाद करता हूँ, दुनिया की ख़बर नहीं रहती,
चेहरा ज़मीं पर मलता हूँ कि दर्द मेरे दिलो-जाँ का तू सुन।5

जवाब आता है उस दुनिया से मेरे कान में हरदम,
सुनूँगा बात तेरी भी, अभी तू मेरा राज़ सुन।6

शराबे-लाफ़ानी तू साक़ी के होठों से पी मोईन,
आशिक़ों के दर्द फिर ख़ूबसूरत लाल लबों से सुन।7

* औ अदना=ख़ुदा की और नज़दीकी † ज़ुल्मत=अँधेरा
‡ सौसन=एक फूल जिसकी पंखुड़ी ज़बान जैसी होती है।

(105)

ख़ुदी को फ़ना करके ही रूहानी सफ़र तय किया जा सकता है। समंदर से उठा क़तरा चाहे आसमान में जा पहुँचे, आख़िर वह समंदर में ही समाता है यानी अपने असल में समाता है। इसी लिए इनसान को हक़ का इल्म पाने के लिए, रब्बी राज़ों को जानने के लिए, रहबर की अगुआई में आना होगा। फिर दुनिया की ज़ंजीरों से आज़ाद होकर जिस रास्ते से यहाँ आया, उसी रास्ते पर क़दम मोड़ने होंगे।

पाँव से जूता अलग कर* अर्श की ओर हो रवाँ,
उस जगह जिसकी कोई हद नहीं, बेजान होकर हो जा रवाँ।1

ऐ क़तरा! हालाँकि तू है समंदर से जुदा, मगर तेरी हस्ती समंदर है,
आसमाँ तक सर उठा ले फिर भी हो तू दरिया में रवाँ।2

ज़ाहिदों का मुर्ग़े-दिल परवाज़ भरे जन्नत तक की,
पार कर तू कायनात का गुम्बद ऐ दिले-नादाँ।3

गंदे कीड़े की तरह कब तक भरे उड़ान तू,
बालो-पर† रखता है तो उड़ कर पहुँच जा आसमाँ।4

छुपे राज़ों को तू पा वरना कब तक ढूँढ़ेगा मुझे,
तू रातों को राहे-दिल से आ मेरे यहाँ।5

ऐ बेअदब मिस्कीन! अपने आमाल में क्या ढूँढ़ता है,
इल्मे-हक़ गर चाहे तो जा मदरसे-आसमाँ‡।6

मेरी तरफ़ जब आएगा तू, रहनुमा बनूँगा तेरा,
राह में ना ले साथ किसी को, मेरी ओर हो रवाँ।7

ऐ मोईन दुनिया के बंधन इक-इक करके तोड़ दे,
जिस राह से आया है तू, हो उसी पर फिर से रवाँ।8

---

* **पाँव...कर**=अपनी हौंमैं को फ़ना कर दे † **बालो-पर**=बाल और पंख
‡ **मदरसे-आसमाँ**=जहाँ हक़ (सच) का इल्म हासिल होता है।

(106)

इस ग़ज़ल में आशिक़ अपने माशूक़ से कहता है कि जब से तेरा ख़्याल दिल में बसा है, मुझे अपने अंदर तेरा ही जलवा दिखाई देता है। मुझे जुदाई का दर्द मंज़ूर है क्योंकि इसी के ज़रिए तुझसे विसाल हो सकता है। लेकिन अर्श की बुलंदी पर पहुँचने का यह मक़सद तेरी रहमत से ही मुमकिन है।

आईनाए-जाँ में मेरी आया नज़र तेरा ख़्याल,
दिल से उठ गई दुनिया बस रह गया तेरा जमाल।1

हिज्र* का ग़म मुझे आज ही ख़रीदना मंज़ूर है,
कि हासिल इस फ़ायदे से हो मुझे तेरा विसाल।2

मेरे मक़सद का महल है अर्शे-बरीं† से बुलंद,
पंखों से तेरे इसी लिए लिपटा हूँ चींटी की मिसाल।3

हो नहीं सकता ख़ुद से मुकम्मल हरगिज़ ये कमाल,
अपने तरीक़ों से बाज़ आ जाना ही है तेरा कमाल।4

हक़ के आशिक़ मोईन को बिठाते हैं विसाल के सदरे-मक़ाम पर,
सच्चे आशिक़ की जगह हो न कभी पिछली क़तार।5

---

* **हिज्र**=जुदाई † **अर्शे-बरीं**=सबसे ऊँचा आसमान जहाँ ख़ुदा का तख़्त है।

(107)

ख़्वाजा साहिब फ़रमाते हैं कि अगर जिस्म का रोम-रोम आँख बन जाए, फिर भी ख़ुदा के नूर की झलक सह पाना मुश्किल है। उसके नूर का दीदार रूह की आँख से ही किया जा सकता है। ख़ुदा का राज़ जानने के लिए इस जिस्मानी हस्ती से ऊपर उठना होगा। ख़्वाजा साहिब अपनी इस ग़ज़ल में ख़ुदा का राज़, उसकी वहदत का करिश्मा बयान करते हुए कहते हैं कि मंसूर के अंदर बैठा वो ख़ुदा ही अनलहक़ के नारे लगा रहा था, मोमिन-काफ़िर सभी ख़ुदा के नूर से जुड़े हैं, ख़ुद ही उसने इनसान को अपना आईना बनाया है, उसने ही कायनात शुरू होने से पहले रूहों के साथ इश्क़ का इक़रार किया था।

दिल पे मेरे आई झलक उसके रुख़्सार से,
ज़र्रा-ज़र्रा हो गई मेरी हस्ती फिर नूरे-यार से।1

जिस्म के ज़र्रे मेरे एक से हज़ार हुए,
फिर भी नज़र न आई इक परछाईं भी उसके रुख़्सार से।2

झेल पाती है कहाँ हुस्न के जलवे ये आँख,
दीदार उसका कर तू अपने चश्माए-दिल से।3

इश्क़ बाग़े-जाँ है, मेवा है इसका वस्ल हमेशा का,
गर वस्ल का फल न चाहे तू, वो ख़ुद देगा प्यार से।4

आबो-गिल से गुज़र, चल दिलो-जाँ के महल की ओर तू,
देख क़रीब कितना है तू अल्लाह के असरार* से।5

अमल और सिफ़त से गुज़रा जो आशिक़ मारफ़त† की राह से,
है आक़िल‡ वो, पर ग़ाफ़िल दूर है इस राज़ से।6

* **असरार**=राज़
† **मारफ़त**=रूहानी मार्ग की तीसरी मंज़िल जिसमें अभ्यासी रूहानी मंडलों से गुज़रता है।
‡ **आक़िल**=अक़्लमंद

हुस्ने-ख़ुदा के जलवे देख हर हसीं रूह में,
हर चीज़ पर ज़ाहिर है हुस्न नूरे-यार से।7

जब अनलहक़ था ज़ुबाँ पर, ख़ुद में था मंसूर कब,
सूली पर आवाज़ आती थी ज़ुबाने-यार से।8

कहते हैं यार का यार ही कब तक रहेगा अपना यार,
नहीं नहीं, अपना ही यार रह, पहचान ख़ुद को उस यार से।9

नेक और बद से भरी है दुनिया सब इसी के जलवे हैं,
मोमिन और काफ़िर जुड़े हैं सभी नूरो-नार* से।10

ख़ुद को देखने के लिए उसने इनसाँ को आईना बनाया,
फिर ख़ुद ही करे उथल-पुथल, हैराँ हूँ उसके काज से।11

एक शोला काफ़ी है इस तन की ज़ुल्मत† के लिए,
रोशनी बख़्शी उसे, वाकिफ़ है जो असरार से।12

अदम‡ के अँधेरे में तेरे नूर का शोला चमका,
हर दिल में जान आई, अल्लाह का इक़रार करने से।13

हुस्न तेरा ज़ाहिर होता है दर परदा§ आशिक़ों पर,
जिस पे रब की हो नज़र, वो फिरे क्यों इक़रार¶ से।14

राज़ अज़ल का कह दिया इक ही ग़ज़ल में मिस्कीं मोईन ने,
राज़ वो लाफ़ानी सुनिए लिबासे-गुफ़्तार** से।15

* **नूरो-नार**=जन्नत का नूर और दोज़ख़ की आग † **ज़ुल्मत**=अँधेरा
‡ **अदम**=दुनिया के पैदा होने से पहले का ज़माना § **दर परदा**=परदे में रहकर
¶ **इक़रार**=इशारा 'अलस्तु बिरब्बिकुम' की ओर है। देखें ग़ज़ल 8, फ़ुटनोट
** **लिबासे-गुफ़्तार**=भाव कलाम में छिपा हुआ

(108)

इनसान और ये दो जहाँ ख़ुदा के नूर से ज़ाहिर हुए हैं। ख़ुदा के सामने इनकी हस्ती वैसे ही है जैसे ज़र्रा सूरज के सामने। लेकिन जब तक दिल वहदत के समंदर में नहीं डूबता, उस राज़ से अनजान रहता है। ख़ुदा के इश्क़ और नूर से इनसान फ़ानी हस्ती की क़ैद से आज़ाद हो सकता है। लेकिन अक़्लमंद लोग यह बात नहीं समझते। वो इस बात से ग़ाफ़िल हैं कि ख़ुदा की रूह इनसान में चमक रही है, ख़ुदा ने ही इस जहाँ को इश्क़ की दौलत बख़्शी है। इसलिए इस फ़ानी दुनिया का फ़िक्र नहीं करना चाहिए।

बेगुमाँ* हस्ती मेरी, इशारा है ख़ुदा के नूर का,
ये दो जहाँ क़तरा हैं उसकी मेहर के समंदर का।1

आफ़ताब के सामने ज़र्रे की क्या हैसियत,
कि उसका वुजूद चमकता है साये के पहलू में।2

सीप का मोती हथेली पर रख कर पैदा नहीं होता,
जब तक दिल न डूबे उसकी वहदत के समंदर में।3

दिल के आईने में अपना हुस्न दिखलाता है दोस्त,
तेरे जिस्म की मिट्टी ही है तेरी आँखों के परदे में।4

तू कहाँ है शोलाए-इश्क़, आ कि डालूँ अपने में जाँ,
हो जाऊँ फिर हस्ती के अँधेरे से आज़ाद मैं।5

कहाँ है समझ आक़िलों† को कि फ़ना में है बक़ा,
छुपा है उनका नफ़ा अक़्ल के नुक़्सान में।6

हुमा को परवाह कहाँ मकड़ियों के जाल की,
मक्खियाँ ही फँसती हैं उसके ताने-बाने में।7

---

* **बेगुमाँ**=निःसंदेह † **आक़िलों**=अक़्लमंद लोग

क़ैदे-जिस्म से हो जुदा जाने-जाँ, फिर देख तू,
अर्श से भी और ऊपर परवाज़ है रूह में।8

ख़ास अपनी रूह से इनसान में चमका है वो,
वरना आदम के लिए क्यों झुकते फ़रिश्ते सज्दे में।9

दुनिया का ख़ज़ाना इश्क़ के ख़ज़ाने से ही मिलता है,
फिर भी कुछ ना हासिल कर सके दुनिया के ख़ज़ाने में।10

न दुनिया होगी न हम होंगे, ग़म न कर तू ऐ मोईन,
ग़म कहाँ तक खाऊँ, दुनिया के होने न होने में।11

(112)

ख़्वाजा साहिब इलाही इश्क़ बयान करते हुए फ़रमाते हैं कि आशिक़ को बेआरामी और दु:ख-दर्द की सौग़ात इश्क़ की तरफ़ से मिलती है। लेकिन जिसके दिल में वो अपना जलवा दिखाता है, वह महबूब के ज़ुल्म से उफ़ तक नहीं करता। रहमत के दरिया से उठने वाली मौजों के मोतियों को वो अपने दिल की डोरी में पिरो लेता है। ख़्वाजा साहिब कहते हैं कि इश्क़ की शराब पीकर मैं तो अज़ल से ही मतवाला होकर आया हूँ।

इश्क़ ने अपना मज़ा जिस जाँ को चखाया,
आराम गया उसका, पड़ा क़हर का साया। 1

सैकड़ों बंध से भी तू इसे क़ैद नहीं रख सकता,
कि ये परिंदा तेरी ज़ुल्फ़ के जाल से उड़ान भर के है आया। 2

पहले क़दम से ही गर सालिक ने न पाई सही राह,
रास्ता तो बहुत तय किया पर मंज़िल पे न पहुँच पाया। 3

महबूब की जफ़ा* और ज़ुल्म से उफ़ नहीं करती है वो आँख,
जिसे हुस्न अपना उसने बाग़े-जाँ में है दिखाया। 4

बादे-सबा† जब आई खिल उठा रूह का गुँचा‡,
मानो सुबह ने तेरे चेहरे से नक़ाब है हटाया। 5

महरम नहीं है जब कोई तो कैसे लाऊँ ज़ुबाँ पे,
वो नुक्ता जो इश्क़ की ज़ुबाँ ने मुझे है सुनाया। 6

सौ बार दरियाए-रहमत से उठीं मौजें मोहब्बत की,
इन मौजों के मोती को जाँ की डोरी में है पिरोया। 7

* **जफ़ा**=ज़ुल्म, अत्याचार † **बादे-सबा**=सुबह की हवा ‡ **गुँचा**=कली

क्या जाने तू कि जन्नत में बिखरे ये मोती हैं क्या,
टपका हुआ अश्क है तेरी आँखों से जो आया। 8

होकर मतवाला मोईन आया है बज़्मे-अज़ल से,
कि हक़ ने शराबे-इश्क़ का था जाम पिलाया। 9

(113)

इस ग़ज़ल में आशिक़ को ताकीद की गई है कि अगर तू दिल की आँख से देखे तभी कायनात में ख़ुदा का नूर दिखाई देगा। ख़ुदी को मिटा, तभी तुझे अपनी पहचान होगी। अपने अंदर ग़ोता लगा, तुझे वहदत के मोती हासिल होंगे। तू फ़रिश्तों की तरह ख़ुदा के हुक्म को मान, शैतान की तरह हुक्मउदूली न कर। अगर तू दुनिया से ऊपर उठ जाए तो तुझे ख़ुदा की नज़दीकी हासिल होगी। तुझे ख़ाकी जिस्म से निकलने पर रब्बी नूर दिखाई देगा। दरवेशों की सोहबत में यक़ीन से बैठ, तुझे इश्क़ की मय और उनकी गुफ़्तगू नसीब होगी।

हक़ीक़त की नज़र से गर तू अपने जिस्मो-जाँ देखे,
तो हर इक चीज़ के वुजूद का सबब तू ख़ुद देखे। 1

तेरी तिनके-सी यह हस्ती मिसाले-आतिशे-मूसा* बन जाए,
जो दूर कर दे सर से ख़ुदी की ज़ुल्मत, नूर तू ख़ुद में अयाँ† देखे। 2

तहे-दरियाए-वहदत‡ से गर लाए इश्क़ का मोती,
छुपा रखी है उसमें ख़ुदा ने जो दौलत, वो तू अयाँ देखे। 3

करे जी-जान से कोशिश तो इश्क़ के महल तक पहुँचे,
फिर अपने पाँव तले तख़्तो-ताज दो जहाँ का तू देखे। 4

फ़रिश्तों की तरह यार के जमाले-रुख़्सार में खो जा,
न कि इब्लीस§ की तरह जो सज्दे में उसको बदगुमाँ¶ देखे। 5

* **मिसाले-आतिशे-मूसा**=उस आग की तरह जो मूसा को कोहे-तूर पर दिखाई दी थी।
† **अयाँ**=ज़ाहिर ‡ **तहे-दरियाए-वहदत**=वहदत के समुद्र की तह से
§ **इब्लीस**=इब्लीस (शैतान) ने लाखों बार रब की भक्ति की है पर जब रब ने आदम (इनसान) बना कर उसके आगे सज्दा करने के लिए कहा तो उसने यह कह कर इनकार कर दिया कि मैं रब के सिवा किसी और को सज्दा नहीं कर सकता। उसने मन की मर्ज़ी को रब के हुक्म से बड़ा मान लिया।
¶ **बदगुमाँ**=बुरा ख़्याल रखने वाला

जहाँ की पस्ती और बुराई से सलामत बाहर निकल आ तू,
तो दना से तदल्ला की बुलंदी की तरफ़ ख़ुद को रवाँ देखे। 6

इस ख़ाके-घर* से बाहर आ कि देखे नूर मौला का,
तू कब तक अपने घर का सुर्ख़-नीला शीशा देखे। 7

गर आईनाए-दिल को ज़ुल्मत से साफ़ रखे तू,
ख़ुदा के हुस्न का जलवा तू अपने में ही अयाँ देखे। 8

गर नज़र को बंद करे दुनिया से, आँख दिल की खोले,
अपने यार की हस्ती रगे-जाँ में रवाँ देखे। 9

आ फ़क़ीरों की महफ़िल में कि ख़ुदी है दौलतमंदों में,
फिर ख़ुद को पहचाने, अपनी नेकी का नतीजा देखे। 10

यक़ीन से मोईन की मजलिसे-रिंदाँ में आकर बैठ,
कि गुफ़्तगू सुने और मय को चश्मे-जाँ से देखे। 11

* **ख़ाके-घर**=मनुष्य का शरीर

(114)

इस ग़ज़ल में ख़्वाजा साहिब ने इनसान को नसीहत दी है कि इश्क़ का मोती उसके दिल के दरिया में है, इसलिए बाहर भटकना छोड़ दे और अपने अंदर उस कस्तूरी की ख़ुशबू को खोज। इस जिस्म की क़ैद में आराम न कर, अपने वतन की ओर उड़ान भर। तू इश्क़ के बाग़ की बुलबुल बन कर अपने वतन को लौट जा। फ़ानी दुनिया से नाता तोड़ कर यार को अपने अंदर ढूँढ़, क्योंकि दुनिया और यार दोनों का गुज़ारा एक जगह नहीं हो सकता।

इश्क़ का मोती गर चश्माए-दिल तेरा चाहे,
दिल को दरिया बना गर तू मोती अदन* का चाहे।1

क्यों फिरे बियाबानों में तातारी† हिरण की तरह तू,
सूँघ उसकी ज़ुल्फ़ को गर मुश्क‡ ख़ुतन§ की चाहे।2

इश्क़ का बाज़ है तू क़ैद में आराम ना कर,
उड़ उसी बाज़ की तरह गर वतन अपना तू चाहे।3

मीठी ज़ुबाँ वाले से मैंने इक नुक्ता जो पूछा,
बोला क़ुरान से ले नुक़्ताए-हुनर जो चाहे।4

अर्श पर ढूँढ़ूँ उसे कि यार मेरा है कहाँ,
बोला, हूँ साथ तेरे दिन रात मिलना तू अगर चाहे।6

उसने परदे को उठाया, कहा नज़दीक तो आ,
थाम ले जामे-शराब गर शर्म छोड़ना चाहे।7

* **अदन**=तुर्किस्तान में एक जगह का नाम जहाँ के मोती मशहूर माने जाते हैं भाव मक़ामे-हक़ का सच्चा मोती।

† **तातारी**=तुर्किस्तान का इलाक़ा

‡ **मुश्क**=कस्तूरी जो हिरन की नाभि से निकलती है।

§ **ख़ुतन**=तुर्किस्तान में एक जगह का नाम जहाँ की कस्तूरी मशहूर है।

थाम डोरी अनलहक़ की गर चाहे राहे-बक़ा,
क्यूँ फ़ानी दुनिया की सूली और फंदा तू चाहे।8

ऐ पाक परिंदे! बन जा बाग़े-इश्क़ की बुलबुल,
अगर नज़ारा गुलो-चमन का तू देखना चाहे।9

घर से ग़ैरों को अलग कर, ढूँढ़ यार को ऐ मोईन,
नामुमकिन है कि रहें दोनों एक साथ गर तू चाहे।10

(115)

इस ग़ज़ल में आशिक़ ने अपने दिल की बात ज़ाहिर की है कि जब माशूक़ अपना जलवा ज़ाहिर करेगा तो मेरी हस्ती मिट जाएगी। माशूक़ शमा है जिसके हुस्न पर आशिक़ पतंगा अपनी जान क़ुर्बान कर देता है। विसाल की तमन्ना में आशिक़ इश्क़ की आग और जुदाई के ज़ख़्म सहने को तैयार है। जब से दिल में महबूब का इश्क़ पैदा हुआ, दु:खों की फ़ौज ने चारों तरफ़ से हमला बोल दिया। आशिक़ ने अपना दिल महबूब के हवाले कर दिया है, अब वो जैसा चाहे, वैसा करे। फिर आशिक़ कहता है कि मैं अपने इश्क़ का राज़ तुझे ही बताना चाहता हूँ। तुझसे बेहतर इसे कोई समझ नहीं पाएगा। अपनी नज़र से तूने मुझे इतनी इज़्ज़त बख़्शी है, ऐ ख़ुदा तेरी मेहर मुझ पर क़ायम रहे।

जब तू अपने जमाल से अंदरूनी परदे उतार देगा,
तेरे ज़ुहूर से मेरा वुजूद मिट जाएगा।1

तेरा नूरे-हुस्न शमा के रुख़ पर है चमका,
बुरा न कह पतंगों को, करें जो जान फ़िदा।2

निशाँ मेहरो-मोहब्बत के मेरे दिल से मिट नहीं सकते,
कि सोज़े-इश्क़* से पिघल जाए मोम-जिस्म का मेरा।3

इश्क़ में तेरे सह रहा हूँ ज़ख़्म जुदाई का चंग† की तरह,
है आरज़ू यही कि मुझे तू वस्ल की इज़्ज़त बख़्शना।4

दर्द और बलाओं की फ़ौज ने क़तारों में पहरा लगाया,
जब से तूने दिल पे मेरे इश्क़ का झंडा लहराया।5

यह दिल है मेरा जो आईने के सूरत में तेरे हाथ में है,
कि तू इसे गेंद की तरह हर तरफ़ है फेंकता।6

* **सोज़े-इश्क़**=इश्क़ की तपन से † **चंग**=एक तरह का साज़

दुनिया की चीज़ें जब ज़ाहिर और अयाँ की सूरत में हैं,
अब तू चाहे दिल को आईना बनाए या गेंद का खेल बच्चों का।7

हर आईने में तू अपना अक्से-जमाल ख़ुद देखे,
काश अपनी तजल्ली से डाले दिल पर ज़िया*।8

तेरे सिवा न किसी से मैं राज़ दिल का कहूँ,
तू राज़ सुन कि तू बेहतर है राज़दार मेरा।9

रम्ज़े-इश्क़† मेरा दिल कहता है तुझी से,
नहीं है तुझसा कोई हमदम और हम आवाज़ मेरा।10

मोईन को तूने एक ही नज़र में ख़ाक से उठाया है,
उम्मीद है तू उसको नज़र से अब नहीं गिराएगा।11

* **ज़िया**=रौशनी † **रम्ज़े-इश्क़**=इश्क़ का राज़

(116)

ग़ज़ल के हर शेअर की पहली पंक्ति एक सच बयान करती है और दूसरी पंक्ति में एक सवाल किया गया है। सवाल में ही जवाब छुपा है। इस ग़ज़ल के सभी शेअरों में ख़ुदा के ज़ाहिर और गुप्त होने का राज़ बताया गया है। आख़िरी शेअर में ख़ुदा बंदे से कहता है: तू मेरी खोज अपनी जाँ में कर, फिर पता चलेगा कि तेरे अंदर कौन छुपा है।

आँखों में ज़ाहिर जो है, बातिन में छिपा वो कौन है,
जो न आए समझ में, आख़िर वो ज़ाहिर कौन है।1

ख़ल्क़ में सिफ़त हर चीज़ की ज़ाहिर हुई,
सिफ़त की हद से जो बाहर है बयाँ, वो कौन है।2

तू हर हक़ीक़ते-ख़लक़ में जलवागर है,
फिर मुख़्तलिफ़ सूरत लिबासों में जो ज़ाहिर, वो कौन है।3

न ख़बर रखे बदन, न जाँ को कोई असर हो,
फिर भी रूह की तरह है जो ज़ाहिर और निहाँ*, वो कौन है।4

जब रगे-जाँ में रवाँ है शहदो-शीर† की तरह तू,
मेरी शीरीं जाँ में है जो हमराहे-जाँ, वो कौन है।5

क़ुरान में है तूने कहा कि इस जहाँ में मैं बेज़ुबाँ करता हूँ बात,
बग़ैर कान सुनता हूँ,
फिर सुनता बोलता है जो कान और ज़ुबाँ से, वो कौन है।6

जहाँ के ज़र्रे-ज़र्रे में हैं तेरे निशाँ के पते,
बावजूद इन पतों का वो बेनिशाँ कौन है।7

* **निहाँ**=छुपा हुआ † **शहदो-शीर**=दूध और शहद भाव मिठास

हिज्र के ग़म में आशिक़ों का दर्दमंद भी तू है,
फिर वस्ल में पाए आराम जिससे आशिक़ वो कौन है।8

छः रुख़ी* दुनिया है तेरे अक्से-चेहरे का रौशन चिराग़,
इससे परे जहाँ रौशन हैं जिससे, वो आख़िर कौन है।9

जुस्तजू में तेरी हरदम फिरता हूँ दीवाना-सा,
हैरान हूँ साथ मेरे है जो रवाँ वो कौन है।10

बोले वो कब तक फिरोगे हर तरफ़ ऐ मोईन,
ढूँढ़ो ख़ुद में तब जानो कि बेनिशाँ वो कौन है।11

* **छः रुख़ी**=छः दिशाएँ

(117)

इस ग़ज़ल में बताया गया है कि अगर इनसान अपने दिल को पाक कर ले तो उसमें ख़ुदा का हुस्न दिखाई देगा, दिल को पाक करने के लिए इश्क़ की आग में जलना पड़ता है। इनसान को ताकीद की जा रही है कि इस दुनिया के ताने-बाने से निकल, तू दुनिया के नफ़े-नुक़सान का हिसाब-किताब नहीं लगा सकता। रूह शुरू से ही इस जिस्म की पाबंद नहीं है। इश्क़ इनसान की बुनियाद है, इसी लिए इश्क़ की सदा उसे बुलाती है। फ़रिश्ते भी इनसान को इसी लिए सज्दा करते हैं क्योंकि इसमें ख़ुदा का नूर ज़ाहिर है।

ग़ज़ल के आख़िर में ख़ुदा के इश्क़ में ज़ख़्मी आशिक़ फ़रियाद करता है कि मैं तेरे बिना रह नहीं सकता, लेकिन अब तेरे ग़म का बोझ भी बरदाश्त नहीं होता।

ऐ इनसाँ तुझ में है रौशन हुस्न अल्लाह का,
काश अपने आईनाए-दिल को तू साफ़ करता।1

कर पाक शजरे-हस्ती* को जला कर उल्फ़त की आग में,
जब तक जल न जाए, रहेगा क़ैदे-हस्ती में डूबा।2

छोड़ कर दुनिया को, अकेला ही तू परदे से निकल,
बेवा की तरह क्यों दुनिया के ताने-बाने में है फँसा।3

नफ़े नुक़्सान पर तेरा नहीं है इख़्तियार,
नुक़्सान हुआ तुझे कि तू नफ़े के चक्कर में था।4

है हक़ीक़त कि अदम† में तू वुजूद का पाबंद नहीं था,
आया जब इस दुनिया में तो तेरा नाम फ़र्ज़ी रख दिया।5

* **शजरे-हस्ती**=हस्ती का पेड़ † **अदम**=परलोक

आसमाँ से रोज़ आती है इश्क़ के तबले की गूँज,
क्या हुआ था, इक सुबह सुनी क्यों न तबले की सदा।6

तू समझ तेरी हक़ीक़त है एक पानी के क़तरे जितनी,
दरवेश सभी कहते हैं कि इश्क़ है तेरी बिना*।7

क़द्र अपनी यों समझ कि ख़ास मेहमान है तू फ़ज़ल के दस्तरख़्वान† पर,
सब तेरे वुजूद से है, तू ही तो है मक़सदे-ख़ुदा।8

आदम का, न आलम का था नामोनिशाँ,
वहदत के ख़ेमे में ख़ुदा का हमनशीं तू ही तो था।9

सज्दा आदम को हरगिज़ न करते फ़रिश्ते अर्श पर,
देखते वो गर न तेरे जिस्म में ज़ाहिर नूरे-ख़ुदा।10

हो शहीद इश्क़ में ऐ दिल, कि शहीदों की नज़र में,
एक-सा ही रुतबा है आशिक़ और माशूक़ का।11

गरचे एक क़तरा अपनी जगह से पहुँचा कोह पर,
उसी मय का क़तरा था जो तूने मुझे पिलाई थी बेहिसाब।12

क्या है किसी मय में ऐसी तौफ़ीक़‡,
कि दिखा दे बेपरदा तेरे नूरे-हुस्न का।13

ज़र्रा-ज़र्रा सुने मंसूर के नारों को,
गर नूरी रुख़ से अपने, परदा हटा दे।14

मर रहा हूँ तुझ पे, मुश्किल है तुझ को छोड़ना भी,
इश्क़ का बीमार कब रखता है उम्मीदे-शफ़ा§।15

* **बिना**=बुनियाद † **दस्तरख़्वान**=वह कपड़ा जिस पर खाना परोसा जाता है।
‡ **तौफ़ीक़**=ताक़त § **उम्मीदे-शफ़ा**=राज़ी होने की उम्मीद

मैं हज़ारों बार ग़म बरदाश्त करता ही गया,
तू ग़म में मेरे इज़ाफ़ा ही इज़ाफ़ा* करता गया। 16

ग़म का शिकवा तो मोईन करता नहीं पर सोच ज़रा,
बोझ हाथी का मच्छर किस तरह खींचे सदा। 17

* इज़ाफ़ा=बढ़ोतरी करना

(118)

ख़्वाजा साहिब फ़रमाते हैं कि इस रूहानी राज़ से कोई वाक़िफ़ नहीं कि दोनों जहान में सिवाय ख़ुदा के कोई और नहीं है। वह ख़ुद ही माशूक़ है और आशिक़ भी वही है। वो यह कहता तो है कि दिल में कोई नहीं छुपा लेकिन दिल में इश्क़ के नग़में सुनने वाला भी वही है। इश्क़ का दावा कोई कर नहीं सकता, क्योंकि दिलो-जाँ में बसने वाला भी वही है।

सिवा अल्लाह के, दर नहीं कोई दरमियाने-दो जहाँ,
हैं सौ दलीलें पर कोई इस राज़ से वाक़िफ़ कहाँ। 1

नुक्ता मैं और तू के राज़ का हम सभी से है छुपा,
सैकड़ों में भी कर नहीं सकता कोई इसे तफ़्सील* से बयाँ। 2

आशिक़ो-माशूक़ को ख़ुद में से ख़ुद पैदा किया,
कि उस पर दूसरा कोई नहीं है निगहबाँ†। 3

अपने सीने में सुरीला नग़मा सुनता है तू,
फिर कहता है कि इस घर में नहीं कोई निहाँ‡। 4

ज़िंदा दिल को मौत का ग़म रोज़े-अज़ल§ से नहीं हुआ,
ऐ हयाते-दिल नहीं ज़िंदा कोई उसके सिवा। 5

इश्क़ का दावा कर सकता नहीं कोई,
कि जानो-दिल में अपने है वही हमराहे-जाँ। 6

जानो-दिल से सह रहा है तेरे ग़म का बोझ मोईन,
कि सिर्फ़ ज़ुबाँ से कोई तेरा तलबगार नहीं बना। 8

* तफ़्सील=विस्तार † निगहबाँ=चौकीदार ‡ निहाँ=छुपा हुआ
§ रोज़े-अज़ल=कायनात से भी पहले का समय

(119)

इस ग़ज़ल में आशिक़ को हिदायत दी गई है: अगर मस्ती की हालत में तू अंदर की आँख खोल ले तो तुझे महबूब का दीदार हो जाएगा। सौ सालों तक पढ़ी रात की नमाज़ और दिन के रोज़ों से बेहतर वह पल है जब तू अपने जिस्म से ऊपर उठे। ख़ुदी को मिटा कर ही तू रूहानी बुलंदी पर पहुँच सकता है, मंज़िले-मक़सूद को हासिल कर सकता है। सब तरह की चतुराई छोड़ कर उसकी रज़ा में रह, अपने रहबर की ग़ुलामी और उसकी ख़िदमत उसी तरह कर जैसे अयाज़ ने महमूद की ख़िदमत की थी।

मस्त होकर गर तू अपने दिल की आँख खोल दे,
यार का दीदार तू पहली नज़र में ही करे।1

गर इक लम्हा हस्ती से गुज़रे, बेहतर है उन सौ सालों से,
जिसमें तू पढ़े रात को नमाज़ और दिन में रोज़ा रखे।2

ग़ाफ़िल हो गर राज़ दिलबर का पाने में तू,
बेहतर है कि दुनिया से तू परदा करे।3

तेरी ख़ुदी में है छुपा रुतबा तेरी बुलंदी का,
बग़ैर इसके तू अपना सर बुलंद न कर सके।4

फ़लक के पाँसों से तू अपनी जाँ को सलामत न रख सके,
गर जुए बाज़ी तू फ़लक के बाज़ीगर से करे।5

नाज़* से तू मंज़िले-मक़सूद पर पहुँचे कहाँ,
सर झुका कि मारफ़त की राह को तू तय करे।6

* नाज़=भाव ख़ुदी

नाज़ से तुझको न आने दे तो तू न जा कि आख़िर,
वो मोहब्बत से तुझको बुलाए, नाज़ उस दम तू करे।7

गर तू बंदगी करे, तख़्ते-सुलतानी पर बैठे,
मोईन अयाज़* ने महमूद की ख़िदमत की थी जैसे।8

* अयाज़=महमूद ग़ज़नवी का चहेता ग़ुलाम जिसकी वफ़ादारी से बादशाह बहुत ख़ुश था।

(120)

इस ग़ज़ल में आशिक़ अपनी हालत बयान करता है कि माशूक़ ने वहदत की ऐसी शराब पिलाई कि दिल में मुझे हू की हूक़ सुनाई देने लगी। मय की कैफ़ियत ऐसी थी कि दिल में यार का दीदार हो गया। उसकी मौजूदगी के एहसास ने ख़ुदी को फ़ना कर दिया। मैं उसमें और वो मुझमें समा गया।

ऐ साक़ीए-वहदत मुझे यह जामे-मय कैसा दिया,
कि हर घड़ी दिल से मेरे आती है हू हू की सदा।1

ख़ामोश रह ऐ जामे-मय, क्यों जोश में टपके है तू,
ख़ामोश रह ऐ बाँसुरी, तुझे फूँकता है ख़ुद ख़ुदा।2

न जाने कैसी दी मय कि इक घूँट में ही जामे-दिल,
धुल कर चमक उठा ऐसा कि दीदारे-यार हासिल हुआ।3

हुस्न दिलबर का देख कर मैं माह* की तरह आशिक़ हुआ,
नाज़ से उसने गले लगाया, कहा कब तक रहेगा तू मुझसे जुदा।4

मैंने उन मक़ामों को भी देखा, और क़िस्से भी सुने,
पहुँचा उस जगह जहाँ गुज़र अब तक किसी का न हुआ।5

दामन अक़्ल का छोड़ कर पहुँचा मैं बाज़ारे-जुनूँ में,
देखा कि मटके में भरा मयख़ाना वहदत का है सजा।6

इक जाम भर कर याद में उस दिलरुबा के पी गया,
फ़ना ख़ुद को करके लाफ़ानी ज़िंदगी को पा लिया।7

* माह=चाँद

ख़ुदा की ज़ात में गुम होकर न गुनाह बाक़ी रहे, न बंदगी,
कैफ़ियत हुई ऐसी कि मैं उसमें और वो मुझमें समा गया।8

दावा न कर ऐ मोईन कि दीवान* ये अनमोल है,
अभी तो मारफ़त का मैंने एक पन्ना भी नहीं लिखा।9

* **दीवान**=ग़ज़लों का संग्रह/धार्मिक पुस्तक

(121)

इस ग़ज़ल में बताया गया है कि माशूक़ की जुदाई आशिक़ को बेसब्र कर देती है, हर पल उसी का ख़्याल दिल में आता है। ऐसी हालत में आशिक़ फ़रियाद करता है कि कभी तो तू अपने हसीन चेहरे से नक़ाब हटा। आशिक़ कहता है कि अगर ख़ुदा के मस्तानों को इश्क़ की शराब नसीब हो जाए तो दिल पर पड़े सारे परदे उठ जाएँ।

कभी तो हसीं रुख़ से अपने नक़ाबे-ज़ुल्फ़ उठा,
कि इक नज़र से हज़ारों आशिक़ों पे चोट लगा।1

शराब से तू निकल या फिर उठा दे परदा,
कि दिलजलों को सब्र नहीं अब जुदाई का।2

जुदाई में तेरे हुस्न के सब्र अब है नामुमकिन,
हर लम्हा मेरे दिल में तू बार-बार है आता।3

इक परदा उठा कि तूने मेरे दिल को छीन लिया,
गर हुस्ने-चेहरा दिखा दे तो रहे न दिल न जाँ की दुनिया।4

दिल तू ख़ाक बन, आकर मजलिस में रिंदों की,
कि ख़ाके-दिल पे छिड़क दें तेरे शराबे-ख़ुदा।5

गर ख़ुदा के मस्तानों की मय हो जाए नसीब,
हर परदा उठ जाए तेरे दिलो-जाँ का।6

वो आधी घूँट ही दिल पर मचाए है शोर अनलहक़ का,
ख़ामोश रह मोईन, नज़र डाल के देख मक़ाम अपना।7

(122)

इस ग़ज़ल में आशिक़ अपने दिल को दिलबर का राज़दार बताता है, उसके लिए माशूक़ ही दिल का नुक़्ता और दायरा है। उस माशूक़ का आशिक़ के दिल में ही ठिकाना है। आख़िर में ख़्वाजा साहिब ने आशिक़ को दिल खोल कर इश्क़ के राज़ को बयान करने को कहा है।

ऐ दिल तू राज़दार एक ही दिलबर बेमिसाल का है,
गर तीर मौत का आए तू ही उसका निशाना है।1

इश्क़ की भट्ठी से जो चाहत की लौ उठती है,
वो तेरी ज़ुबाँ के अंगारों का फ़साना है।2

बदन है दायरा, है दरम्याँ इसके नुक़्ता दिल का,
मेरा दिल हो दायरा तो तू ही नुक़्ता, तू ही दायरा है।3

पूछा उससे किस लिए है परदे में तू निहाँ,
बोला तेरा वुजूद ही मेरे लिए परदा है, तेरी हस्ती बहाना है।4

हुमाए-इश्क़ फँसा कब जहाँ के फंदों में,
तेरी मुर्ग़े-जाँ क़ैदे-आबो-दाना है।5

इंतज़ार में है वो तेरे दर पे तू नहीं जानता,
ढूँढ़ता है जिसे तू उसका तेरे अंदर ही ठिकाना है।6

मोईन मिंबर पर चढ़ कर बयाँ कर नुक़्ताए-इश्क़,
तू बाग़े-इश्क़ की बुलबुल दर ज़माना* है।7

---

* दर ज़माना=ज़माने में